नानेश वाणी क्रमांक-43

# H§w$Hw$_ H{$ [Jcb`{

AmMm`© lr ZmZ{e

àH$meH$
lr AnIb ^maVdfu` gmYw_mJu O¡Z g§K
g_Vm ^dZ, ]rH$mZ{a (am0.)

- नानेश वाणी -43
  कुंकुम के पगलिये
- प्रवचनकार : आचार्य श्री नानेश
- अक्टूबर 2002, 1100 प्रतियां
- मूल्य : 30/-
- अर्थ सहयोगी : श्रीमान उमरावमल जी जैन, टौंक
- प्रकाशक :
  श्री अ.भा.साधुमार्गी जैन संघ,
  समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर
- मुद्रक :
  अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, बीकानेर
  दूरभाष : 547073

# प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों में हैं जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चलकर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती हैं। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानों में वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका वह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व में समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप में उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सांसारिक प्राणियों के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तम्भ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मियाँ युगों-युगों तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे, इसके लिए यह आवश्यकता है कि न तो उन साहित्य रश्मियों को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनों हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जाये। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को **'नानेश वाणी-43'** पुस्तक श्रृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सन्दर्भ में बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपाणी ने अर्थ संबंधी व्यवस्था में जो सद्प्रयत्न किया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व में **कुंकुम के पगलिये** नाम से प्रकाशित पुस्तक की नई आवृत्ति है। इसमें कुछ संशोधन परिस्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले उदारमना सुश्रावक श्रीमान उमरावमल जी जैन, टौंक के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हूं।

यद्यपि सम्पादन-प्रकाशन में पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गई हो तो सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि आगामी संस्करणों में भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

**शान्तिलाल सांड**

संयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ.भा.सा. जैन संघ, समता भवन, बीकानेर

# अर्थ सहयोगी परिचय

समता दर्शन प्रणेता विश्व वंद्य आचार्य श्री नानेश की प्रस्तुत औपन्यासिक कृति 'कुंकुम के पगलिए' का प्रकाशन संघ/शासन/शासनेश समर्पित श्रावक रत्न टौंक निवासी श्रीमान उमरावमल जी जैन, एडवोकेट के अर्थ सौजन्य से उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विमला देवी जैन की स्मृति में किया गया है। आप क्रियोद्धारक हुक्मीचन्द जी म.सा. की परम्परान्तर्गत पंचमाचार्य परम पूज्य 1008 श्री लाल जी म.सा. के संसारपक्षीय पौत्र श्रीमान रतनलालजी बम्ब के सुपुत्र हैं और सामाजिक/धार्मिक/सांस्कृतिक एवं लोकोपकारी कार्यों से सम्बद्ध रहकर बहुआयामी सेवा कर रहे हैं।

श्रीमती विमला देवी का जन्म सन् 1940 में जयपुर में आगरा के श्रेष्ठवर्य श्री हीरालालजी पटनी के आत्मज श्री शमशेर सिंह जी पटनी के यहां हुआ। मेधावी छात्रा रही श्रीमती जैन ने महारानी कॉलेज, जयपुर से सन् 1958 में स्नातक उपाधि ली और उसी वर्ष पाणिग्रहीत होकर अपने पारिवारिक दायित्वों को संभाला। आप नारी शिक्षा व स्वतंत्रता की प्रतीक थी और अपने शान्त व मृदुल व्यवहार की सौरभ परिवार ही नहीं सम्पूर्ण समाज में विकीरित की।

संत कबीर के दोहे-''ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोये'' औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होये'' को आत्मसात कर आपने जीवन में शीतलता, स्नेह, सारल्य व माधुर्य से सबका मन मोह लिया था। मिथ्या/कटु/कठोर वचन न बोलना, क्रोध न करना व देव, गुरु, संघ के प्रति समर्पित रहना ऐसे व्यक्तिगत गुण हैं, जिनसे सिद्ध है कि आपने धर्म का मर्म समझ कर इसे जीवन से जोड़ दिया था।

अपने पति जुझारू व्यक्तित्व के धनी श्री उमरावमल जी के हर कार्यों में आप सहयोगी/ सहकर्मिणी तो रही ही अपने बच्चों को उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु सदैव प्रेरणा देकर उनके भविष्य को समुज्ज्वल बनाने में अहम् भूमिका का निर्वहन भी किया। आप सद्गृहिणी के साथ आदर्श सुश्राविका भी थी। सदैव साधु-सन्तों की सेवा में अग्रणी रहना, उनके सानिध्य का लाभ लेना, सन्त-सती दर्शन/प्रवचन श्रवण, तप-त्याग, प्रत्याख्यान आदि आपके जीवन के अंग थे। परम पूज्य गुरुदेव के दर्शन करना तथा निरन्तर ज्ञान-ध्यान में समय व्यतीत करना उन्हें सर्वाधिक प्रिय था।

आपकी भावना थी कि यह नश्वर देह धर्माराधना करते हुए आत्मरमण करे तदुनसार ही अन्तिम समय आपने गुरुदेव के दर्शन और नवकार मंत्र की माला फेरते हुए विदेह भावों में अपने प्राण त्यागे। धन्य है ऐसी स्वनाम धन्य विमला देवी को जिसने परिवार और समाज को बहुत कुछ दिया तथा विमल भावों में चेतना का ऊर्ध्वारोहण भी किया।

सद् साहित्य के प्रकाशनार्थ प्रदत्त अर्थ सहयोग हेतु बम्ब परिवार धन्यवाद का अधिकारी है।

**उदय नागोरी**

**सदस्य, साहित्य प्रकाशन समित**

# अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| 1. | कुंकुम के पगलिये | 7 |
| 2. | निज पुरुषार्थ सबसे पहले | 13 |
| 3. | अपना भाग्य बनाने की दिशा में | 19 |
| 4. | मां, बहू, बेटी का त्रिकोण टूटा | 27 |
| 5. | दो कोमल पांव और एक धीर गंभीर आत्मा | 38 |
| 6. | बालक जन्मा वन में, माता राजभवन में | 46 |
| 7. | सोना ही आग में डाला जाता है | 51 |
| 8. | कितना मनमोहक बालक ? | 57 |
| 9. | मिलने की असीम उत्कंठा, लेकिन यह क्या ? | 64 |
| 10. | श्रीकान्त ने आपा नहीं खोया | 70 |
| 11. | धैर्य और विवेक की कड़ी परीक्षा | 77 |
| 12. | पत्नी और पुत्र की खोज में | 82 |
| 13. | आपत्ति अकेली नहीं आती | 89 |
| 14. | पुरुषार्थी आत्मा का प्रभाव | 93 |
| 15. | प्रायश्चित, वैराग्य और दीक्षा | 100 |
| 16. | युद्ध के मोर्चे पर | 105 |
| 17. | दृष्टि मिलन और खून से लिखा सन्देश | 112 |
| 18. | चन्द्रनगर में योगीराज पधारे | 118 |
| 19. | योगीराज ने मनोरथ पूर्ति का बीड़ा उठाया | 123 |
| 20. | वासना के अपने ही जाले में फंसी मकड़ी | 128 |
| 21. | श्रीकान्त और मंजुला घोड़े की पीठ पर | 134 |
| 22. | अपनी अपनी कहानी दोनों की जुबानी | 140 |
| 23. | कठिनाइयों का अन्त कहां ? | 144 |
| 24. | अरण्य से सार्थवाह भाई के घर | 150 |
| 25. | सेठानी ने पूरा षडयन्त्र रचा | 156 |
| 26. | भाग्य की टेढ़ी–मेढ़ी कहानियां | 164 |

| | | |
|---|---|---|
| 27. | धोखे से कंचनपुर के कोठे में | 169 |
| 28. | एक तरुण और मंजुला आमने–सामने | 175 |
| 29. | नदी की उफनती धारा में कूदना पड़ा | 182 |
| 30. | मां यों मिली और यों खो गई | 187 |
| 31. | मां की खोज में एक से दो हो गये | 194 |
| 32. | काशी नगर में कुसुमकुमार का भाग्योदय | 201 |
| 33. | मंजुला के मन का मोद पूर्ण | 210 |
| 34. | कई पगलिये चले मुक्ति की ओर | 218 |

# १

# कुंकुम के पगलिये

शहनाई की मधुर ध्वनि गूंज रही थी, मानो सम्पूर्ण मंगल संगीतमय बनकर थिरक रहा हो। बीच–बीच में पड़ती नगाड़े की थाप उल्लासमय नृत्य का सा दृश्य उपस्थित कर रही थी।

श्रीपुर नगर के श्रेष्ठ वर्ग में यह पहला ही विवाह था जो अतीव सादगी से आयोजित किया गया था और ऐसा करने में वर का आग्रह ही प्रमुख था। चारों ओर की साजसज्जा सादी थी फिर भी इतनी सुरुचिपूर्ण थी कि देखते ही बनती थी। रंग–बिरंगे दीपों का तरल प्रकाश सभी चेहरों के गहरे हर्ष को मुखरित कर रहा था। मुखरित क्यों न करता, जबकि आज दो सुसंस्कारी मन विवाह सूत्र में बंधकर एकमेक होने जा रहे थे।

शालीन वस्त्रालंकारों से सजी परिजन महिलाओं के मंगल गीतों की मीठी राग में डूबते उतराते वर और वधू के चरण धीरे–धीरे अपनी हवेली के मुख्य द्वार की ओर बढ़ रहे थे। श्रीकान्त और मंजुला के रूप में दो सद्‌गुण–निष्ठ व्यक्तित्व एक–दूसरे में समाहित हो गये थे। चरण चल रहे थे परन्तु दोनों के मन अपनी अपनी कल्पनाओं की उड़ाने भर रहे थे।

हवेली का मुख्य द्वार आ जाने पर दोनों रुक गये–सभी रुक गये, क्योंकि नई बहू को बधना था मंगल गृह प्रवेश करवाना था। मंजुला अब अपने जन्म के घर को छोड़कर अपने पति के घर की स्वामिनी बनने वाली थी, अतः उसका गृह प्रवेश एक समारोह था। नई आने वाली बहू अब इस नये घर की इज्जत और रोशनी बनेगी– इस घर को सर्वांगतः अपना लेगी। ऐसी इज्जत और रोशनी को अति उल्लास से ही बधाया जाता है। वैसा ही उल्लास सभी परिवार वालों के मन और मस्तिष्क पर आज छाया हुआ था।

फिर मंजुला जैसी बहू भी कोई साधारण बहू नहीं थी। वह धन सम्पन्न परिवार में जन्मी व पलीपोषी सो तो ठीक किन्तु उसके धनी माता–पिता सद्‌वृत्तियों तथा सदाचरण के भी परम धनी थे और यह धन उन्होंने अपनी बेटी के हृदय में कूट–कूट कर भरा था। अपने माता–पिता की

नीतिनिष्ठ छत्रछाया में मंजुला ने श्रेष्ठ जीवन निर्माण की कला पूरी लगन से सीखी थी और उसमें दक्षता प्राप्त की थी। धार्मिकता तथा आध्यात्मिकता का रसास्वादन भी मंजुला ने खूब किया था और उसने एक सुदृढ़ आत्मशक्ति विकसित की थी।

इधर श्रीकान्त का व्यक्तित्व एवं आत्म–विकास भी अनूठा था उसमें निज पुरुषार्थ का भरपूर मान था और उसका संकल्प था कि वह हमेशा अपने जीवन का महल पुरुषार्थ की आधारशिला पर ही खड़ा करेगा। मात्र सांसारिकता उसके मन मानस पर कभी छाई नहीं– वह गृहस्थ धर्म की शुद्धता को आत्मोत्थान का कारण मानता था। इसीलिये मंजुला जैसी समस्वभावी वधू के साथ हवेली के मुख्य द्वार पर जब वह खड़ा हुआ तो उसे अपने भविष्य की कल्पना सुखद एवं सुन्दर प्रतीत हुई।

नई बहू मंजुला की आरती उतारी गई और उसकी पगतलियों पर कुंकुम का लेप किया गया, ताकि हवेली के भीतर पड़ने वाला उसका प्रत्येक चरण कुंकुम के पगलिये मांडता जाय और कुंकुम की ललाई की तरह इस घर के भविष्य को भी मंगलमय बनाता जाय। और यही हुआ– घर में एक–एक कदम चलते हुए मंजुला के लाल–लाल पगलिये घर आंगन में मंडते गये।

कुंकुम के पगलिये मांडती हुई मंजुला सबसे पहले अपने सासूजी के पास पहुंची और विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम करती हुई उनके आशीर्वाद की याचना करने लगी।

श्रीकान्त का परिवार एक छोटा सा परिवार था। कुछ अर्से पहले उसके पिता का देहावसान हो चुका था। घर में उसके सिवाय उसकी माताजी तथा उसकी छोटी बहिन पद्मा थे और चौथे प्राणी के रूप में उसकी जीवन संगिनी मंजुला इस घर की सदस्य बन चुकी थी।

श्रीकान्त की माताजी ने अपनी नई बहू के माथे पर हाथ रखकर उसको भरपूर आशीर्वाद दिया और कहा–

''मेरी प्यारी बहू, श्रीकान्त मेरा इकलौता बेटा है, मुझे बहुत प्यारा है किन्तु मैं चाहती हूं कि तुम उससे भी अधिक मेरी प्यारी बनो–यही तुम्हारे सद्गुणी जीवन का सही विकास होगा। तुम्हें इस घर में जल्दी लाने का मेरा ही मुख्य आग्रह था, क्योंकि मुझे तुम बहुत पसन्द आई थी। मैं आज बहुत खुश हूं और अब मैं इस घर की प्रतिष्ठा को तुम्हारे हाथों में सौंपते हुए विश्वास रखती हूं कि वह तुम्हारे हाथ में सुरक्षित ही नहीं रहेगी, बल्कि

अधिक उज्ज्वल भी बनेगी।''

मंजुला ने हाथ जोड़कर निवेदन किया–

''माताजी, मैं इस घर को अपने प्राणों की तरह अपना लेना चाहती हूं। आप सबकी यथायोग्य सेवा करते हुए इस घर की प्रतिष्ठा की जीवन पर्यन्त प्राणप्रण से रक्षा करूंगी यह मैं आपको दृढ़ विश्वास दिलाना चाहती हूं। बस, आपके आशीर्वाद का हाथ मेरे माथे पर बना रहे।''

श्रीकान्त की माता की आंखों से खुशी के आंसू बह चले। वह सरल मन–मस्तिष्क वाली महिला थी और पति की अखूट सम्पत्ति घर में हाने के बावजूद भी सादगी से अपना जीवन बिताती थी। श्रीकान्त को चाहता था कि वह पूरी तरह से स्वावलम्बी होने के बाद ही विवाह करेगा किन्तु उसी के आग्रह से विवाह शीघ्र सम्पन्न किया जा सका था। इसलिये नई बहू पर अधिक आशाएं थी।

उसने मंजुला को बार बार आशीर्वाद दिया और उसे अपनी छाती से लगा लिया। वह उन कुंकुम के पगलियों को बड़ी उमंग से निहार रही थी तो मंजुला भी अपने उन लाल–लाल पगलियों में अपने गहन दायित्व का बोध ले रही थी। सभी की नजरें उन पगलियों के मंडाण को आंक रही थी।

जब सब अपने–अपने घरों को चले गये तो गद्‌गद् होती सासू ने अपनी नई बहू को आज की रात अपने ही कक्ष में सुलादी। तब श्रीकान्त भी कुंकुम के उन पगलियों को विचित्र मनः स्थिति से देखता हुआ अपने कक्ष में चला गया।

X X X

श्रीकान्त अपनी शय्या पर लेट तो गया, किन्तु आज उसकी आंखों में नींद नहीं थी। उसका कारण वही जानता था अथवा उसकी मां–अन्य कोई नहीं।

उसकी आंखों में सगाई से पहले हुए अपनी माता के साथ उसके वार्तालाप तैर आये। मंजुला के परिवार वालों ने उसे पसन्द कर लिया था और शीघ्र विवाह की हठ कर रहे थे। उसकी मां को भी मंजुला बहुत पसन्द आ गई थी और वह भी चाहने लगी थी कि विवाह जल्दी हो जाय। एक वही था जिसने सगाई जल्दी न करने का और सगाई कर भी ली जाय तो विवाह जल्दी कतई न करने का अनुरोध किया था। यह बात नहीं कि मंजुला उसे

पसन्द नहीं थी उसे वह बेहद पसन्द आई थी किन्तु अपने संकल्प को वह तोड़ नहीं सकता था और संकल्प को पूरा करके वह मंजुला को कष्ट नहीं पहुंचाना चाहता था।

श्रीकान्त के पिता घर में अखूट सम्पत्ति छोड़ गये थे। घर, धन, धान्य, वस्त्र और अलंकारों से भरापूरा था अतः निर्वाह के कष्ट का तो सवाल ही नहीं था। परन्तु श्रीकान्त के दिल और दिमाग पर जिन श्रेष्ठ संस्कारों की छाप थी, उनमें एक मुख्य संस्कार था– अपने पुरुषार्थ को सबसे ऊपर रखने का और अपने पुरुषार्थ से ही अपना जीवन चलाने का।

वह पिता की सम्पत्ति को मां के दूध के समान पवित्र मानता था। मां का स्तनपान बालक तभी तक करता है जब तक वह पूर्ण अशक्त होता है और दूसरा कोई पदार्थ ग्रहण नहीं करता है। इसी तथ्य पर उसका संकल्प बना था कि वह चूंकि अब सशक्त हो गया है, अपने पिता की सम्पत्ति का तनिक भी उपभोग नहीं करना चाहेगा और अपने पुरुषार्थ पर स्वावलम्बी बनकर ही विवाह करेगा। यही कारण था कि उसने सगाई और विवाह से तब तक इन्कार कर दिया था।

लेकिन शोक में डूबी, वृद्ध और खिन्न अपनी मां के सामने उसे थोड़ा सा झुकना पड़ा था। मां मान गई थी कि वह विवाह करते ही एकाकी रात्रि विश्राम करके प्रातः ही अपना पुरुषार्थ आजमाने परदेश के लिये विदा हो जाय, किन्तु पहले किसी से यह बात न कहे। मंजुला उसे बहुत सद्‌गुणी लगी थी और उसका आग्रह था कि विवाह हो जाने से बहू तो उसके पास रहेगी और उसकी सेवा करेगी।

श्रीकान्त ने मां और पत्नी के सुख–दुःख को अपने विवेक के तराजू के पलड़ों में तोला तो उसे कष्ट हुआ कि मंजुला के साथ न्याय नहीं कर रहा, फिर भी उसे लगा कि मंजुला ऐसी है जो उसे कष्ट नहीं मानेगी और मां की सेवा से स्वयं को भी सन्तुष्ट कर लेगी। शायद मंजुला की प्रेरणा से वह भी अपने पुरुषार्थ को जल्दी सफल बना सकेगा और अपने आपको मंजुला के लिये भी एक आदर्श पति सिद्ध कर सकेगा। यही सब सोचकर उसने सगाई और उसके बाद विवाह मंजूरी दी थी।

विवाह की सम्पन्नता के साथ ही अब उसकी परीक्षा की घड़ी सामने आ गई थी। उसे मंजुला को समझाबुझा कर प्रातःकाल ही परदेश के लिये विदा होना था। उसका दिल धड़क रहा था कि उसके संकल्प के प्रति न

जाने अभी भी अपरिचित उसकी मंजुला की क्या प्रतिक्रिया होगी ?

वह इन्हीं विचारों में खोया हुआ था कि उसे कब नींद आ गई पता ही नहीं चला।

X X X

''आप पिताजी.....और माताजी ? दोनों का एक साथ अभी ही यहां कैसे पधारना हो गया'' ?

मंजुला अभी–अभी तो सोई ही थी और अपने पिताजी तथा माताजी को सामने खड़े देखकर अति आश्चर्य में डूब गई। वह बोली–

''मैं आपके घर से विदा होकर इस घर में अभी ही तो पहुंची हूं– अभी तक तो कुंकुम के मेरे पगलिये भी गीले ही हैं और आप यहां पधार आये–इसका मतलब है कि आप मेरे मोह के वश में होकर व्यग्र हो उठे। आप दोनों तो गृहस्थी में रहते हुए भी साधक रहे हैं और उसी साधना की छाप आपके मुझ पर डाली है, फिर यह मोह का आवेश क्यों ?''

''बेटी, हम जानते हैं कि तू भी एक साधिका से कम नहीं है और इसलिए वहां से विदा लेते समय भी मोहग्रस्त होकर तू रोई नहीं थी। मात्र अनुराग से तेरी आंखें कुछ गीली हुई थी। हमने सोचा कि कहीं हमारी बेटी कुछ कमजोर तो नहीं हो गई ? हम तुझे साहस बंधाने आये हैं कि इस नये जीवन में तुम्हें कैसी भी परिस्थिति का सामना करना पड़े, न तो तुम मोह से घिरोगी और न ही कभी भी धैर्य को छोड़ोगी। मंजुले, इस तरह चलना कि हम अपनी बेटी पर गर्व कर सकें।''

मंजुला का जीवन निर्माण सुदृढ़ था, फिर भी उसने सोचा कि कुछ न कुछ ऐसा अवश्य होने वाला है जिसकी सावधानी दिलाने के लिये उसके माता–पिता ने उसके नये घर में पधारने का कष्ट किया है। उसने उत्तर दिया।

''आप दोनों पूरा विश्वास रखें कि आपने अपनी बेटी को इतना मजबूत बनाया है जो किसी भी परिस्थिति के सामने कमजोर नहीं होगी और किसी भी संघर्ष से नहीं डरेगी। यह मैं बहुत ही नम्रतापूर्वक कह रही हूं.....

''लेकिन मैं तो भूल ही गई आपका स्वागत करना। मैं आपके लिये आसन लगाती हूं और सभी को बुलाती हूं.....

मंजुला ज्यों ही उठने लगी तो देखा वह उठी कहां है ? वह तो अपनी सासूजी के पास अपनी शय्या पर ही सोई हुई है और वहां उसके माता–पिता भी नहीं थे। तब उसको महसूस हुआ कि वह सपना देख रही थी और सपना भी उषाकालीन घड़ियों में आया था जिसे बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

वह उठी, नित्य कर्म से निवृत्त हुई तथा सासूजी की शय्या के पास नीचे बैठ गई ताकि वे उठें तो उनके चरणों में धोग लगावे। वह इन्तजार कर रही थी कि बाहर से उसके पति श्रीकान्त की आवाज आई जिनसे उसका प्रत्यक्ष परिचय होना अभी बाकी था–

''मां, क्या अभी उठी नहीं हो ? मुझे विलम्ब हो रहा है न ?''

मां हड़बड़ाकर उठी और यह कहती हुई जल्दी से बाहर निकल गई कि मैं अभी निबट आती हूं, तब तक तुम दोनों बात करो।

❑❑❑

# २
# निज पुरुषार्थ सबसे पहले

प्रत्यक्ष रूप से अभी भी अपरिचित अपनी जीवन संगिनी से यों अचानक पहली भेंट करने को श्रीकान्त तैयार नहीं था। उसे सूझ नहीं पड़ रहा था कि वह सबसे पहले क्या कहे–कैसे कहे ? उसे आज ही विदा होना था और पता नहीं था कि वापिस लौटना कब होगा ? अब जो भी हो, बात तो उसे करनी ही पड़ेगी।

बहुत सोचने के बाद भी श्रीकान्त इतना ही कह सका– ''प्रिये, तुम्हारा इस घर में प्रवेश बड़ा ही मंगलमय तथा आनन्दपूर्ण रहा। मैं तो इस आनन्द को हमेशा याद करता रहूंगा'' और वह यकायक चुप हो गया। उसके बोलने का स्वर तथा चुप होने का रुख ऐसा था मानों उसे हर्ष भी हो रहा हो और विषाद भी।

इसका कारण और अभिप्राय न समझ पाने से मंजुला बिना कोई उत्तर दिये चुप ही रही और गहराई से श्रीकान्त की आंखों में झांकने लगी कि आखिर वे कहना क्या चाहते हैं ?

आखिर चुप्पी श्रीकान्त को ही तोड़नी पड़ी। बात बदलते हुए वह बोला–''मंजुले, तुम अपने खुद के पुरुषार्थ से जीवन चलाने में विश्वास करती हो अथवा पिता द्वारा छोड़ी हुई सम्पत्ति से ?''

''पतिदेव, आपकी दोनों बातें मैं स्पष्ट रूप से समझी नहीं। एक तो मेरे गृह प्रवेश के आनन्द को याद करते रहेंगे– यह कैसे ? आनन्द तो हम दोनों के बीच प्रतिदिन की कर्त्तव्यपरायणता में निरन्तर बहता ही रहेगा– फिर उसको याद करते रहने की क्या बात है ? किसी के साथ रहते हुए याद नहीं किया जाता, किसी के अभाव में ही उसे याद किया जाता है, दूसरे पुरुषार्थ और सीधी सम्पत्ति की तुलना आप किस संदर्भ में पूछना चाहते हैं ?''

मंजुला की बुद्धि की तेजी से श्रीकान्त प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका, दिल को कड़ा करके मिठास के साथ बोला–''प्रिये, आनन्द को याद

करने की बात का खुलासा मैं बाद में दूंगा। पहले इस बात में तुम्हारी राय चाहता हूं कि मैं जबकि सशक्त हो गया हूं, यहां बैठकर पिता द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति को उपभोग करके जीवन चलाऊं या निज पुरुषार्थ की कमाई से जीवन चलाने के लिये आज ही परदेश चला जाऊं ?''

पहली ही भेंट के प्रारम्भ में एक बहुत बड़े निर्णय में अपनी राय देने की बात पर मंजुला जरा विचार में पड़ गई। उसे कुछ घटित होने का जो पूर्वानुमान हुआ था, वह जैसे अब घटित होने जा रहा था, किन्तु वह घबराने वाली महिला नहीं थी। किसी भी अवस्था में यह अपना धैर्य नहीं खो सकती थी। कुछ क्षण विचार कर लेने के बाद उसने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया–''पतिदेव, मैं निज पुरुषार्थ में ही सम्पूर्ण रूप से विश्वास करती हूं। जो अपने ही पुरुषार्थ पर चलता है, उस की जय–विजय होती है। यहां जो आपने अपने लिये ही मुझ से राय मांगी है तो मैं निवेदन करूंगी कि मुझे मेरे सुख की अपेक्षा भी आपका स्वावलम्बन अधिक अभीष्ट होगा।''

मंजुला का उत्तर सुनकर श्रीकान्त सन्न सा रह गया। क्या उसे इतनी बुद्धिशालिनी, त्यागवती और ओजस्वी पत्नी मिली है। वह अपनी आशा से भी अधिक आदर्श पत्नी पाकर निहाल सा होने लगा। प्रसन्नता जैसे उसके रोम–रोम से फूटने लगी, वह भाव विह्वल होकर कहने लगा–

''मंजु, मैंने संकल्प लिया था कि सशक्त होते ही मां के दूध की तरह अपने पिता की छोड़ी हुई सम्पत्ति का उपभोग नहीं करूंगा और अपने ही पुरुषार्थ से कमाई करने के लिये तैयारी कर लूंगा। बच्चा बड़ा होने के बाद मां का दूध नहीं पीता तो भला मैं ही पिता की सम्पत्ति का उपभोग क्यों करूं ? वह तो न्यास हो चुकी है जिसका समवितरण करना होगा। इसलिये मैंने आज ही परदेश के लिये विदा हो जाने का फैसला लिया है.....

श्रीकान्त तो चुप हो गया, किन्तु ऐसा निर्णय सुनकर मंजुला के मन में थोड़ी हलचल सी हुई। किन्तु तभी उसे अपने उषाकालीन सपने का ध्यान आया और ध्यान आया अपनी अडिग निष्ठा का। जो होना है, उसे शान्त भाव से ही सहन करना चाहिये। किसी भी कारण से कमजोरी लाना उसके स्वभाव में नहीं था। वह दृढ़ता से बोली–

''मुझे अपना सुख प्रिय नहीं, जीवन की श्रेष्ठता प्रिय है जो निज पुरुषार्थ की सफलता से ही प्राप्त होती है। आपका उद्देश्य सही और साहसपूर्ण है। आप जीवन के रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिये प्रस्थान कर रहे

हैं तो मैं आपको तिलक लगाकर खुशी–खुशी विदा करूंगी।''

''तुझ जैसी आदर्श पत्नी से मुझे यही विश्वास था। पत्नी पति को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाली होती है और तुम्हारा आदर्श मुझे सर्वदा व सर्वत्र प्रेरणा देता रहेगा। अब तो तुम यह भी समझ गई होगी कि मैं तुम्हारे गृह प्रवेश के आनन्द को कितने चाव से रोज याद करता रहूंगा ? तुम सी गुणशील पत्नी को पाकर मैं अपने आपको अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूं।''

''यह आपके हृदय की उदारता है जो मुझे आप ऐसी समझ रहे हैं। मैं आप जैसे पुरुषार्थी पति को पाकर क्या कम धन्य हूं जो अपने पुरुषार्थ के लिये बड़े से बड़े सुख का बलिदान दे रहा है ? आप तो मुझे अपनी आज्ञा बताइये।''

''हम गृहस्थी के रथ के दोनों समान पहिये हैं, मैं भला तुम्हें आज्ञा देने का अधिकारी कैसे हूं ? मेरी अपेक्षा यह है कि तुम मेरी बूढ़ी मां की सेवा करके उसे पूरा–पूरा सन्तोष दोगी और घर की प्रतिष्ठा की बढ़ाओगी।''

''मैं विश्वास दिलाती हूं कि आपकी अनुपस्थिति में मैं माताजी की सेवा तथा घर का रख–रखाव पूरी शालीनता से करती रहूंगी। आप निश्चिन्त रहें।''

श्रीकान्त ने कुछ रुककर कहा–''दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अनुराग के धागों से जुड़े हैं, मोह दशा हमें कमजोर नहीं बनावे। भीतर से स्वस्थ रहने वाले दम्पती एक दूसरे के आन्तरिक उत्थान की बात सोचते हैं– स्वयं कष्ट सह लेते हैं पर दूसरे को कमजोर नहीं करते हैं। तुम्हारा साहस तुम्हें कभी हारने न दे, मंजुले।''

''मेरी दृढ़ भावना है और आपकी मंगल कामना– फिर मैं घोषणा कर सकती हूं कि संसार की कोई शक्ति मुझे कभी भी कमजोर नहीं बना सकेगी चाहे संकट कितना ही विकट क्यों न हो ? आप मुझ पर पूरा विश्वास रखें।''

अब श्रीकान्त को क्या चाहिये था ? उसके उद्देश्य में सहयोग देने वाली ही नहीं, उससे भी बढ़कर उद्देश्य रखने वाली मंजुल मंजुला उसे मिली थी। वह कृतकृत्य हो गया था। ऐसी सन्नारी को कहने को क्या रह गया था ? उसके होठों पर एक मुस्कुराहट बिखर आई। वह मुस्कुराहट शरीर की नहीं, आत्मा की दिव्य मुस्कुराहट थी जिसे मंजुला ने अपने भीतर समा ली। इस मुस्कुराहट के माध्यम से दोनों सुसंस्कारी मन एक मेक हो गये। शरीर–सम्बन्ध के बिना भी दोनों की आत्मीयता एक होगई थी। श्रीकान्त में मंजुला

समा गई थी और मंजुला में श्रीकान्त। श्रीकान्त को लगा जैसे इस घर आंगन में ही नहीं, उसके जीवन पथ में भी मंजुला के कुंकुम के पगलिये गहराई से अंकित हो गये थे।

X X X

मंजुला का रोम–रोम हर्ष से विभोर हो गया था। जब पति पत्नी के आदर्श एक जो जाय तो फिर उनके जीवन में दोपना कहां रह जाता है ? श्रीकान्त से उसकी पहली भेंट क्या हुई थी कि जैसे मधु यामिनी ही बीती हो। वह खुशी के झरने में नहा रही थी।

अन्तरात्मा का आनन्द कैसा होता है जो किसी भी बाहरी पदार्थ पर टिका हुआ नहीं होता ? विवाह होते ही बिना शरीर सम्बन्ध किये पति अज्ञात समय के लिये परदेश जा रहे हैं और सोचिये कि मंजुला खुशी के झरने में नहा रही है। जिनका मन लौकिकता से ऊपर उठता है, वे ही अलौकिक आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। मंजुला को महसूस हो रहा था कि श्रीकान्त की एक ही मुस्कुराहट में उसे अपने जीवन का प्राप्य मिल गया था। दो दीपशिखाएं एक दूसरे की प्रकाश रेखा को छूकर एक हो गई थी।

मंजुला ने मन ही मन पति की पुरुषार्थ भावना की सराहना की और स्वयं भी संकल्प लिया कि वह इस घर में बहुत ही सादगी से अपना जीवन चलायगी और सासूजी की तन–मन से सेवा करके उन्हें संतोष देगी। उसने निश्चय किया कि वह अपने साधना क्रम को भी बराबर बनाये रखेगी ताकि आत्मशक्ति का निरन्तर विकास होता जाय और प्राणीमात्र के साथ समत्व भावना फैलती जाय।

श्रीकान्त और मंजुला दोनों आमने–सामने बैठे थे, किन्तु दोनों इतने विचारमग्न थे कि दोनों शरीर से ही वहां थे, वरना वे आदर्शों के दिव्य पथ पर आत्मलीन होकर विचरणी कर रहे थे। दोनों के मुखमंडल पर एक अद्‌भुत तेज चमक रहा था।

''मुझे अधिक विलम्ब तो नहीं हुआ श्रीकान्त, और क्यों रे, क्या तू आज ही चला जायगा ?– श्रीकान्त की मां जल्दी–जल्दी कदम बढ़ाते हुए अपने कक्ष की ओर आई, जहां श्रीकान्त और मंजुला दोनों उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

''मां, तुम्हें मैं अपना संकल्प तो बता ही चुका हूं'' श्रीकान्त ने धीरे से कहा।

''हां भाई बता चुका है, मगर क्या अपनी मां की एक बात और नहीं मान सकता ?''

''मां की एक नहीं, हजार बातें मानने के लिये तैयार हूं, किन्तु क्या तुम पसन्द करोगी मां, कि तुम्हारे बेटे का संकल्प टूट जाय ? मगर तुम्हारी वह एक बात क्या है ?''

''बस यही कि कुछ दिन ठहर जाओ, फिर परदेश चले जाना।''

''मां, मोह व्यर्थ है। तुम्हारी मंजुला ने भी साहस के साथ मुझे विदा देने की तैयारी कर ली है, फिर तुम्हें तो मुझे अधिक साहस देना चाहिये। तुम्हारा आशीर्वाद मुझे मेरा संकल्प पूरा करने का बल देगा। तुम मुझे आशीर्वाद दो और परदेश प्रस्थान करने की आज्ञा।''

यह सुनकर मां का हृदय विह्वल हो उठा। विवाह होते ही इकलौता बेटा उससे दूर हो जाय। यह मां को कैसे सहन होता ? उसकी आंखों में आंसू तैरने लगे। यह देखकर मंजुला बोली–

''माताजी, आपके पुत्र एक अच्छा उद्देश्य पूरा करने के लिये परदेश जा रहे हैं तो उसमें सभी को सहायक बनना चाहिये। यह हमारे लिये गौरव की बात होगी कि वे स्वावलम्बी बनकर पुरुषार्थ का प्रभाव कायम करेंगे। मैं आपके पुत्र की कमी तो दूर नहीं कर सकूंगी किन्तु एकनिष्ठा सेवा करके उस कमी को अखरने नहीं दूंगी– यह मेरा पूरा प्रयास रहेगा।''

जब पत्नी ही अपने सुखों की तिलांजलि देकर वीरतापूर्वक अपने पति को विदा देने के लिये प्रस्तुत है तो मां को भी धीरज धरना चाहिये और बेटे को निज पुरुषार्थ के पथ पर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देनी चाहिये। श्रीकान्त की मां ने थोड़ा सहज होते हुए कहा–

''प्यारे बेटे, तुमने धार लिया है तो तुम जाओगे, मैं तुम्हें रोकूंगी नहीं। मैं आशीष देती हूं कि तुम अपने उद्देश्य में पूरी सफलता प्राप्त करो और जल्दी लौटकर मेरे पास जाओ.....।''

फिर श्रीकान्त को आश्वस्त करते हुए आगे कहने लगी– ''श्रीकान्त, मैं तेरा रूप अपनी बहू में देखूंगी। मुझे विश्वास होने लगा है कि वह मेरी सेवा में कोई कसर उठा नहीं रखेगी। मैं भी इसे सहेज कर रख सकूं तो यह मेरा परम सौभाग्य होगा।''

उस समय मंजुला ने उठकर अपनी सासूजी के एक बार और धोग लगाई और कामना प्रकट की–''माताजी, आपके स्नेह की छत्रछाया मुझे बराबर मिलती रहे–ऐसी मेरी आकांक्षा है। मैं आपकी बेटी ही तो हो गई हूं।'' यह सुनते ही मां ने अपनी इस नई बेटी को गले से लगा लिया। वातावरण बड़ा भावनापूर्ण हो गया था।

जब वातावरण कुछ हल्का हुआ तो श्रीकान्त ने मां को फिर धोग लगाकर नम्रता से निवेदन किया–''मां, मुझे अब आज्ञा और विदा दो कि मैं प्रस्थान करूं और तुम्हारे आशीर्वाद से अपने पुरुषार्थ को सफल बनाऊं..... .फिर अपनी अंगुली आगे करके वह मां से बोला–''परम स्नेह से दी हुई तुम्हारी यह मुद्रिका (अंगूठी) मैं इसी तरह अपनी इस अंगुली में पहने रहूंगा और तुम्हारे इस वात्सल्य का पुण्य स्मरण करता रहूंगा। मां, तुम्हारी बहू बहुत सद्‌गुणी हैं, उसे अपनी बेटी ही समझना..... ।''

मां ने श्रीकान्त और मंजुला को स्नेह की थपकी दी, मगर भावावेग में बोली कुछ नहीं और खुद भी दौड़–दौड़ कर श्रीकान्त की विदाई की तैयारियों में जुट गई।

❑❑❑

# ३
# अपना भाग्य बनाने की दिशा में

सैंकड़ों कोस की कठिन यात्रा पूरी करके श्रीकान्त परदेश पहुंचा और एक धर्मशाला में ठहरा। कर्त्तव्य की दृष्टि से उसके मन में एक नया उत्साह तरंगें ले रहा था कि उसे अपने ही हाथों अपना भाग्य बनाना है। वह सोच रहा था कि जल्दी से जल्दी वह पहले अपने आपको स्वावलम्बी बनाले और धीरे–धीरे अर्जन के क्षेत्र में वह नीतिपूर्वक इस तरह आगे बढ़े कि सारे परिवार का निर्वाह अपनी ही कमाई से करने लगे। एक बार व्यापार का ढांचा जम जाय तो वह अपने नैतिक बल और बुद्धि कौशल से उसमें शीघ्र ही प्रगति कर लेगा तथा अपने परिवार को समृद्धि की दिशा में अग्रसर बना लेगा।

लेकिन समस्याएं भी कम जटिल नहीं थीं– पूंजी का जुगाड़ करना, अपना नित्य प्रति का निर्वाह चलाना तथा फिर अर्जन की दिशा में आगे बढ़ते जाना। सबसे कठिनाई तो मूल आधार कायम करने की ही थी।

अरे श्रीकान्त, ''तुम यहां कब आ गये ?''

श्रीकान्त ने आगन्तुक सज्जन को देखा, किन्तु वह उन्हें पहचान नहीं पाया। एक सम्पन्न लगने वाला सार्थवाह जैसा पुरुष उसके सामने खड़ा था। श्रीकान्त ने उठकर उसका सम्मान किया लेकिन सूनी आंखों से उसे देखता ही रहा।

''श्रीकान्त, शायद तुमने मुझे पहचाना नहीं और पहचानोगे भी कैसे ? मुझे यहां आये हुए कई वर्ष हो गये हैं। मैं भी श्रीपुर का ही निवासी हूं। कहो, तुम्हारे पिताजी–माताजी, बहिन सब कुशल तो हैं ?''

पिताजी का उल्लेख सुनकर श्रीकान्त की आंखें भर आई और वह तुरन्त कुछ उत्तर नहीं दे सका।

वह सार्थवाह ही फिर बोला–''अरे, तुम्हारा मुंह क्यों उतर गया ? क्या पिताजी को बहुत ज्यादा घाटा लग गया जिसके कारण तुम्हें परदेश के लिये निकलना पड़ा है ?''

अब श्रीकान्त ने गंभीरता से उत्तर दिया–''भाई साहब, कुछ अर्सा हुआ पूज्य पिताजी का देहावसान हो गया तथा माताजी के आग्रह से मुझे विवाह भी करना पड़ा। घर में पिताजी की अखूट सम्पत्ति है, लेकिन समर्थ हो जाने के बाद मां के पवित्र दूध की तरह उस पवित्र सम्पत्ति का उपयोग करना मैंने उचित नहीं समझा और अपना भाग्य स्वयं बनाने के विचार से खाली हाथ परदेश के लिये निकल पड़ा।''

''अच्छा, तो क्या कहीं कुछ काम जमाया है ?''

''नहीं, भाई साहब, मैं कल सायंकाल ही यहां पहुंचा हूं और अभी सोच ही रहा था कि क्या कुछ कैसे किया जाय कि आपका पधारना हो गया।''

''चलो यह बहुत अच्छा हुआ श्रीकान्त, तुम मेरी भागीदारी में आ जाओ। मैं जानता हूं कि तुम व्यापार में दक्ष बुद्धिशाली पिता के कुशल पुत्र हो–जल्दी ही सफलता पा लोगे।''

''आपका संरक्षण मिल जाय तो मैं अपना सौभाग्य मानूंगा। क्या मैं आपका शुभ परिचय जान सकता हूं ?''

''यह तो मैं कह ही चुका हूं कि मैं भी श्रीपुर का ही निवासी हूं, मेरा नाम धनसुख है, बाकी साथ रहेंगे तब जान जाओगे। मेरा प्रस्ताव है कि पूंजी जितनी चाहिये मुझ से लो, उत्साहपूर्वक व्यापार चलाओ और लाभ दोनों का भाग बराबर क्यों मंजूर है न ?''

अंधे को मिल जाय दो आंखें, फिर उसे क्या चाहिये ? श्रीकान्त ने खुशी–खुशी कहा–''भाई साहब, आपका प्रस्ताव मुझे मंजूर है।''

यह सुनते ही धनसुख सार्थवाह ने श्रीकान्त को अपने गले लगा लिया और कहा–''अब तुम मेरे साथ रहोगे भाई। चलो, अभी ही चले चलो।'' और धनसुख श्रीकान्त को उसी समय अपने साथ ले गया, उसके निवास की समुचित व्यवस्था की और शाम का खाना खाने के बाद दोनों विचार करने लगे कि व्यापार की क्या योजनाएं हों ?

X X X

श्रीकान्त ने अपनी भरपूर बुद्धि, लगन और कुशलता से धनसुख सार्थवाह के साथ अपने नये व्यापार को जमाना शुरू किया। अब तक धनसुख का व्यापार उस नगर तक ही सीमित था और उसमें विशेष लाभ नहीं होता था। श्रीकान्त ने धनसुख के व्यापार को सुदूर क्षेत्रों तक फैलाना चालू

किया। वह सुदूर क्षेत्रों में अधिक उपलब्ध माल को वहां कम दामों में प्राप्त करके यहां लाता और अच्छे दामों में वह माल हाथोंहाथ यहां बिक जाता। इस तरह इधर के माल को वहां पहुंचाता और उसमें भी अच्छा लाभ कमाता।

किन्तु माल को इधर से उधर और इधर से उधर लाने ले जाने में कम खतरे नहीं थे। बीहड़ जंगलों और बाधाओं को तो पार करना ही पड़ता था लेकिन जान भी जोखिम में पड़ी रहती थी। बीच में कई चोर पल्लियां पड़ती थीं जिनका धंधा ही आते–जाते आर्थवाहों के काफिलों को लूटना होता था। वे माल भी लूट लेते और काफिले वालों को मारते–पीटते थे। यह श्रीकान्त का ही साहस था कि इन सारी कठिनाइयों के बावजूद उसने उस व्यापार को बहुत लाभप्रद बना दिया।

धनसुख इस बढ़ते हुए लाभ को देखकर चकरा सा गया था। इतने वर्षों के व्यवसाय में वह जितना नहीं कमा सका, उससे अधिक अब कमाई होने लगी थी। कहा है तृष्णा वैतरणी नदी है–उसका कहीं पार नहीं आता। ज्यों–ज्यों धन बढ़ने लगा, धनसुख की तृष्णा अधिक से अधिक प्राप्त करने की ओर बढ़ने लगी। इस तृष्णा ने उसके दिल में ऐसा ज्वार पैदा कर दिया कि रात–दिन हाय–हाय का दौरा लगने लगा। अब तो उसका मन ऐसा हो गया कि कैसे भी मिले; नीति से अथवा अनीति से भी ज्यादा से ज्यादा धन कमाया जाय ताकि एक दिन वह अपनी हवेली पर एक नहीं, कई ध्वजाएं फहरा सके।

इस बीच एक घटना घटी। श्रीकान्त का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं था, इस कारण इस बार का काफिला लेकर धनसुख को जाना पड़ा। मार्ग में एक चोर पल्ली आई, वहां उसके काफिले को चोरों ने घेरा और उसे लूटना चाहा। तभी धनसुख आगे बढ़ा और चोरों के सरदार से कहने लगा–

''सरदार साहब, आप भले ही मुझे लूट लो मगर मैं आपसे एक काम की बात करना चाहता हूं जिससे हमेशा के लिये हमारा और आपका खूब लाभ होता रहेगा।''

चोरों का सरदार भी यह बात सुनकर प्रभावित हुआ। उसने पास आकर पूछा–''बोलो सेठ, क्या कहना चाहते हो ?''

दोनों जरा एक तरफ हटकर दूर चले गये तब धनसुख ने समझाया कि आप काफिलों का माल लूट तो लेते हो लेकिन बहुत सारा माल इधर उधर न ले जा सकने के कारण फालतू बरबाद होता होगा सो हमेशा के लिये

अपने सौदा कर लेते हैं कि आपका लूटा हुआ सारा माल मैं खरीदता रहूंगा। आपको नकद भुगतान करता रहूंगा। यह प्रस्ताव सरदार के मन पर चढ़ गया। हकीकत में लूटा हुआ बहुत माल बेकार होता था और इस कारण उस तरह के काफी माल को वे लूटते भी नहीं थे जिसे वे फरोख्त नहीं कर सकते थे। इस प्रस्ताव से उनका लाभ कई गुना बढ़ सकता था और वे अपनी लूट का दायरा भी बढ़ा सकते थे क्योंकि सारे माल का भुगतान उन्हें नकद मुद्रा में मिल सकेगा। बस दोनों के बीच इस करार के साथ दोस्ती हो गई।

इस तरह धनसुख हर चोर पल्ली पर ऐसे करार करता गया और उपलब्ध माल को कौड़ियों के दाम खरीदता गया। जब वह पूरा दौरा करके अपने नगर को लौटा तो उसका दिल बल्लियों उछल रहा था वह जल्दी से जल्दी श्रीकान्त को बताना चाहता था कि इस दौरे में पहले से चार गुना लाभ हुआ है। अब हर दौरे में लाभ की मात्रा बराबर बढ़ती ही चली जायगी।

श्रीकान्त के पास पहुंचकर धनसुख ने उसके स्वास्थ्य का हालचाल पूछा और उसकी तबियत ठीक जानकर खुशी जाहिर की। उसके बाद उसने अपने दौरे का सारा हाल बताया तथा चोरों के सरदारों के साथ किये गये करारों का जिक्र किया। यह भी बताया कि अब उनके द्वारा कई करोड़ों की सम्पत्ति इकट्ठी करने में अधिक समय नहीं लगेगा।

बड़ी धीरज के साथ श्रीकान्त ने यह सब सुना, उसके मन में आक्रोश आने लगा किन्तु उसको दबाकर उसने प्रेमपूर्वक कहा– ''धनसुख भाई साहब, धन के लालच में आपने यह क्या किया ? हम नीति से व्यापार करने वाले हैं चाहे लाभ कम ही मिले। और आपने चोरों के सरदारों के साथ ऐसे करार करके अनीति की हद कर दी है। अब काफिलों की लूट और खूनखराबा बहुत बढ़ जायगा और उस लूट का माल आपके घर में पहुंच कर क्या आपको सुख से रहने देगा ? करोड़ों का धन इकट्ठा करने की तृष्णा में यह तो आप अकाज कर आये हैं, भाई साहब।''

धनसुख से तुरन्त कुछ कहते नहीं बना, किन्तु उसके मन के भीतर बैठे धन के लालच ने तुरन्त चाल पड़ी। भाव क्रूर होने लगे, आंखों में ललाई आने लगी और कठोर होकर फूट पड़ी–''श्रीकान्त, कैसे भी मिले, मुझे तो अपार धन चाहिये। मैं नीति–अनीति के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता। तुम्हारी नीति तुम अपने पास रखो। मैंने तो करार कर लिये हैं और उनका बराबर पालन किया जायगा।'' श्रीकान्त ने धनसुख का वीभत्स रूप देखा तो हृदय उसके

पास के प्रति घृणा से भर उठा। अब उसे समझाने की कोई गुंजाइश नहीं दिखाई दी।

श्रीकान्त खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर शान्ति से बोला– ''भाई साहब, मेरे लिये तो नीति पहले और लाभ बाद में है। इसलिये अब अपनी भागीदारी निभेगी नहीं।'' कुछ रुककर उसने आगे कहा–''मैं अभी ही आपसे विदा लेना चाहूंगा। आपसे अब तक कोई कहा सुनी हुई हो, उसके लिये माफी चाहता हूं।'' इतना कहकर वह धीरे–धीरे हवेली से बाहर हो गया किन्तु धनसुख का लोभी मन पिघला नहीं। नीति से व्यापार जमा कर लाभ कमाने के श्रीकान्त के अहसानों को भी वह भूल गया।

X X X

श्रीकान्त फिर खाली हाथ सड़क पर आ गया था। उसने अपनी नैतिकता की रक्षा के लिये अब किसी के भी साथ भागीदारी नहीं करने का निश्चय किया और सोचा कि वह एकाकी ही कोई धंधा करेगा ताकि उसकी नैतिकता को कभी भी किसी भी तरह की आंच नहीं आवे।

इधर–उधर जानकारी लेने के बाद श्रीकान्त को जंचा कि दूर बियावान जंगलों में रत्नों की खानें बताई गई हैं। उनकी खोज की जाय और रत्न–व्यवसाय शुरू किया जाय जिसमें नीति की रक्षा भी होगी तो समृद्धि भी जल्दी आ सकेगी।

यह विचार करके श्रीकान्त उस दिशा की ओर बढ़ चला। वह अध्यवसायी था और साहसी भी कम नहीं था। राह आई बाधाओं का मुकाबला करते हुए वह जंगल के भीतरी चट्टानी इलाकों में पहुंच गया किन्तु खानों का कोई निशान नहीं दिखाई दिया। जब वह बहुत थक गया तो इधर–उधर किसी अच्छे स्थान की तलाश करने लगा तभी उसे कुछ ऊंचाई पर एक गुफा दिखाई दी। सोचा– गुफा में कोई तापस आदि हुआ तो खानों का भी पता चल सकेगा। वह गुफा में घुसा तो वास्तव में वहां एक तापस ध्यान में बैठा हुआ था। श्रीकान्त भी यह सोचकर वहां की ठंडक में बैठ गया कि इनका ध्यान टूटेगा तब तक वह आराम कर लेगा और फिर इनसे खानों का मार्ग पूछेगा व अपने गंतव्य की ओर आगे बढ़ेगा। कड़ी थकान के बाद श्रीकान्त को वहां विश्राम करना बहुत अच्छा लगा।

तभी वहां एक विद्याधर अपने एक साथी के साथ गुफा में घुसा। वे दोनों कुछ बहस करते हुए आ रहे थे और गुफा में तापस व श्रीकान्त जैसे

ओजस्वी तरुण को देखकर विद्याधर बोला–''मित्र, यहां हमारे विवाद का कुछ निर्णय हो सकेगा।''

तापस तो ध्यान में थे। श्रीकान्त ने ही पूछा– ''आप कौन हैं और यहां किस मार्ग से होकर पधारे हैं ?''

''हम विद्याधर हैं, और पृथ्वी के मार्ग से नहीं चलते, आकाशमार्ग से चलते हैं। हमारा विमान 'हंसयान' बाहर रखा हुआ है। लेकिन तुमने मार्ग के लिये क्यों पूछा ?''

''मैं इस जंगल में रत्नों की खानों का पता पाने के लिये भटक रहा हूं। इन योगीजी से यही पूछना चाहता था किन्तु ये तो ध्यान में है। इसी कारण मैंने आपसे भी मार्ग का पता पूछ लिया।''

''अच्छा तरुण, यह तुम्हें फिर बतायेंगे। अभी तो मैं अपने इस साथी के साथ एक विवाद में उलझा हुआ हूं। मेरा मानना है कि आज की रात इतने शुभ नक्षत्रों का योग है जिसमें कोई सद्गृहस्थ योग साधे तो वह भारी लाभ उठा सकता है और योगी भी इस योग को साधे तो वह सिद्धियां पा सकता है। मेरा साथी कहता है कि मैं विश्वास नहीं करता। मैं चाहता हूं कि इस नक्षत्र योग का लाभ प्रत्यक्ष रूप से दिखाकर मेरे साथी को आश्वस्त कर दूं।''

श्रीकान्त सुनता रहा, इसमें उसको उत्तर देने के लिये कुछ था नहीं। किन्तु विद्याधर ने आगे कहा– ''नक्षत्र चाहे आकाश में होते हैं किन्तु मैं मानता हूं कि उनका धरती के प्राणियों पर प्रभाव गिरता है। ''तभी उसका साथी बीच में बोल पड़ा– ''यह सब तुम्हारी कल्पना है। इतनी दूर रहे हुए नक्षत्रों का भला यहां के प्राणियों पर क्यों कर असर पड़ेगा ? अगर तुम इसका प्रत्यक्ष उदाहरण ही प्रस्तुत करना चाहते हो तो इस तेजस्वी तरुण से कुछ बात करें।'' श्रीकान्त चौंका कि इस बहस में उससे क्या बात की जा सकती है ?

विद्याधर को यह सुझाव एकदम पसन्द आ गया। वह श्रीकान्त की ओर मूड़ा और पूछने लगा–

''क्यों तरुण तुम विवाहित हो ?'' श्रीकान्त ने हां भरी तो वह बोला–''क्या तुम हमारे इस विवाद का समाधान निकालने में सहायक बन सकते हो ?''

''वह कैसे ?''

''आज रात का नक्षत्र–योग इतना शुभ है कि यदि कोई सद्गृहस्थ अपनी धर्मपत्नी का सहवास करे तो उसको ऐसे भाग्यशाली पुत्र–रत्न की

प्राप्ति होगी जो शरीर, बुद्धि लावण्य और आकृति आदि में तो श्रेष्ठ होगा ही किन्तु जब भी वह हंसेगा दो उसके मुंह से एक बहुमूल्य लाल नीचे गिरेगी। हम तुम्हारे माध्यम से अपनी विद्या के इस प्रयोग को सिद्ध करना चाहते हैं क्योंकि तुम हमें अत्यन्त विचक्षण तथा सच्चरित्र तरुण प्रतीत हुए हो। और तुमने रत्नों की खानों का पता भी जानना चाहा है तो इस तरह तुम्हें एक अमूल्य रत्न और लालों की खान ही क्यों न दे दें ? बोलो, अब तो तैयार हो न ?''

श्रीकान्त सब सुनकर चकित सा रह गया कि रत्नों की खोज उसे कहां तक ले लाई ? अपना भाग्य बनाने की दिशा में वह निकला है तो इस रत्न प्राप्ति के अवसर को वह भला कैसे ठुकरा दे ? किन्तु इसके बीच उसे एक बाधा दिखाई दी, इसलिये वह बोला– ''श्रीमान् मेरा घर यहां से सैंकड़ों कोस की दूरी पर है और सूर्यास्त होने वाला है अतः आज की रात मैं घर पहुंच ही कैसे सकता हूं ?''

विद्याधर ने तुरन्त कहा–''भाई, इसका प्रबन्ध मैं करूंगा। हम जिस हंसयान से यहां पहुंचे हैं वह बाहर रखा हुआ वह कुछ घंटों में ही आकाश मार्ग से तुम्हें तुम्हारे घर पर पहुंच देगा। यह विमान तनिक भी आवाज नहीं करता अतः तुम अपने मकान की छत पर चुपचाप उतर सकते हो। किसी को कानोकान भी खबर नहीं होगी। बस शर्त यही है कि सूर्योदय से पूर्व तुमको हर हालत में यहां पहुंच जाना चाहिये वरना अनिष्ट हो सकता है।''

''मैं आपका विश्वास हर हालत में निभाऊंगा और सूर्योदय से पूर्व लौट आने में किसी भी बाधा को आड़े नहीं आने दूंगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।''

''तो शीघ्रता करो तरुण और हमारे इस ज्योतिषीय से सम्बन्धित प्रयोग को सत्य सिद्ध करो।' विद्याधर फिर अपने साथी की ओर मुड़ा और बोला–''भाई, यह तरुण प्रातःकाल लौट आवे तब तक हम यहीं विश्राम करते हैं और योगीजी का सत्संग करते हैं।''

तापस सारे वार्तालाप को सुन रहे थे और अपने ज्ञान में भी देख रहे थे कि विद्याधर की बात सही किन्तु उन्होंने अपना ध्यान तोड़ा नहीं कारण कि वे गृहस्थी के कार्य का याने अब्रह्मचर्य का अनुमोदन नहीं करना चाहते थे। तापस को तब भी ध्यानस्थ पाकर विद्याधर ने अपने साथी को आश्वस्त किया–

''बन्धु, उस तरुण के लौट आने पर हम अपने ज्ञान से यह देख लेंगे कि शुभ नक्षत्र योग के फलानुसार तेजस्वी बालक गर्भस्थ हुआ है या नहीं और तभी इस विवाद का सही समाधान भी तुम्हें मिल जायगा।''

''तब मैं अवश्य तुम्हारी बात सिर झुकाकर मान लूंगा।''

और दोनों श्रीकान्त का हाथ पकड़कर गुफा से बाहर आये। उसे हंसयान को चलाने की विधि समझाई तथा उसे विमान पर सवार किया। दोनों ने विदा देते हुए कहा–''तरुण, तुम्हारा भाग्य फलदायी बने। हां अपने होने वाले पुत्ररत्न की यह पहचान मत भूलना कि जब भी वह हंसेगा तो उसके मुंह से एक बहुमूल्य लाल नीचे गिरेगी।''

''आपका मैं सदैव आभारी रहूंगा–''कहकर श्रीकान्त ने हाथ जोड़ लिये और विमान को चला दिया। ''

❑❑❑

# ४

# मां, बहू, बेटी का त्रिकोण टूटा

दुनिया में मौटे तौर पर दो तरह की शक्तियां होती है– एक अच्छाई की शक्ति तो दूसरी बुराई की शक्ति। इन दोनों शक्तियों के बीच में बराबर टक्कर चलती रहती है। बुराई की शक्ति नीचतापूर्वक अच्छाई की शक्ति पर वार करती रहती है लेकिन अच्छाई की शक्ति उन चोटों को धीरज से झेलती है और बुराई की शक्ति को सुधारने की भावना से अच्छा बर्ताव करती है ताकि बुराई का वातावरण मिट सके। अच्छाई की शक्ति को बुराई की शक्ति के हाथों चाहे जितना कष्ट उठाना पड़े और अधिकतर कष्ट उठाना ही पड़ता है परन्तु वह अच्छाई की शक्ति कमजोरी नहीं पकड़ती है। निरन्तर संघर्ष करते हुए अन्तिम विजय को वह प्राप्त करती ही है।

आपने बोरड़ी (बेर की झाड़ी) देखी होगी। उसकी एक ही डाली पर सीधे कांटे भी होते हैं और टेढ़े कांटे भी होते हैं। उसी प्रकार मनुष्य जाति में भी सीधी प्रकृति के लोग भी होते हैं और टेढ़ी प्रकृति के लोग भी होते हैं। सीधी प्रकृति के लोग अच्छाई लेकर चलते हैं तो टेढ़ी प्रकृति के लोग बिना कारण भी बुराई करने पर उतारू हो जाते हैं।

श्रीकान्त के परदेश चले जाने के बाद उसके परिवार में फिर से तीन प्राणी ही रह गये और तीनों महिलाएं। मां, उसकी बहू मंजुला और उसकी बेटी पद्मा। यों समझलें कि मां, बहू और बेटी का त्रिकोण बन गया। इस त्रिकोण में एक कोण मंजुला का, जिसे अच्छाई की शक्ति कह दीजिये। दूसरा कोण पद्मा का जिसे बुराई की शक्ति का रूप समझ सकते हैं तो दोनों कोणों के बीच में मां का कोण।

पद्मा शुरू से टेढ़ी प्रकृति की लड़की थी। स्वस्थ पारिवारिक वातावरण के बावजूद वह सद्गुणों को धारण नहीं कर पा रही थी बल्कि यह मानें कि उनके स्वभाव में दुर्गुण ही दुर्गुण भरे हुए थे।

मंजुला ने तो श्रीकान्त की अनुपस्थिति में अपनी सास की पूरी सेवा करने तथा घर की प्रतिष्ठा बनाये रखने का संकल्प उठा रखा था अतः वह

तो अपने कर्त्तव्य के पालन के प्रति विशेष जागरूक बन गई थी। माताजी की सेवा तो मन–मन से करती थी किन्तु अपनी ननद बाई के प्रति भी छोटी बहिन से बढ़कर स्नेह रखने लगी थी।

किन्तु पद्मा का खयाल और बर्ताव उल्टा चलने लगा था। वह सोचती थी कि भाभी ने आते ही उसकी मां पर जैसे जादू कर दिया था। उसने मां को इस तरह वश में कर लिया कि मां हर समय भाभी को ही याद करती थी और उसे तो जैसे वह भूल ही गई है।

टेढ़ी प्रकृति में टेढ़े काम ही सूझते हैं। ऐसा टेढ़ा व्यक्ति गुणग्राही नहीं होता है तो पद्मा ने भी यह नहीं सोचा कि वह भी भाभी की तरह या उससे भी बढ़कर मां की सेवा करने लगे, बल्कि वह भाभी से डाह करने लगी। वह बिना कारण ही रात–दिन ईर्ष्या की आग में जलने लगी और कुटिलाई से विचार करती रहती कि किस प्रकार कोई षड़यंत्र रचकर वह मां और भाभी के बीच में मोटी दरार डालकर भाभी पर बढ़ते जा रहे मां के स्नेह को तोड़ दे ताकि मां फिर उसी के वश में हो जाय। इसलिये वह मंजुला के हर काम में दोष निकालने लगी और उसे क्लेषित करने की चेष्टाएं करने लगी। मंजुला जब भी सामने आती, उससे वह नाक भौं सिकोड़ती और यह दिखाती कि वह उससे बहुत घृणा करती है फिर भी मंजुला उसका कुछ भी बुरा नहीं मानती और कह देती–''बाईसा, आप ही मुझे काम करने के सही तरीके सिखादो।' यह सत्य है कि जिनके स्वभाव में धर्म होता है वह नम्र भी होता है क्योंकि वह जानता है कि नम्रता धर्म का मूल होती है। नम्रता तो सबसे गुण ग्रहण करना चाहती है, परन्तु जिसको अपने पुरुषार्थ का भान नहीं होता, वह थोथे अभिमान से भरा रहता है तथा अपने को सबसे ऊपर समझता है। पद्मा भी ऐसी ही थी जो अपने झूठे अभिमान और कुटिल ईर्ष्या के पीछे भाभी को काटने पर तुल गई।

पद्मा के मन में लगी हुई थी कि भाभी के प्रति मां के स्नेह को कुछ भी करके तुड़वा देना और मां को अपने वश में करके भाभी से बदला निकालना। मंजुला को कैसे गिराना और कैसे गिराने का षड़यंत्र रचना–इसी उद्‌बोधन में पद्मा अपनी आत्मशक्ति का दुरुपयोग करने लगी। इसी आत्मशक्ति का यदि वह सदुपयोग करती तो अपने दुर्गुणों को दूर हटा सकती थी, किन्तु उसने तो उसका दुरुपयोग करने की ही ठान ली थी वह भाभी के छिद्रों की खोज करने में लगा कि कहीं कोई छिद्र मिल जाय तो तिल का

ताड़ बनाकर वह अपना खेल बना ले। ऐसे दुष्ट स्वभावी व्यक्ति तोड़ सकते हैं, जोड़ नहीं सकते।

दूसरी ओर मंजुला अपनी कर्तव्यनिष्ठा, नम्रता और सेवावृत्ति पर कायम थी एवं उसके सद्व्यवहार से उसके सासूजी उससे पूरी तरह से सन्तुष्ट थे। मंजुला के मन में कोई हलचल नहीं थी, इसलिये वह पद्मा के मन की हलचल का कोई अनुमान नहीं लगा सकी। पद्मा के प्रति भी उसकी तो सम और स्नेह भावना ही थी।

अच्छाई और बुराई की शक्तियां जैसे किसी भावी संघर्ष के लिये सावधान हो रही थीं।

X X X

थप.....थप्.....थप्.....

मंजुला हवेली की तीसरी मंजिल के अपने एकान्त कक्ष में धर्माराधन करके सोई ही थी कि उसने किवाड़ों पर थप् थप् थप् की आवाज सुनी। वह तो सोच रही थी कि उसके पुरुषार्थी पति न जाने क्या–क्या कष्ट उठा रहे होंगे और वह उनकी सहभागिनी नहीं बन पाई किन्तु यह सोचकर सन्तोष का अनुभव कर रही थी कि वह अपने पति के निर्देशानुसार माताजी की सेवा कर रही थी।

किन्तु उस समय सारी हवेली में किसी भी हलचल की आहट सुने बिना अपने एकान्त कक्ष के किवाड़ों पर ही थाप सुनकर वह चौंकी ही नहीं, बल्कि डरी भी कि यह क्या संकट है ? वह धीरे से उठी और दरवाजे के पास तक जाकर सुनने लगी तो सुना कि उसके स्वामी श्रीकान्त ही उसे हौले–हौले पुकार रहे हैं। उसने अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। वर्षों की यात्रा पर गये हुए उसके पतिदेव भला चार ही माह में सैंकड़ों कोस फिर से पार करके वापस कैसे आ सकते हैं ? और यह उनका पुरुषार्थ इतनी जल्दी और इस तरह हताश हो सकता है ? एक पल के लिये वह रुकी कि कहीं उसके मन में मोह तो नहीं समा गया है और उसने भ्रम तो नहीं पैदा कर दिया है ? किन्तु दूसरी तीसरी बार पुकारने से वह आश्वस्त हो गई और उसने किवाड़ खोल दिये। देखा कि वहां उसके स्वामी श्रीकान्त ही थे।

''स्वामी.....आप ? और इस समय ?'' मंजुला अब भी जैसे आश्चर्य में ही डूबी जा रही थी।

''हां मंजु, मैं ही हूं। बात ही कुछ ऐसी हो गई है कि तुम्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक है।

''किन्तु आप ऊपर पधारे कैसे ? हवेली के किवाड़ खुलने की तो आवाज ही नहीं आई और फिर पधारते ही क्या माताजी से भी नहीं मिले ?'' मंजुला अब भी चकित सी श्रीकान्त के मुंह को निहार रही थी।

श्रीकान्त ने मंजुला को आश्वस्त करते हुए शय्या पर बिठाया और स्वयं भी पास में बैठा तब उसने कहा–''मंजुले, मैं अभी आकाश मार्ग से आया हूं। जिस विमान 'हंसयान से मैं यहां पहुंचा हूं, उसे मैंने सीधा इस कक्ष के बाहर छत पर ही उतारा है। इस से विमान की कोई आवाज नहीं होती अतः इतनी रात की निस्तब्धता में भी कोई नहीं जान सका है कि मैं तुम तक पहुंचा गया हूं।'

''तो इतने कम समय में आपने अमित पुरुषार्थ से क्या इतनी बड़ी उपलब्धियां प्राप्त कर ली है ? क्या यह हंसयान उन्हीं में से एक है ? अब आप फिर से परदेश तो नहीं जायेंगे न ? चलिये, पहले माताजी के दर्शन कर लीजिये–' कहती–कहती उठ खड़ी हुई।

श्रीकान्त ने उसे फिर बैठाया और अब तक की आप बीती सुनाने के बाद विद्याधर की बातें बताई। खुशी बिखराते हुए श्रीकान्त ने कहा–

''प्रिये, विद्याधर ने मुझे दूसरी बार याद दिलाया था कि हमारे सुपुत्र की पहिचान होगी–हंसते–हंसते ही मुंह से एक बहुमूल्य लाल रत्न का गिरना।' और जैसे खुशी अब ओर बिखर गई।

नींद कुछ देरी से खुली, पिछली रात्रि कुछ ज्यादा बीत गई थी अतः श्रीकान्त हड़बड़ाकर उठ बैठा और समय देखकर घबरा सा गया कि उसे सूर्योदय से पहले पहले हंसयान विद्याधर को सौंप देना है। उससे पहले एक प्रहर की यात्रा भी बाकी है। देरी इतनी हो गई थी कि वह एक पल भी वहां और रुकने की स्थिति में नहीं था।

मंजुला भी साथ–साथ ही उठ गई थी और हड़बड़ाकर बोली–क्या हो गया है स्वामी ? क्या लौटने का समय हो गया है ?'

''विलम्ब हो गया है प्रिये, सूर्योदय से पूर्व हंसयान विद्याधर को लौटाकर मुझे अपना वचन निबाहना है।'

''माताजी से तो मिलकर जायेंगे ?'

''नहीं मंजू, अब यह जरूरी काम भी मैं नहीं कर पाऊंगा। समय बिलकुल नहीं है।'

''किन्तु.....'

''किन्तु क्या प्रिये ?'

''नहीं, कोई बात नहीं।'

''मैं समझ गया मंजुले। लो यह मेरी मां की दी हुई अंगूठी। तुम अपने पास रख लो ताकि जरूरत पड़े तो प्रमाण बता सको क्योंकि मां जानती है कि मैं इस अंगुली में पहिनकर ही परदेश के लिये रवाना हुआ था।''

मंजुला ने वह अंगूठी ले ली। अपने पति के चेहरे को भरपूर नजर से देखते हुए उसने इतना ही कहा–''प्राणनाथ, जल्दी ही लौटियेगा।'

दोनों की आंखों में एक नई ही चमक थी। श्रीकान्त ने अपने मनोभावों को सन्तुलित बनाते हुए मंजुला की पीठ थपथपाई जैसे कि दोनों की दृढ़ता की अनुभूति ली हो।

त्वरित गति से श्रीकान्त बाहर निकला और अपने हंसयान पर सवार हो गया। जैसे पत्ता भी न खड़का हो, हंसयान एकदम शान्त गति से आकाश मार्ग पर आगे से आगे बढ़ चला। मंजुला तब तक उधर देखती रही जब तक उसके पुरुषार्थी पति और उनका विमान आंखों से ओझल नहीं हो गया। फिर समत्व भावना से अपने प्रातःकालीन धर्माराधन में प्रवृत्त हो गई।

X X X

''मंजुला, ओ बेटी मंजुला.....''

मां ने बहुत स्नेह से पुकारा, शायद उसको कोई काम था। मंजुला किसी काम से घर से बाहर गई हुई थी अतः इस पुकारने को पद्मा ने सुना और सुनकर जल भुन गई कि मां ने इतने अधिक स्नेह से उसको कभी नहीं पुकार था।

पिछले अर्से में उसने मंजुला का एक छिद्र भी पकड़ लिया था। भाई साहब को परदेश गये आठ माह का अर्सा होने आया था जबकि उसे ऐसा लग रहा था कि मंजुला को तीन–चार माह का गर्भ होना चाहिये और एक बहुत बड़ा छिद्र लगा जिसके आधार पर वह अपने षड़यंत्र को सफल बना सकती अतः इस अवसर का लाभ उठाने के नीयत से मां के मंजुला को

पुकारने पर वह खुद ही मां के पास चली गई। उसने रोष दिखाते हुए मां से कहा–

''क्या मां, हर वक्त तुम मंजुला–मंजुला ही पुकारती रहती हो ? मुझे तो कभी इतने स्नेह से नहीं पुकारती, जबकि मैं तो तुम्हारी बेटी हूं।''

मां ने पद्मा के चेहरे पर एक सरसरी नजर दौड़ाते हुए धीमे स्वर में कहा–

''तुम सच कहती तो पद्मा, मंजुला मेरी सेवा इतनी लगन से करती है कि वह मेरे लिये बेटी से भी बढ़कर हो गई है।''

अब तो पद्मा का क्रोध ज्वालामुखी बनकर फूट पड़ा। वह नचा–नचाकर कहने लगी– ''मां, तुम तो मंजुला के प्रति अंधी हो रही हो। कभी उसके दुराचरण की तरफ भी तुम्हारा ध्यान गया है ?''

''क्या कहती हो पद्मा ? मेरी मंजुला बहू परम सदाचारिणी है। तू उसका कौनसा दुराचरण बताना चाहती है ?

''तुम सुन सकोगी मां ? बड़ी कड़वी बात है, सुनते ही चक्कर खा जाओगी।'

मां को हकीकत में चक्कर आने लगा कि यह नटखट छोकरी क्या बुरी बात कहने वाली है ? वह बोली– ''ऐसी क्या बात है पद्मा मुझे जल्दी बताओ; मेरा मन आकुल हो रहा है।''

यह पद्मा को भाभी पर वार करने का सही मौका दिखाई दिया। वह कटाक्ष करते हुए बोलनी लगी–''मां जिस भाभी से तुम इतनी ज्यादा प्रभावित हो और जिसकी प्रशंसा के हर समय तुम पुल बांधते हुए थकती नहीं हो जानती हो, उसे इस समय तीन–चार माह गर्भ है जबकि भाई साहब को परदेश गये आठ माह होने आये हैं।'

''क्या यह सच है ?– मां ने कह तो दिया। लेकिन उसे लगा जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। धुंधली आंखों से उसे दीखने लगा कि उसके परिवार की यशः पताका आसमान से नीचे गिर रही है और वर्षों की प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल रही है। वह स्तब्ध थी।

अब तो पद्मा ने नमक मिर्च लगाकर कहना शुरू किया–''यह तो सात पीढ़ी पर कलंक लगने की बात है मां, निश्चय ही यह गर्भ किसी दूसरे का ही होगा। भाभी के दुष्चरित्र का जब आसपास में और फिर चारों और भांडा

फूटेगा तो क्या तुम और क्या मैं मुंह दिखाने लायक भी रह जायेंगे ? बहुत स्नेह दिया तुमने अपनी बहू को और उसका ऐसा नतीजा अब आंख खोलकर देख लो।'

मां की रुलाई फूट आई, उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया कि वह यह क्या सुन रही है ? और पद्मा खुश थी कि आज उसका तीर पूरी कामयाबी से चल गया है। मां और भाभी के बीच इतनी मोटी दीवार खड़ी हो गई है कि अब दोनों को वह कभी भी एक नहीं होने देगी, बल्कि भाभी को जहां तक होगा, इस घर से बाहर करके ही वह दम लेगी। अब मां को तो उसी के वश में रहना पड़ेगा।

तभी मां ने गमगीन होकर बेटी से पूछा–''पद्मा, अब तू ही बता कि मैं क्या करूं ! मेरी बुद्धि तो कुछ भी काम नहीं कर रही है। पद्मा ने सोचा कि काम इस तरह किया जाय कि मां के कन्धों पर रखी हुई बन्दूक ही छूटे और गोली खाने वाला मर जाय। इस नजर से उसने मां के कान में तरकीब बताई और मन ही मन खुश होती हुई अपने कक्ष में चली गई।

भाग्य की कैसी विडम्बना थी कि मंजुला के पगलियों का कुंकुम अभी भी लाल था, तब उस ललाई पर राख की छाया के घिर आने की आशंका पैदा हो गई थी।

X X X

हमेशा की तरह आज जब मंजुला सुबह–सुबह अपने सासूजी के धोग लगाने आई तो उन्होंने आशीर्वाद देने की बजाय अपना मुंह फेर लिया। फिर नाक भौं टेढ़ी करके नेत्रों में लालिमा व क्रूरता के भाव लाती हुई कटु स्वर में वे बोली–

''अरी निर्ल्लज्जा, तू मुझे नमस्कार करने क्यों आई है ? क्या तू अब मुझे अपना यह मुंह दिखाने लायक भी रही है ? मैंने तुझे शीलवती मानकर अपना विश्वास दिया था, किन्तु अपना मुंह काला करके तूने मेरे साथ विश्वासघात किया। हे पापिनी, तूने मेरे प्रतिष्ठित कुल पर भयंकर कलंक लगा दिया है–फिर भी तू मेरे सामने आई– अत्यन्त लज्जा की बात है।''

इतना यह सब कुछ सुनकर एक बार तो मंजुला भौंचक्की सी रह गई। कहां तो माताजी की मिश्री से भी ज्यादा मीठी बोली वह रोज सुनती थी और कहां आज के ये दिल छेद देने वाले कर्कश वचन ! कुछ समझकर और कुछ

नहीं समझकर उसने अपने दिल व दिमाग पर नियंत्रण किया, क्योंकि उसका जीवन श्रेष्ठ संस्कारों से सजा हुआ था। कैसी भी उत्तेजना का समय हो, उसने हमेशा सौम्य व्यवहार करना ही सीखा था उसने मन में सोचाकि यद्यपि वह सच्ची है फिर भी इस समय अगर वह उत्तेजित हो गई तो सत्य भी असत्य के रूप में समझ लिया जायगा। अतएव उसने अधिक विनम्रता लाते हुए अपने सासूजी से निवेदन किया–

''माताजी, मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप मेरी पूरी बात सुनें बिना एकतरफा फैसला न करें। आप दोनों तरफ की बात तटस्थ भाव से श्रवण करें एवं हंस–चौंच की तरह अपना न्याय और निर्णय प्रदान करें। आप लज्जा और कलंक की बात कर रही है–यह बहुत जल्दबाजी है।'

श्रीकान्त की माताजी मंजुला के इस कथन से अधिक रुष्ट होती हुई बोली–

''जब मामला साफ है तो तटस्थ भाव से क्या निर्णय देना है ? तुम तीन–चार माह का अपना गर्भ तो स्वीकार करती हो न ?''

''हां, यह सही है।''

''तब यह साफ है कि श्रीकान्त को परदेश गये आठ माह हो गये हैं, फिर यह गर्भ कलंक नहीं तो और क्या है ?''

''माताजी, मैंने जब से होश संभाला है, तब से शील को सबसे ऊपर समझा है और मेरा विवाह हुआ तब से भी मैं अपने शील धर्म पर पूर्ण रूप से दृढ़ हूं। मेरी प्रतिज्ञा है कि प्राण भले चले जाय, मेरा शीलव्रत अखंडित है। इस कारण आप किसी भी तरह का गलत विचार अपने मन में नहीं लावें। वैसे आप धैर्य रखें तो समय आने पर सब स्पष्ट हो जायगा, फिर भी आप अभी भी मेरी पूरी बात तो सुनें।'

जब मंजुला ने शान्त भाव से इतना कहा तो उसके सासूजी कुछ नरम होने लगे। ऐसा लगा कि जैसे मंजुला के प्रति उनका वही विश्वास फिर से लौट आना चाहता है। दूर से इस तरह दृश्य को बदलते हुए देखकर पद्मा से रहा नहीं गया। उसने अपने षड़यंत्र को विफल न होने देने के लिये कमर कस ली।

आगे बढ़कर पद्मा ने अपनी भाभी से कटुता और कुटिलतापूर्वक कहना शुरू किया–

''भाभी, तुम्हारा जीवन धिक्कार है। इतना बड़ा कलंक लगाकर भी तुम बोलने की हिम्मत कर रही हो और मां को अपनी गलत सफाई से भरमा रही हो ! लेकिन तुम काले कर्म करने के लिये कहां कहां जाती हो– यह सब मैं जानती हूं और सारे तथ्यों की जांच कर चुकी हूं। जो बात मां ने तुमसे कही है, वह एकदम सच है। मैंने भी हमेशा तुम्हें मान दिया लेकिन तुम इतनी नीच निकल जाओगी यह मैंने भी नहीं सोचा था। खैर, यह तो बताओ कि तुम किसका गर्भ उठाकर लाई हो।''

मुंह–दर–मुंह इतनी कड़वी बात सुनकर भी मंजुला ने अपना धैर्य नहीं छोड़ा और सीधा सा जवाब दिया–

''यह गर्भ तुम्हारे भाई साहब का ही है, और किसी का नहीं और चाहो तो सारी बात तुम विस्तार से भी सुन लो।''

पद्मा को सुनना कहां था ? वह तो जोर–जोर से चिल्लाने लगी–

''बहुत सुन लिया भाभी, झूठ बोलने की भी कोई हद होती है। क्या मेरे भाई साहब तीन–चार महीने पहिले आकाश से टपक कर आये थे ?''

''हां, हकीकत में वे आकाश मार्ग में उड़कर आये थे।'

''अरे मानने के लिये तुम्हारी यह बात मान भी लें तो क्या वे परदेश जाने के चार, माह बाद ही इतने कपूत बन गये कि तुम्हारे साथ तो सारी रात गुजार सके, मगर अपनी माताजी के दर्शन करने का भी उनको समय नहीं मिल सका ? ये सब तुम्हारी छल–बल की बातें हैं।''

मां ने भी पद्मा के स्वर में स्वर मिलाकर कहा–''दुष्टा, काला मुंह करके तू मेरे सपूत की झूठी आड़ ले रही है और अपने पाप को इस बहाने छिपाना चाह रही है। मेरा फैसला है कि तू इसी वक्त हमारा घर छोड़कर चली जा और अपना मुंह काला कर।

मंजुला वार पर वार सहती जा रही थी। उसने सोचा भी नहीं था कि उसकी बात भी नहीं सुनी जायगी और यों बात का बतंगड़ बना दिया जायगा। वह हतप्रभ सी हो गई, किन्तु उस दशा में भी उसने अपना सन्तुलन नहीं खोया। उसके सामने परिस्थिति अत्यन्त कठिन सी हो गई थी। वास्तव में विपदा में ही सहन शक्ति की परीक्षा होती है। वह एक सफल विद्यार्थिनी थी अतः फिर भी बहुत शिष्टता के साथ वह बोली–

''आप लोग विश्वास करें कि जीवन में न कभी झूठ बोली हूं और चाहे मुझे कितना ही कष्ट भुगतना पड़े, भविष्य में भी कभी झूठ बोलूंगी नहीं। चार माह पहले एक विद्याधर की बात पर पतिदेव हंसयान लेकर आकाश मार्ग से देर रात सीधे ऊपर की छत पर उतरे थे और चूंकि हंसयान सूर्योदय के पहले पहले वापिस विद्याधर को लौटाना था और उठने में कुछ देरी हो गई सो जल्दी–जल्दी पुनः प्रस्थान कर गये। मैंने आपसे मिलकर जाने का बहुत अनुरोध किया, लेकिन समयाभाव के कारण वे वैसा नहीं कर सके।''

वाह, अपना पाप छिपाने के लिये झूठों–भरी कहानी भी गढ़ ली है भाभी तुमने ? इतनी ज्यादा चालाक तो मैं तुम्हें नहीं जानती थी–पद्मा ने एक और ताना कसा।

''अब तो आप विश्वास करेंगे माताजी, यह आपके सुपुत्र की अंगूठी है जो वे प्रमाण के लिये उस समय वापिस पधारे–'' यह कहकर मंजुला ने वहीं अंगूठी–जो श्रीकान्त परदेश के लिये विदा होते समय पहने हुए था और मां को उस रूप में दिखाकर भी गया था, अपने सासूजी के सामने रख दी।

इस स्पष्ट प्रमाण के सामने श्रीकान्त की मां यकायक सहम गई और उसे भीतर ही भीतर महसूस हुआ कि सारी धुंध हटकर मन का आसमान एकदम साफ हो गया है। मंजुला का शील सौ टंच का सोना साबित होकर निखर उठा है। मां चेहरे पर फिर से विश्वास की गहरी रेखाएं खिंच गईं।

सारा मामला यों पलटते देखकर पद्मा झुंझला उठी। वह दुर्गुणी थी– निर्बुद्धि थी और उस समय उसने अपनी बुद्धि का पूरा दुरुपयोग करने की ठान ली– चाहे सोलहों आना झूठ ही बोलना पड़े, मगर भाभी अकड़ को तो वह ठंडी करके ही रहेगी। दुष्ट बुद्धि वाले यह नहीं सोचते कि उनके किसी रुख से किन–किन पर कितनी–कितनी विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ेगा और भविष्य कितना दुःखद बन जायगा ? वे तो अपनी ही क्रूर भावना में अंधे बन जाते हैं। पद्मा को उस समय किसी बात का कोई भान नहीं रहा और वह तुरन्त बरस पड़ी–

'' रहने दो, भाभी, अपने बचाव की झूठी कोशिश रहने दो। तुम मां को धोखा दे सकती हो, मुझे नहीं। यह सही है कि यह अंगूठी भाई साहब ने मां से विदा लेते समय पहिन रखी थी, मगर बाहर निकलते हुए वे इस अंगूठी को मुझे दे गये थे। मैंने तभी सम्हाल कर इसे अपने कक्ष में रखदी थी.....तो तुमने अपने पाप को छिपाने के लिये इसकी चोरी भी करली। झूठ और उस पर चोरी–दुगुनी शर्म की बात है। असली क्रिया चरित्र मैं तुम्हारे में देख रही हूं.....।''

मंजुला के सिर पर मानो गाज गिरी। अगर पद्मा ने उसके इस साफ सबूत को ही मिट्टी में मिला दिया है तो अब वह क्या कह सकेगी और ये भला उसे क्योंकर मानेंगी ? वह सोचने लगी कि यह निकाचित कर्मों का उदय है और ऐसे कुसमय में पंच परमेष्ठि एवं धर्म की शरण में ही चले जाना चाहिये। व्यर्थ विवाद निरर्थक है। तब उसके मुंह से एक भी बोल नहीं निकला। उसके नेत्र जैसे मुंद गये और वह महामंत्र का जाप करने लगी।

इस तरह फिर पासा पलट गया। मंजुला का मौन जैसे उसी के खिलाफ तनकर खड़ा हो गया और मां के मनोभावों में जितनी तेजी से परिवर्तन मंजुला के पक्ष में हुआ था उतनी ही तेजी से पुनः परिवर्तन उसके विरोध में हो गया। श्रीकान्त की मां अब तो गरजकर लरजकर टूटते शब्दों में बोली–

''पापिनी, अब तो बिना कुछ कहे इस घर से इसी समय निकल जा। अब मैं तेरे मुंह से कुछ भी सुनना नहीं चाहती और तेरा मुंह एक पल के लिये भी इस घर में देखना नहीं चाहती।''

मंजुला के सामने अब कोई चारा नहीं था। अपने श्रेष्ठ जीवन के साथ कितनी पवित्र वह थी किन्तु दुर्बुद्धि के हाथों कितनी अपवित्र साबित की जा रही थी वह–पर प्रतिकार का कोई उपाय नहीं था। जिस घर में कुंकुम के पगलिये मंडाकर समारोह के साथ उसे प्रवेश कराया गया था, उस घर से इतनी बेइज्जती के साथ उसको निकलने के लिये कहा रहा है– यह कितना बड़ा दुर्योग है ? कुंकुम मंगल का प्रतीक होता है परन्तु उसके पगलियों को उससे भी बड़ा मंगल माना गया था, उसी मंगल को आज इतनी कुटिलता के साथ सम्पूर्ण अमंगल के रूप में खड़ा कर दिया गया और वह अब कुछ बोलने की मनःस्थिति में नहीं थी इसे ही कहते हैं पूर्वाजित कर्मों का उदय, जिन्हें भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

तब मंजुला ने हमेशा की तरह उतने ही विनय के साथ अपने सासूजी को दूर से ही नमस्कार किया, ननदबाई को भी हाथ जोड़े और धीरे–धीरे हवेली के मुख्य द्वार से उसी अवस्था में बाहर निकल गई–उसी मुख्य द्वार से जिसमें वह कुंकुम के पगलिये मांडती हुई घुसी थी। वे मंगलमय पगलिये बाहर क्या निकले मानो सारे मंगल को ही इस घर से बाहर ले चले।

मां, बहू, बेटी का त्रिकोण टूट गया बेटी के कारण। बचे हुए दोनों कोण क्या फिर से, त्रिकोण–चतुष्कोण या षट्कोण बना सकेंगे–इसे भविष्य के गर्भ में मानिये।

❑❑❑

# ५
# दो कोमल पांव और एक धीर गंभीर आत्मा

दो कोमल पांव बीहड़ जंगल के मार्ग पर चल रहे थे। वे पांव जो कभी कठोर धरातल पर नहीं चले थे, धूल में, कीचड़ में, कांटों पर, नुकीले पत्थरों पर चल रहे थे—लहूलुहान बिना रुके चल रहे थे। कुटिल अपमान ने उन्हें तोड़ना चाहा था उन्हें पंगु बना देना चाहा था परन्तु वे स्थिर गति से चल रहे थे अकेले और बिना लड़खडाये।

मक्खन से सुन्दर और सुकोमल पांव किसी भी बाधा को स्वीकार नहीं करते—खून बह रहा था तो बहे, चमड़ी छिल रही थी तो छिले मगर चाल डगमगाती नहीं और उसका कारण था कि उस नाजुक शरीर में एक धीर गंभीर आत्मा का निवास था। सारी प्रतिकूल परिस्थितियों का धीरता और गंभीरता से सामना करती हुई मंजुला जंगल की ओर चली जा रही थी। जब नगर ने उसे अपमान की कड़वी घूंट पिलाई थी तो उसका जंगल की ओर जाना ही उचित था।

मंजुला इतने शान्त भावों से चल रही थी जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं हो। क्लेश और बदले के कुविचारों का तो सवाल ही नहीं, सामान्य उत्तेजना को भी उसने अपने मन में टिकने नहीं दिया था। पहले के बंधे हुए कर्म जब उदय में आते हैं तो उन्हें शान्तिपूर्वक भोग लेने से ही उनसे छुटकारा पा सकते हैं। लेकिन अगर उनको भोगते अपनी मनोदशा को और बिगाड़ते हैं तो फिर नये पाप कर्मों का बंध हो जाता है जिन्हें भावी में फिर भोगना पड़ता है। ऐसे समय में धीर गंभीर आत्मा पहले के कर्मों को अमित शान्ति के साथ भोग कर समाप्त कर लेती है और अपने आत्म स्वरूप को उज्ज्वलता की ओर ले जाती है। मंजुला भी एक जागृत आत्मा थी इसलिये बिना किसी खेद और दुःख के वह आगे बढ़ी जा रही थी।

नारी को अबला कहा जाता है—यह एक अपेक्षा से गलत भी है क्योंकि आत्मशक्ति का सुदृढ़ एवं विकसित बनाने में नारी और नर में कोई भेद नहीं

है– वह भी उतनी ही आत्मबली हो सकती है। किन्तु शरीर की अपेक्षा से नारी अबला हो सकती है। इसी कारण नर की वासना का प्रतिरोध करने की दशा में नारी को बहुत सावधान रहना पड़ता है। मंजूला चूंकि बीहड़ वन की ओर चली जा रही थी वह इस खतरे के प्रति पूरी तरह सावधान थी। एक और सावधानी भी उसके मन में जगी हुई थी कि उसे अपने गर्भ का श्रेष्ठ संस्कारों के साथ निर्वाह करना है। वह सावधान थी, साहसी थी और भावनाओं की श्रेष्ठता से सजी हुई थी। सद्‌गुणों में रमे हुए उसके जीवन से ऐसी सुवास फैलती थी, जो सामने वाले को श्रद्धा के साथ नम्र बना देती थी। उस जीवन से ऐसा प्रभाव फूटता था जो क्रूर से क्रूर प्राणी को भी बरबस झुका देता था। मंजुला के नारी देह में एक परम प्रभावशाली आत्मा का ओज बिखरा हुआ था।

पति परदेश में थे जो जानते भी नहीं कि उसकी धर्मपत्नी पर क्या गुजर रही है ? परिवार वालों ने बिना कारण, बिना सोचे तिरस्कार के डंडे से उन मंगलकारी पगलियों को अपने घर से बाहर निकाल दिया था जिन पर कुछ ही अर्से पहले कुंकुम का लेप करके अपने घर आंगन में पदचिन्हों का अंकन किया था। अपने माता–पिता को उसने कोई सूचना देनी उचित नहीं समझी। अकेले ही आपदाओं से जूझने की क्षमता उसमें बहुत थी और इसीलिये मंजुला दिल और दिमाग से कहीं भी टूटी नहीं, बल्कि अपनी सहनशीलता भी इतनी बढ़ा ली कि उसने शरीर की परवाह भी छोड़ दी। उसके मन में किसी प्रकार का शोक नहीं, चिन्ता नहीं, अहंकार नहीं, ममकार नहीं। वह पूर्णतया स्वस्थ थी।

मंजुला सती का तेज लिये निर्भयता के साथ अपनी आत्म शक्ति का विकास करती हुई चल रही थी। वह भयंकर अटवी में पहुंच रही थी। वहां उसने जंगली जानवरों की आवाजें सुनी, भयावने दृश्य सामने आये, नदियां और घाटियां उसे पार करनी पड़ी, लेकिन वह निश्चल गति से चली जा रही थी। वह सोच रही थी कि निर्दयी आदमी हो या जंगली जानवर–उनमें भी मेरी ही जैसी आत्मा है, उनमें भी मैं मेरी आत्मा के सदृश सिद्धात्माओं का स्वरूप देखती हूं। अज्ञान में फंसी आत्माएं भले ही इसे न समझें और मेरे शरीर पर आक्रमण करना चाहें तो कर सकती है, किन्तु मैं उन्हें सचेत करूंगी और होगा वहां तक उनकी आन्तरिकता को जगाऊंगी। फिर भी वे नहीं मानी तो भला शरीर कहां मेरा है ? इसे छोड़ना ही पड़ा तो निर्भयता से छोडूंगी। ऐसी स्वस्थ विचारणा के साथ मंजुला अपने मार्ग पर धीरता गंभीरता से

अग्रसर होती जा रही थी।

तभी उसे सिंह की गर्जना सुनाई दी और ऐसा लगा कि वह उसके समीप आता जा रहा है। उसने मन–ही–मन महामंत्र का जाप करना शुरू कर दिया और इतनी तल्लीन हो गई कि सिंह को ही भूल गई। जिन्हें हम जंगली जानवर मानते हैं, वे भी इतने मर्यादित होते हैं कि अकारण वे किसी पर हमला नहीं करते। मंजुला ध्यान मग्न थी, सिंह पास से निकल गया किन्तु उसने उसका कोई नुकसान नहीं किया। जब मंजुला ने आंखें खोली तो सिंह जा चुका था और वह उसी निर्भयता से आगे बढ़ गई।

X X X

चलते–चलते अचानक मंजुला के पांव रुक गये। यद्यपि उसे अपने शरीर पर कोई ममत्व नहीं था किन्तु अपने शील और गर्भस्थ शिशु की रक्षा हेतु सावधानी जरूरी थी। उसने क्या देखा कि वृक्षों के घने झुरमुट में से एक विकराल आकृति बाहर निकल कर उसके सामने चली आ रही थी। उसका स्थूल शरीर डरावना था, लाल–लाल बड़ी–बड़ी आखें जैसे अंगारे बिखेर रही थी, लम्बे तीखे दांत जैसे काट खाने को उतारू थे तो उसके सारे शरीर की भयानकता सिहरा देने वाली थी। वह नर राक्षस जैसा लग रहा था।

मंजुला से सिर्फ दस कदम की दूरी पर आकर वह नर राक्षस खड़ा हो गया और हाथ फैला कर कहने लगा–''मैं बहुत भूखा हूं, तुझे खाऊंगा।'' किन्तु उसके मन में दो तरह के विचार आ रहे थे कि इस सुन्दर नरम–नरम शरीर से पहले अपनी वासना की पूर्ति करूं और फिर खाऊं अथवा पहले ही इसे खा जाऊं। वह मंजुला के सामने अपनी जीभ लपलपाने लगा।

इस दृश्य को देखकर मंजुला रुक गई और विचार करने लगी कि उसके सामने एक बहुत बड़ा खतरा आ गया है जिसे विवेकपूर्वक टाला जाना चाहिये। इस विचार से उसका मन मजबूत हो गया और वह उस नर राक्षस का साहस से मुकाबला करने के लिये तैयार हो गई। उसने मिठास के साथ पूछा–

''भाई, आप कौन हैं ?''

शब्दों का भी आश्चर्यजनक असर होता है। शब्द किसने और किस शक्ति के साथ बोले हैं, कैसे और किस रूप में बोले हैं–उसके अनुसार उसका असर पड़ता है जो कभी–कभी इतना गहरा होता है कि सामने वाले को

तात्कालिक रूप से ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि उसके जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन भी ले आता है। मंजुला के उन शब्दों की ध्वनि से कुछ ऐसा ही अनूठा असर फूटा था।

आत्मीय पवित्रता से उच्चारे गये उन शब्दों से वह नर राक्षस भी प्रभावित हो गया। उसने सोचा कि मैं तो इसके जीवन को नष्ट करने के लिये आगे बढ़ रहा हूं और यह कैसी नारी है जो मुझे 'भाई' के स्नेहपूर्ण सम्बोधन से बुला रही है ? उसको उस सम्बोधन से जैसे एक निराली सी शान्ति मिली। उसकी चेतना जागी। उसे सामने खड़ी नारी असामान्य सी दिखाई दी, जो उसे बुरा भला नहीं कह रही थी, रो और चिल्ला नहीं रही थी और न ही उसके चेहरे पर डर या घबराहट को कोई निशान था। उसने ऐसी निर्भीक नारी पहली बार देखी थी जो उसे 'भाई' कहकर पुकार रही थी। वह अपनी क्रूर वृत्तियों को भूल गया और एकटक मंजुला को देखता रह गया। वह उसे मानवी के रूप में देवी जैसी महसूस होने लगी।

इस नर राक्षश की क्रूरता से वह सारा जंगल आतंकित था। उसका आहार बनते बनते सारे पशु–पक्षी–यहां तक कि जंगली जानवर भी उसके निवास के चारों ओर के बीस–बीस कोस की सीमा में या तो खत्म हो गये थे या वहां से भाग गये थे। भूल से ही कोई प्राणी उस सीमा में आ जाता था तो वह उस नर राक्षस का भोजन बन जाता था। इस कारण उस जंगल में फल–फूलों का बाहुल्य हो गया था। आज वही नरराक्षश मंजुला की आत्मशक्ति के सामने जैसे झुक जाने के लिये तैयार हो रहा था वह बोला–

''तुम मेरा क्या परिचय पूछ रही हो ? मैं भी मनुष्य ही हूं लेकिन जंगल में रहने के कारण क्रूर और खूंखार हो गया हूं और इतना खूंखार कि जंगली जानवरों को भी पकड़ कर मैं चबा जाता हूं। इसी कारण इस बीस कोस के जंगल से सभी प्राणी भाग गये हैं। मेरी राक्षसी वृत्ति अब मेरे ही लिये कठिन समस्या हो गई है क्योंकि मांसाहार ही मेरा भोजन है और मुझे मांसाहार मिलना मुश्किल हो गया है। अतः अब किसी भी प्राणी को देखते ही मैं हमला कर देता हूं और चट कर जाता हूं। न जाने क्यों, मैं तुम्हें देखकर हतप्रभ सा हो गया हूं ?''

मंजुला को यह प्रभाव बड़ा प्रसन्नता दायक महसूस हुआ। उसका साहस बढ़ गया, विवेक मृदुल बन गया और हार्दिकता बरस पड़ी–

''यह ऐसा इसलिये हो रहा है भाई–कि तुम्हारी आत्मा में जागृति की

किरण फूट पड़ी है जो तुम्हें जगा रही है। वह किरण कह रही है कि तुम सिर्फ मांसाहार पर जो ही रहे हो, उस आदत को बदल दो। देखो–पेट की भूख मिटाने के लिये चारों ओर कितने अच्छे–अच्छे फल लग रहे हैं ? किसी प्राणी को कष्ट पहुंचाने से खुद को कष्ट मिलता है। अपने कष्ट मिटाने हैं तो दूसरों के कष्ट मिटाओ मेरे भाई, दूसरे प्राणियों को मारना एक दम छोड़ दो।''

हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से होता है और बहुत ही सफलतापूर्वक होता है। बस शर्त यही है कि अहिंसा को प्रयोग में लाने वाले का स्वयं का जीवन अहिंसा से ओतप्रोत होना चाहिये। अहिंसक जीवन से शान्ति की वे किरणें फूटती हैं जो हिंसा की आग को शीतल बना देती है। मंजुला के शान्त जीवन ने नरराक्षस के मन में शान्ति का संचार कर दिया था। वह उसके जीवन को बदल कर सुखमय बना देने के लिये कटिबद्ध हो गई। वह कहने लगी–

''मेरे भाई, मैंने तुम्हें अपना भाई बनाया है तो मैं तुम्हारी बहिन हो गई हूं और बहिन का फर्ज हो जाता है कि वह अपने भाई को भूखा न रखे। एकदम तुम्हारी मांसाहार छोड़ देने की आदत नहीं बन पायगी इसलिये आज तो तुम मुझे खाकर अपनी भूख मिटा ही लो–मुझे अपने इस शरीर पर कोई मोह नहीं है। मोह तो अपने गर्भस्थ शिशु का है बस''

यह सुनना था कि नरराक्षस ने अपना सिर नीचा कर लिया और धीरे–धीरे कहा–

''देवी और अब मैं तुम्हें अपनी बहिन ही मानूंगा तथा बहिन ही कहूंगा– तुम ठीक कह रही हो, मुझे अपने भीतर कुछ ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा हूं– कुछ ऐसा उल्लास महसूस हो रहा है कि मैं तुम्हारा शिष्य बन जाऊं और अपना उद्धार करलूं। मैं तुम्हें खा डालूं बहिन क्या यह अब मेरे लिये शक्य है ? मैं तो तुम्हारी संरक्षकता में अब अपना जीवन ही बदल देना चाहता हूं। तुम इसी जंगल में निर्भय होकर रहो और अपने गर्भस्थ शिशु का पालन करो। आज से मैं मांसाहार को भी छोड़ देता हूं।'' उस नरराक्षस ने मंजुला के धर्म प्रभाव के सम्पर्क में आकर राक्षसत्व छोड़ने, नरत्व ग्रहण करने और देवत्व की तरफ आगे बढ़ने की राह पर अपने कदम उठाने का इस तरह निर्णय कर लिया।

''मुझे बहुत खुशी हुई है मेरे भाई कि तुमने मांसाहार छोड़ देने का निश्चय कर लिया है। अन्न–फल को ही अपनाओ–यही श्रेयस्कर है। इससे

तुम्हारा क्रूर कर्म समाप्त हो जायगा और अनेकानेक प्राणियों की घात टल जायगी। आखिर तुम भी मनुष्य ही हो, तुम्हारे जीवन में भी मनुष्यता का विकास होगा ही''—मंजुला ने धर्मानुराग भाव विभोर होकर उसको समझाया, क्योंकि उसके समझाने से उस नरराक्षस का जीवन परिवर्तित जो होने लगा था।

नरराक्षस ने सरलता के साथ पूछा—''बहिन, अब तुम्हीं मुझे नया मार्ग बताओ और मेरे नये जीवन को ढालो।''

''पहली बात यह कि 'बीती ताहि विसार दे, अरु आगे की सुधि लेहि'—भविष्य को बनाने के प्रयत्न में लग जाओ और वह बनेगा अहिंसा को अपनाने से, सद्‌गुणों को धारण करने से तथा प्राणी मात्र को शान्ति पहुंचाने से—''

''और फिर बहिन ?''

''फिर ऊपर से ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ियां है सो जीवन का विकास करते चलो और एक से दूसरी सीढ़ी के ऊपर चढ़ते चलो। इस उत्थान यात्रा का आनन्द ही निराला होता है।''

''तुमने मेरी चेतना को जगाकर मुझे उत्थान मार्ग की ओर खींच लिया है बहिन— यह भारी उपकार है। मैं शरीर से हट्टाकट्टा दीखता हूं परन्तु मेरी आत्मा जीर्ण—शीर्ण होकर अंधेरे में भटक रही थी, उसे तुमने उजाले की राह दिखलादी है। बहिन, मुझे तुमसे यह जानने का मन हुआ है कि ऐसा ज्ञान तुमने कहां से पाया है ?''

''भाई, मेरा सुसंस्कारी परिवार में जन्म हुआ और बचपन से मुझे धर्म की शिक्षा दी गई जिसमें मेरे जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैला और आन्तरिकता को समझने की जागृति आई, आगे जाकर सद्‌गुरु का सत्संग मिला जिसके कारण जीवन में सद्‌गुणों का विकास हुआ और समस्त प्राणियों के प्रति समभाव उत्पन्न हुआ।''

''तो बहिन, मैं भी तुम्हें अपनी गुराणी बना रहा हूं— मेरे जीवन को भी तुम चमकादो।'' यह कहकर वह नरराक्षस मंजुला के चरणों में झुक गया। उसने बहुत मनुहार के साथ कहा— ''बहिन, बीस कोस के इस जंगल में मेरे आतंक से न तो कोई जंगली जानवर है और न कोई शिकारी ही इधर आने की हिम्मत करता है। यहां फल—फूल जल की भी कमी नहीं है। तुम यहां

निश्चित होकर निवास करो, ताकि मेरा भी जीवन सार्थक हो जायगा। बोलो बहिन, रहोगी न ?''

मंजुला को तो आश्रय की आवश्यकता थी ही, फिर एक क्रूरकर्मी के जीवन परिवर्तन के साथ सुरक्षित आवास की सुविधा मिल जाय–उससे अधिक उस समय उसको कुछ नहीं चाहिये था, क्योंकि उसके चित्त में गर्भस्थ शिशु के लालन–पालन के साथ उसको सुरक्षित रूप से जन्म देने की समस्या की चिन्ता भी थी। वह उतने ही स्नेह से बोली–

''जब भाई रहने को कहेगा तो बहिन भला क्यों न रहेगी ? जानते हो, न, भाई–बहिन का स्नेह कितना पवित्र होता है ?''

''मैं तो अब तुम्हारा शिष्य भी हो गया हूं अतः स्नेह के साथ श्रद्धा भी मिल गई है। इतना जल्दी मेरे जीवन में जो परिवर्तन आने लगा है–इसका श्रेय तुम्हें ही है।''

इतना कह कर वह आगे–आगे हो गया और मंजुला को पीछे–पीछे चली आने को कहा। वह उसे एक निरभ्र स्थान तक ले गया और बोला–''आपके मंगलमय पगलिये इस जंगल में क्या पड़े हैं कि चारों ओर मंगल ही मंगल हो गया है जिसकी शुरुआत मेरे से हुई है। आप वहां आराम करें। मैं आपकी सार सम्हाल करता रहूंगा और आपके चरणों की सेवा से अपने को धन्य समझूंगा।''

X X X

एक धीर गंभीर आत्मा के आन्तरिक बल ने जंगल में भी मंगल कर दिया था। फल–फूल से अपना निर्वाह चलाते हुए वह धर्माराधन में दत्तचित्त हो गई थी– अपने आनन्द के साथ उसे होने वाले बालक के जीवन को भी आनन्दमय बनाना था। और इस आनन्द में उसका भाई नरराक्षस (जो अब राक्षस नहीं रहा था) भी भागीदार हो रहा था।

मंजुला का समय आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था।

हमेशा की तरह उसका वह धर्म भाई एक दिन उसकी सेवा में बैठा हुआ था तो अनायास ही पूछ बैठा–

''बहिन, आपके पति कौन हैं ? कहां है ? आप कहां जाना चाहती हैं ? इस सम्बन्ध में मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?''

''भाई, मेरे पति श्रीकान्त हैं, जो इस समय परदेश गये हुए हैं। मैं उन्हीं के चरणों में जाना चाहती हूं। किन्तु तुम जैसे भाई मुझे मिल गये हैं तो सोचती हूं कि श्रीकान्त की सुयोग्य सन्तान को यहां के प्राकृतिक रम्य वातावरण में ही जन्म दूं–'' इसके साथ ही मंजुला ने संक्षेप में अपनी जीवन गाथा अपने उस भाई को सुनादी।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी बाहरी आकृति से नहीं पड़ता बल्कि उसके निज पुरुषार्थ तथा चारित्रिक गुणों के कारण पड़ता है। आपने देखा होगा कि गुलाब का फूल बगिया में खिलता है। अपनी सुगंध को बताने के लिये किसी को कुछ कहना नहीं पड़ता, अपितु सुगंध के चहेते स्वयं ही उसके पास पहुंचकर उसकी सुगंध को ग्रहण करते हैं एवं उसकी सराहना करते हैं। इसी तरह सच्चरित्र व्यक्ति की ख्याति स्वयंमेव दूर–दूर तक पहुंच जाती है, लेकिन जब वे प्रत्यक्षतः सामने आ जाये तो फिर उनके प्रभाव का कहना ही क्या ? और ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में कोई रह जाय तो वह कैसा भी क्रूरकर्मी क्यों न हो– अपने जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर लेता है। ऐसा ही सुखमय परिवर्तन हो रहा था उस नर राक्षस का जो राक्षस तो रहा ही नहीं, मगर नर से भी नारायण बनने की दिशा में कदम उठा रहा था। ऐसा था मंजुला के चारित्र्यशील सम्पन्न जीवन की सुगंध का सत्प्रभाव।

मंजुला की विपद्–कथा उस भाई ने ध्यान से सुनी तो मंजुला के प्रति उसका सम्मान कई गुना बढ़ गया। कितनी सहनशीला सती नारी है उसकी बहिन और गुराणी ?

उसने बहिन की सुख सुविधा की पूछताछ की और अपने स्थान पर चला गया। मंजुला सोचने लगी कि समत्व भावना में कितना आनन्द रहता है इस जंगल में भी उसका निवास मंगलमय बन गया है। वह धर्माराधन में प्रवृत्त हो गई कि गर्भस्थ शिशु पर सुसंस्कारों की छाप पड़े।

❑❑❑

# ६
# बालक जन्मा वन में : माता राज भवन में

समय किसी की भी राह नहीं देखता– न सुखी की, न दुःखी की, न सम्पन्न की, न विपन्न की–वह तो निरन्तर बीतता ही जाता है। मंजुला जब इस जंगल में आई थी, उसे चार माह का गर्भ था। लेकिन समय का प्रवाह बहता गया और पांच माह व्यतीत हो गये। गर्भ का समय पूरा हो चुका था और अब कभी भी उस भाग्यशाली बालक का जन्म हो सकता था, हंसने पर जिसके मुंह से एक बहुमूल्य लाल गिरा करेगा। यह उसकी पहिचान श्रीकान्त ने बताई थी।

मंजुला सोच रही–लाल तो एक सामान्य रत्न होता है, किन्तु अपनी जीवन साधना से उपजे अनेकानेक सद्‌गुणों के रत्नों का उपहार जो वह अपने आत्मज को देती आ रही है, वह उपहार ही उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रकाशमान बनायेगा। विचारों का प्रवाह अनेक विध चलाता रहता है। वह यह भी सोचने लगी कि यहां किसके सहारे वह बालक को जन्म देगी, कैसे उसका लालन–पालन होगा और कहां से उसकी सुख–सुविधा की सामग्री जुटाई जा सकेगी ?

मन की अनेक तरंगें उछल रही है। उसके मन में आया–पति ने तो कहा था कि भाग्यशाली सुपुत्र का जन्म होगा लेकिन भाग्य का यह कैसा दृश्य है कि अभाव मुंह बांये खड़े हैं और इसके पिता तक भी पास में नहीं है। फिर दूसरी तरंग आई–श्रीकृष्ण का जन्म भी तो विकट परिस्थितियों में ही हुआ था, पुण्यशाली जीव तो ऐसी परिस्थितियों में जन्म लेकर भी जीवन में सौभाग्य की सुगन्ध फैला देते हैं। तब नई तरंग ने उसके मन में उत्साह जगाया कि मेरे पास तो अमित आत्मशक्ति है–भय और आशंकाएं मेरे मन को क्यों घेर रही हैं ? मैं किसके सहारे की आशा करूं ? अपने ही सहारे को मजबूती से क्यों न पकडूं ? ये विपदाएं तो जीवन में आती–जाती रहती हैं और सच तो यह है कि विपदाएं ही जीवन को निखार देकर उज्ज्वल स्वरूप

प्रदान करती हैं। सजग होना चाहिये हमारा पुरुषार्थ जो कभी थके नहीं, कभी हारे नहीं। यों चल रही थी मंजुला की विचारधारा, जो प्रतीक्षा कर रही थी एक नये जीवन को जन्म देने की।

मंजुला पुरुषार्थ की बात पर विचार करती है कि पुरुषार्थ हमेशा सफल होता है। पुरुषार्थ करते हुए भी अगर सफलता नहीं मिलती है तो सोचिये कि ऐसा क्यों हो रहा है ? इसका अर्थ यही माना जायेगा कि पुरुषार्थ की विधि में कहीं न कहीं कमी रह गई है। जैसे एक दस वर्ष का बच्चा एक मन वजन उठाने की कोशिश करता है लेकिन वह नहीं उठा पाता है तो क्या यह सोचा जायेगा कि भाग्य की वजह से वह ऐसा नहीं कर पा रहा है ? नहीं, यही सोचा जायेगा कि अभी तक एक मन वजन उठाने के लिये उसे और अधिक शारीरिक शक्ति प्राप्त करनी होगी। इसी तरह प्रत्येक प्रयत्न में पुरुषार्थ का महत्त्व सर्वाधिक होता है। यह दूसरी बात है कि पुरुषार्थ की मात्रा और विधि की कमी हो और सफलता न मिले। तो उसके लिये पुरुषार्थ को ही परिपक्व बनाने की जरूरत रहती है। सिर्फ भाग्य के भरोसे बैठने को उचित नहीं कह सकते हैं। समझिये कि खाना आपके सामने पड़ा है और भाग्य की ही बात सोचते हुए हाथ से कोई पुरुषार्थ न करें तो तो क्या खाना खुद ही आपके मुंह में चला जायगा ? इसलिये पुरुषार्थ प्रमुख है–ऐसा मंजुला की पुरुषार्थी आत्मा ने निर्णय लिया। कयोंकि आने वाली समस्या का समाधान भी उसे अपने पुरुषार्थ के बल पर ही निकालना था।

अरण्य में आने वाली कठिनाइयों से कई योगी भी घबरा जाते हैं और अपनी योग साधना छोड़ बैठते हैं, लेकिन वह तरुणी, पतिपरायणा और सत्य की उपासिका मंजुला अरण्य के बीच में भी शान्त एवं पुरुषार्थी विचारों को प्रमुख बनाकर चल रही थी।

X X X

सहसा मंजुला के उदर में पीड़ा होने लगी। यह व्याधिजन्य पीड़ा नहीं थी, बल्कि इस बात की संकेत रूप पीड़ा थी कि अब गर्भस्थ शिशु इस संसार में आने वाला है। मंजुला ने खुद ही अपनी झौंपड़ी में घास–फूस बिछाई और उस पर लेट गई। पहली बार अनुभव की जाने वाली वह पीड़ा बहुत कठिन थी– इस कारण मंजुला को थोड़ी–थोड़ी बेहोशी सी आने लगी। फिर जब उसे होश आया तो देखा कि उसने एक सुन्दर, सुकुमार सुपुत्र को जन्म दिया है।

एक ओर खुशी हुई तो दूसरी ओर उसे विचार आया कि इसका जन्म श्रीपुर में हुआ होता तो क्या ऐसी कठिनाइयां सामने खड़ी होती ? सभी सुविधाओं के साथ मंगलमय वातावरण गुंजित हो उठता और चारों ओर बधाइयों का तांता लग जाता। मंगल गीत गाये जाते और मिठाइयां बांटी जाती ? लेकिन आज क्या स्थिति सामने है ?

मंजुला फिर सोचती है कि सम्पन्नता और विपन्नता में ही तो मनोदशा कसौटी पर चढ़ती है कि उसमें दृढ़ता कितनी है ? सम्पन्नता में सुख की सम्पूर्ण सामग्री हाथ बांधे सामने खड़ी रहती है तो विपन्नता में वह आंखों से ओझल हो जाती है तो क्या इसके सद्भाव और अभाव के अनुसार मन फूल उठे या कि घबरा जाय ? सम्पत्ति और विपत्ति में जो समान रहता है, वही मन महान् कहलाता है। और मंजुला ने सोचा कि यह तो मन की विचारणा का प्रश्न है। वह सोचती है कि श्रीपुर के गाजे–बाजे तो कृत्रिम होते। यहां जंगल में सुनाई देने वाला पक्षियों का कलरव और झरनों के जल का कलकल कैसा संगीतमय है ? अपने पंखों को ऊपर उठाये ये मोर जो नृत्य कर रहे हैं। क्या अतुलनीय नहीं है ? वृक्षों की टहनियां भी तो वायु वेग में झूम–झूम कर नाच रही हैं। क्या यह सब प्रकृति द्वारा रचा गया मेरे लाल का ही जन्मोत्सव नहीं है ? वह उषा देवी अपने रक्ताभ आंचल को फैलाकर मेरे लाल को अपनी स्नेहमयी गोद में लेने को कितनी आतुर हो रही है। श्रीपुर के दियों की रोशनी की तुलना में उषा की लालिमा कितना सुन्दर तरल प्रकाश फैला रही है। ऐसा सोचते–सोचते मंजुला का चेहरा खिल उठा– उसके रोम–रोम में प्रसन्नता का उल्लास समा गया।

तब उसने अपने लाल के चेहरे को भाव–विभोर होकर देखा उसके मुख मण्डल से कैसी अद्भुत तेजस्विता फूट कर फैल रही थी ? और क्यों न फूटकर फैलती ? आखिर वह एक तेजस्वी माता का पुत्र ही तो था। वह अपनी सारी पीड़ा को भूल गई। साहस समेट कर धीरे–धीरे उठी–बच्चे की यथोचित सफाई की। अब उसे प्रसव की अपनी गन्दगी की सफाई करनी थी जो सरोवर पर ही की जा सकती थी। सरोवर तनिक सी दूरी पर था इसलिये वह वहां जावे उससे पहले बालक की सुव्यवस्था करना जरूरी था। अगर बालक को जमीन पर ही छोड़कर चली जावे तो किसी जीव जन्तु द्वारा उसे हानि पहुंचाने की आशंका थी। अतः उसने एक झोली बनाई और उसे वृक्ष की कुछ ऊंची टहनी पर बांध दी। तब बच्चे को उसने उस झोली में सुला दिया। उसने सोचा कि वह सफाई का कार्य करके जितनी जल्दी हो वापिस

आकर बच्चे को सम्हाल लगी।

मंजुला ने तब नवजात को वृक्ष पर लटकाकर झोली में सुलाया और उसे थपकी देते हुए कहा–'हे मेरे प्राणप्यारे लाल, तुम इसमें आनन्द से सोये रहना। मैं पास वाले सरोवर पर जाकर सफाई करके तुरन्त लौट रही हूं।' फिर झोली को झूला देकर वह सरोवर की तरफ बढ़ चली।

X X X

सरोवर पर पहुंच कर मंजुला ने अपने शरीर तथा वस्त्रों की जल्दी – जल्दी सफाई की ताकि जल्दी से पहुंच कर अपने लाल को मां का नेह भरा दूध पिला सके। वह निवृत्त होकर लौटने को उद्यत हुई ही थी कि तभी एक दुर्घटना घटित हो गई।

मंजुला का सारा ध्यान अपने नवजात की तरफ केन्द्रित हो रहा था कितनी जल्दी जाकर वह उसे दूध पिलावे, रमावे और झोली में झुलावे। उसने दो तीन डग ही आगे भरे थे कि सामने का दृश्य देखकर वह एकदम हक्की बक्की रह गई। न तो कुछ कर सकने का ही समय था और न संभल सकने का ही। बचकर निकल जाने का कोई उपाय ही नहीं सूझा। सामने आया संकट एक पागल हाथी के रूप में था–वृक्षों को अपनी सूंड से उखाड़ता हुआ वह एकदम सामने ही आ गया था। महामंत्र का उच्चार करते हुए मंजुला बेहोश हुई तो उसे भान ही नहीं रहा कि बाद में उस का क्या हुआ ?

हुआ यह कि उस पागल हाथी ने आनन–फानन में मंजुला को अपनी सूंड में जकड़ा और पूरे वेग से आकाश में फेंक दिया। प्रसव वेदना से दुर्बल बनी मंजुला उस उछाल में ही अपने होश खो बैठी। परन्तु उस उछाल से वह धड़ाम से सरोवर में आ गिरी। सरोवर में गिरने से उसे विशेष चोट तो नहीं लगी, लेकिन उसकी बेहोशी भी नहीं टूटी।

यह पागल हाथी इस जंगल से कुछ दूरी पर स्थित चन्द्रनगर के राजा जयशिखर का था। राजा जयशिखर के पास हाथियों का बड़ा समूह था। उस समूह में से एक हाथी को उन्माद चढ़ गया जिसे काफी कोशिश के बाद भी नियन्त्रण में नहीं रखा जा सका और वह और वह राजभवन से भाग निकला। यह जानकर राजा कुछ घबरा सा गया क्योंकि वह उसका प्रिय हाथी था और इस बात की भी उसको चिन्ता हुई कि उन्माद की दशा में वह जन–हानि न कर बैठे। इसलिये कुछ सैनिकों को साथ लेकर राजा भी घोड़े पर सवार होकर पीछे–पीछे भागा।

पागल हाथी के पांव देखते–देखते जब तक वे लोग सरोवर तक पहुंचे, हाथी तो वृक्षों को उखाड़ता हुआ कुछ आगे निकल गया था, परन्तु सरोवर के जल में एक अति सुन्दर नारी का तैरता हुआ तन देखकर राजा जयशिखर स्तम्भित रह गया। एक तो इस बियावान जंगल में यह अकेली यहां तक कैसे पहुंची और दूसरे, इस समय यह सुन्दरी मर गई है या जीवित है ? दूर से धमाका सुनकर राजा ने सूंड का अनुमान तो लगा लिया था कि उसके पागल हाथी ने ही इसको सूंड से उछाल कर सरोवर में पटक दी होगी।

राजा जयशिखर ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे उस सुन्दर स्त्री को पूरी सावधानी से तुरन्त बाहर लाकर उसके सामने प्रस्तुत करें। जब मंजुला राजा के सामने लाई गई, तो वह बेहोश थी। राजा करीब से उसकी अनुपम सुन्दरता को निरख कर ठगा सा रह गया और अपलक उसे निरखता ही रहा। यह भी भूल गया कि उसे इस तरह निहारते हुए देखकर उसके सैनिक ही क्या कहेंगे ? सैनिक तो जानते थे इसलिये समझ गये कि सुन्दरी तो बेहोश है, किन्तु राजा भी अपना होश खो चुका है या यों मानिये कि एक पागल हाथी की सूंड से तो यह सुन्दरी बच गई है किन्तु अब इस दूसरे पागल हाथी की पकड़ से क्या यह सुन्दरी बच सकेगी ?

सैनिकों ने मंजुला के शरीर की परीक्षा करके कहा–''राजन्, यह महिला मरी नहीं, जीवित है किन्तु मूर्छित है। पेट में भरा पानी तो हमने निकाल दिया है किन्तु ऐसा लगता है कि मूर्छा कुछ समय बाद ही हटेगी।''यह पता लगाने के लिये कि इसके साथ इसके कोई परिवार जन भी हैं या नहीं, अथवा यह अकेली ही है–राजा ने सैनिकों को आसपास में खोज करने के लिये भेजा और स्वयं मोह ग्रस्त होकर मंजुला की निश्चल आकृति को एकटक देखने लगा। जब सैनिकों ने वापिस आकर सूचना दी कि आसपास दूर तक के क्षेत्रों में भी उन्हें कोई भी नहीं दिखाई दिया है तो राजा ने सन्तोष की सांस ली। उसका दिल बाग–बाग हो उठा कि यह सुन्दर रत्न उसी के हाथ लग गया है–ऐसी अद्‌भुत सुन्दरता उसने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी। मंजुला को देखकर वह तो अपना आपा ही खो बैठा था।

रूप मूर्छित राजा ने मूर्छित रूपवती के लिये अपने सैनिकों को आदेश दिया कि वे उसे बहुत सावधानी से राजभवन में पहुंचावें और राजवैद्य को निर्देश दें कि इसकी तत्काल चिकित्सा की जाय।

कैसा रहा विधि का विधान कि बालक जन्मा वन में जो अकेला रह गया और माता पहुंच गई राजभवन में। ❑❑❑

# ७

# सोना ही आग में डाला जाता है

मूर्छा हटने पर मंजुला ने ज्यों ही नेत्र खोलकर चारों ओर देखा, वह एक विचित्र प्रकार के आश्चर्य में डूब गई। याद आया उसे अपने लाल का भोला सा मुखड़ा, उसे झोली में सुलाकर सफाई के लिये सरोवर पर जाना और लौटते हुए एक पागल हाथी का सामने आना व सूंड में पकड़कर उसे ऊपर उछालना। लेकिन उसके बाद क्या हुआ उसे कुछ भी याद नहीं आया। परन्तु विचित्र आश्चर्य तो उसे यह था कि वह ऐसे भव्य भवन में कैसे पहुंच गई है ?

उसने अपनी नजर चारों ओर घुमाई। राजसी वैभव की साज सज्जा थी। अजीब ढंग से वेश धारण किये दासियां सेवा में खड़ी थी। वह स्वयं भी एक सोने से मढ़े पलंग के नरम–नरम गदों पर सोई हुई थी। यह सब देखकर वह शंका करने लगी कि अवश्य ही किसी देव अथवा राजा ने उसका अपहरण कर लिया है। ऐसा विचार आते ही चिन्ता की रेखाएं उसके चेहरे पर घिर आई कि न जाने वह किन परिस्थितियों की पकड़ में जकड़ ली गई है तो न जाने उसके नवजात का क्या हाल–बेहाल हो रहा होगा ?

मंजुला को सचेतन होते हुए देखकर सामने खड़ी दासियों में हलचल मच गई। राजवैद्य भी प्रसन्न होते हुए उठ खड़े हुए और उसे शक्तिदायक नई औषधि पिलाने लगे। दासियों को राजा जयशिखर के निर्देश मिले हुए थे अतः नवागता को समझाने तथा उसके मन को राजा के मन के अनुकूल बनाने की उनमें होड़ सी मच गई। एक अधिक बुद्धिशालिनी दासी ने पहल की। मंजुला के अनुपम लावण्य से अत्यधिक प्रभावित होते हुए उसने अतीव शिष्टता से निवेदन किया–

''ओ हो देवीजी, आप जैसी रूपवती इस संसार में बिरली ही हो सकती है और यह किसी बिरले पुरुष का ही भाग्य होता है कि उसे आप जैसी नारी प्राप्त हो। हमारे राजा जयशिखर भी जिनके राजभवन में अभी आप बिराज रही हैं– बहुत ही प्रभावशाली एवं प्रतिष्ठित हैं फिर भी हम तो

यही मानती हैं कि आपको पाकर वे निहाल हो गये हैं.....''

''कौन राजा जयशिखर ? उन्होंने मुझे कहां से पा लिया है ?–हठात् मंजुला चीखकर बोल उठी।

''सरोवर में से निकाल कर जब राजा जयशिखर आपको अपने राजभवन में लाये तब आप बेहोश थीं तब से ये राजवैद्यजी आपकी चिकित्सा करते रहे हैं और अभी ही आप सचेतन हुई हैं.....''

मंजुला को वर्तमान परिस्थितियों का कुछ–कुछ आभास हुआ। वह यह समझ गई कि इस बार वह फिर एक नये संकट में फंस गई है जिससे छुटकारा पाना शायद आसान नहीं दिखाई देता है। इसलिये पूरे विवेक और धैर्य से ही कार्य करना चाहिये, लेकिन पहले वह सभी परिस्थितियों को भली भांति समझ तो ले। उधर दासियां उसकी आकृति और उस पर खिंची चिन्ता की गहरी होती देखाओं को देखकर यह समझ गई कि यह महिला रूप से ही असामान्य नहीं है बल्कि अपनी वैचारिकता एवं भावुकता की दृष्टि से भी असामान्य लगती है। उन्हें यह भी प्रतीत हुआ कि यह असामान्य महिला यहां पहुंचकर प्रसन्न नहीं है बल्कि चिन्ताग्रस्त हो गई है, अतः हमारे लिये इसको राजा के मन के अनुकूल बनाना अथवा इसको फुसलाना बहलाना एक कठिन कार्य है। फिर भी उन्हें पूरे प्रयास तो करने ही थे। अतः वही दासी खुशामद करती हुई मंजुला को तरह–तरह के प्रलोभन दिखाने लगी। दासियां खुद प्रलोभन में पड़ी हुई थी कि यदि वे इस सुन्दरी को राजा के मोह पाश में बांध सकें तो उन्हें विविध प्रकार के बहुमूल्य पुरस्कार मिलने वाले थे। इस कारण दासी ने फिर मंजुला से अनुनय की–

''हमारे राजा बहुत ऐश्वर्यशाली हैं, देवीजी, आपके अभावों को पल भर में दूर कर देंगे। यही नहीं, आपके चारों ओर स्वर्ग जैसे सुखों की वे सृष्टि कर देंगे और स्वयं भी आपकी चरण सेवा में लग जायेंगे। बस आप अपने मंगल सुख से 'हां' फरमा दीजिये।''

अपने लाल के स्नेह–स्मरण और जयशिखर की वासना की आने वाली आंधी के बीच मंजुला फिर से मूर्छित हो गई और फिर से उसकी चिकित्सा शुरू हो गई।

X X X

''देवी, तुम तो नारियों का भूषण हो। तुम्हारे जैसी सुकोमल एवं सुन्दर स्त्री जंगल में रहकर अपने जीवन को यों ही नष्ट कर दे–यह शोभा नहीं देता है। अब तो तुम्हारी मूर्छा दूर हो गई है तथा शरीर में शक्ति भी आ गई होगी सो अपनी दृष्टि पसारो और घूमो तो तुम्हें जरूर लगेगा कि तुम्हारे चारों ओर वैभव बिखरा पड़ा है। तुम्हें तो अपना सौभाग्य मानना चाहिये कि तुम अरण्य से निकल कर इस राजभवन में ले आई गई हो।

.....और मैं कहना चाहता हूं कि यह चारों ओर बिखरा वैभव समझो कि तुम्हारा ही है। अपने दरिद्री भूतकाल को भूल जाओ और इस अपार वैभव का उपभोग करो.....'' कहकर राजा जयशिखर इस तरह मंजुला के चेहरे की ओर देखने लगा कि उसके कथन की क्या प्रतिक्रिया प्रकट होती है।

ज्योंही मंजुला दूसरी बार की मूर्छा से सचेतन हुई तो राजा के निर्देश के अनुसार दासियां दौड़ी–दौड़ी गई और राजा को मंजुला के पास बुला लाई। कारण, राजा ने मंजुला को उसके अनुकूल बनाने के काम को दासियों के सामर्थ्य से बाहर माना और दूसरे राजा का मन हर समय मंजुला को अपने ही दृष्टिपथ में बनाये रखने को तड़पता था।

राजा ने आते ही मंजुला को उसकी तबियत के बारे में पूछा तो उसने शिष्टाचारवश उत्तर दे दिया जिससे उत्साहित होकर उसने मंजुला को राज्य वैभव का लोभ बताया कि वह उसकी बात मानले।

मंजुला विचार में पड़ गई कि वासना में जो अंधा बना हुआ है वैसे इस शक्ति सम्पन्न राजा से अपना पिंड कैसे छुड़ा पायेगी ? उसने क्रूरकर्मी को तो धर्मी बना लिया था, क्योंकि अबोध को समझाना तो सरल होता है लेकिन समझे हुए को समझाना बड़ा ही कठिन। वह गइराई से सोचने लगी कि वर्तमान अवस्था में उसे किस रीति से व्यवहार करना चाहिये ?

जयशिखर ने जब देखा कि अपार वैभव को भोगने का लोभ दिखाने के बावजूद भी मंजुला ने न तो कोई उत्तर दिया है और न ही अपनी आकृति पर कोई अनुकूल रुख दिखाया है तो उसने कुछ प्रतिकूल भय दिखाने का निश्चय किया। किन्तु फिर उसने अपना इरादा बदला और साम नीति से ही काम लेने का प्रयास जारी रखा। राजा ने फिर कहना शुरू किया–

''हे सौभाग्यशालिनी, सच मानो तो मैंने ही तुम्हें नया जन्म दिया है। जब पागल हाथी ने तुम्हें ऊपर उछालकर सरोवर में गिरा दिया था तब तुम

मूर्छित हो गई थी यदि मैं आकर तुम्हें बाहर न निकलवाता और तुम्हारी समुचित चिकित्सा नहीं करवाता तो तुम अपने जीवन से हाथ धो चुकी होती। अगर मैंने तुम्हें नया जीवन दिया है तो तुम भी मेरी आशा पूरी करो, देवी !.

.....ओ चन्द्रमुखी, तुम मेरे जीवन में शीतलता उंडेल दो। यह सारा राजभवन तुम्हारे बिना सूना लग रहा है–इसे तुम रोशन कर दो.....मैं तुम्हारी 'हां' सुनने के लिये बेचैन हो रहा हूं.....''

एक बार तो राजा के ये वासनामय वचन सुनकर मंजुला का दिल रोष से भर उठा, किन्तु तत्काल ही उसे खयाल आया कि इन परिस्थितियों में रोष दिखाना संकटमय बन जायगा, अतः अपनी सुरक्षा के लिये विवेक पूर्ण व्यवहार ही किया जाना चाहिये। फिर भी मंजुला राजा की बात का कोई जबाब नहीं दे सकी। राजा ने मौन को कमोबेश स्वीकृति मानकर बहुमूल्य वस्त्रें, अलंकारों, रत्नों तथा सुख सुविधापूर्ण सामग्री के मंजुला की शैय्या के चारों ओर ढेर लगवा दिये किन्तु मंजुला ने उन ढेरों की तरफ एक नजर डालकर भी नहीं देखा। तब राजा ने समझा कि मेरा प्रस्ताव शायद इसकी दृष्टि में अभी तक इसके स्तर के अनुरूप नहीं है, अतः राजा ने अपना सबसे ऊंचा प्रलोभन पेश कर दिया–

''हे कोमलांगी, तुम मेरे दिल में इस गहराई तक समा गई हो कि मैं तुम्हें सामान्य रानी नहीं, अपनी पटरानी बनाऊंगा। इसका मतलब होगा कि तुम मेरे दिल पर राज करोगी.....अब तो बोलो कि क्या कहती हो ? भली प्रकार से सोच–विचार करलो। अपना शुभ निर्णय मुझे बताओ.....।''

मन ही मन तो मंजुला इस प्रणय–निवेदन पर छिः–छिः कर उठी– अमित शक्तियों का स्वामी होकर भी मनुष्य वासना का ऐसा गुलाम हो जाता है जिसके लिये मेरे हृदय में कभी कोई जगह नहीं हो सकती। मैं भी कैसी हतभागिनी हूं कि जिस बालक को सवा नौ माह मैंने अपने गर्भ में रखा, उसे स्तनपान तक न करा सकी और इधर इस कामी कीड़े ने मेरे लिये अजीब सी आपदा खड़ी कर दी है। फिर वह सोचने लगी कि सीता को भी इसी तरह रावण ने परेशान किया था किन्तु उनको तो राम जैसे पति और हनुमान जैसे सेवक का बल था किन्तु मेरे पति को तो जानकारी भी नहीं है कि मैं कहां हूं और मेरे साथ कैसी बीत रही है ? उन्हें क्या पता कि उनकी मां और बहिन ने मुझे घर से ही निकाल दी है। वे तो सोच रहे होंगे कि विद्याधर के वचनों के अनुसार उनका भाग्यशाली सुपुत्र श्रीपुर की हवेली में ठाठबाट से बड़ा हो

रहा होगा। काश, मेरे पतिदेव इधर आ जाते और इस संकट से मुझे उबार लेते !.....लेकिन उसने अपने आपको सचेत बनाया कि वह हतोत्साहित क्यों हो रही है ? क्या जन्म से उसे मिले सुसंस्कार आज वह भूल रही है ? क्या वीतराग वाणी और सन्तों के सत्संग को भी भूल रही है जो इस तरह घबराकर वह कुछ का कुछ सोचने लगी है ? उसने अपने आत्मबल का आह्वान किया और सारे संकट का सूझबूझ के साथ सामना करने का निर्णय किया ताकि सांप भी नहीं मरे और लाठी भी नहीं टूटे।

राजा जयशिखर उसके उत्तर की इन्तजार में खड़ा था। वह उसे समझा भी नहीं सकती क्योंकि वह कामान्ध बना हुआ था। वह उसे फटकार भी नहीं सकती क्योंकि उसके पास बाहरी ताकतों की कमी नहीं थी जिनके कारण वह उसके शील को भी खतरे में डाल सकता था। अभी तो वह याचना कर रहा था लेकिन क्रोधित होकर वह कुछ भी अनर्थ कर सकता था। इसलिये इसका इलाज कड़वी दवा की बजाय मीठी दवा से करना ही ज्यादा उपयुक्त रहेगा। मन में उसने सारी योजना सोची, लेकिन प्रकट रूप में वह राजा को कहने लगी–

''राजन, आप जो कुछ कह रहे हैं, उसको मैं ध्यान से सुन रही हूं और उस पर सोच भी रही हूं। मेरे पास मन का योग भी है, वचन की शक्ति और शरीर में प्राण भी मौजूद है, लेकिन पहिले सामने वाले की पूरी बात को सुन लेना मैं उचित मानती हूं ताकि उसका इच्छा से योग्य उत्तर दिया जा सके।''

मंजुला के इस उत्तर को सुनते ही राजा ने सोचा कि यह महिला रूपवती ही नहीं, बुद्धिमती भी खूब है, इसलिये इसकी बात को ध्यान से ही सुननी चाहिये। उसने उत्साहित होते हुए कहा–''हां–हां बोलो, मैं तुम्हारी सारी बात सुनूंगा।'' मंजुला बोली–''क्या बात करूं, राजन्, आप जानते ही हैं कि इस संसार में नारी विशिष्ट स्थान रखती है। यदि नारी न हो तो पुरुष की कैसी दशा बन जाय ? बच्चे का पालन–पोषण न हो तो क्या वह जिन्दा रह सकता है ? यह माता के वात्सल्य का असर होता है तो पुरुष, पुरुष बन पाता है। मैं भी कारणवश जंगल में रहकर अपने पुत्र का लालन–पालन करना चाह रही थी–मेरा भी मातृत्व सफल हुआ था किन्तु एक पागल हाथी ने मुझे उछाल कर सरोवर में गिरा दिया। मैं आपकी आभारी हूं कि आपने दया लाकर मुझे बाहर निकलवाया और मेरी चिकित्सा करवाई। आप सरीखे योग्य पुरुष ही नारी जाति को पहिचान सकते हैं। आपकी दयालुता के कारण ही

मैं राजभवन में आनन्द से रह रही हूं। शरीर और मन से मुझे पूरी तरह स्वस्थ हो जाने दीजिये ताकि मैं भली–भांति सोच–विचार कर स्थायी निर्णय ले सकूं।''

राजा जयशिखर ने जब मंजुला का यह कथन सुना तो उसका मन मयूर नाच उठा। अब तक उसका मन जो शंका–कुशंकाओं से घिरा हुआ था, कुछ स्पष्ट सा होने लगा कि इस रूपवती ने मेरा अहसान भी माना है, आनन्द से रहना भी माना है तो सोच–विचार कर स्थायी निर्णय लेने का आश्वासन भी दिया है जिससे पूरी आशा बंधती है कि वह मेरे अनुकूल बनने का यत्न कर रही है। उसने यह भी सोचा कि ऐसे नाजुक मामले में जल्दबाजी कतई नहीं करनी चाहिये–मन मनाकर ही सारी बात को जमानी चाहिये क्योंकि जल्दबाजी करने से सारी स्थिति ही बदल सकती है और बनती बात बिगड़ सकती है। इस कारण उसने मंजुला को पूरा सन्तोष बंधाते हुए हर्षपूर्वक कहा–

''देवी, मुझे विश्वास है कि जल्दी ही तुम पूर्णतया स्वस्थ हो जाओगी और तब तक सोच–विचार कर स्थायी निर्णय भी ले लोगी, क्योंकि मुझे तुम पर पूरा–पूरा विश्वास है।''

यह कहकर राजा मंजुला के कक्ष से बाहर चला गया। मंजुला सोच रही थी कि सोना ही आग में डाला जाता है।

❑❑❑

८

# कितना मनमोहक बालक ?

विद्याधर ने श्रीकान्त को अपने विमान हंसयान द्वारा भेजते हुए यह बताया था कि उसके होने वाला सुपुत्र अतीव ही भाग्यशाली होगा। उसी भाग्यशाली सुपुत्र को जन्म देते ही मंजुला सफाई करने के लिए जो सरोवर पर गई थी, वह वापिस लौटी ही नहीं। उस बीहड़ वन में एक वृक्ष की टहनी से बंधी झोली में वह नवजात शिशु सोया हुआ था। वह भूखा था, क्योंकि उसकी मां उसे स्तनपान तक नहीं करा सकी थी। वह अपनी खुली आंखों से ऊपर देख रहा था–शायद सोच रहा हो कि जिस नये संसार में वह आया है, क्या उसका रूप स्वरूप यही है ?

मंजुला के सरोवर पर चले जाने के कुछ समय बाद उधर से एक बनजारा अपनी बालद लेकर गुजरा। उस बियावान जंगल में उस लटकती हुई झोली को देखकर वह आशंकित हुआ कि उसमें क्या हो सकता है ? ज्योंही वह झोली के समीप पहुंचा उसे नवजात शिशु का रोना सुनाई दिया। तब तो वह आश्चर्य चकित रह गया कि इस स्थान पर केवल यह नवजात शिशु अकेला कैसे है ? इसको जन्म देने वाली मां तक कहां चली गई है ? जब उसने झोली में झांक कर देखा तो उसके मन में हर्ष ही लहर दौड़ गई कि कितना मनमोहक है यह बालक ?

बनजारे ने अपने अनुचरों को आसपास में कोई हो तो उसकी खोज करने का निर्देश दिया और स्वयं उस बालक को अपने हाथों में लेकर खुशी खुशी रमाने लगा। एक अनुचर से उसने दूध भी मंगवाया और रूई के फोहे से बूंद–बूंद दूध बालक को पिलाने लगा। उस बालक को अपने हाथों में लेकर रमाने और दूध पिलाने में उसे अपार सुख की अनुभूति होने लगी। इसका एक विशेष कारण भी था। प्रौढ़ावस्था तक पहुंच जाने के बाद भी उस बनजारे को कोई सन्तान नहीं हुई थी जिस कारण से वह और उसकी धर्मपत्नी दोनों बड़े दुःखी रहा करते थे। उनकी सदा यही कामना बनी रहती थी कि कम से कम एक सन्तान तो उन्हें प्राप्त हो ही जावे किन्तु सभी प्रकार

के उपाय कर लेने के बाद भी उनकी कामना फलीभूत नहीं हुई थी। अब तो संतान प्राप्ति की तरफ से वे करीब–करीब निराश हो चुके थे।

बालक की सुन्दरता, कोमलता और प्राभाविकता इतनी अद्‌भुत थी कि उसे सर्वांगतः निहार कर वह बनजारा ठगा सा रह गया। उसने बालक की मां अथवा अन्य परिजन की खोज करने के लिये अपने अनुचरों को भेज तो अवश्य दिया था किन्तु मन ही मन वह कल्पना करने लगा कि कोई भी नहीं मिले तो बहुत अच्छा हो ताकि वह मनमोहक बालक उसे यों ही प्राप्त हो जाय। उसकी कल्पना आगे दौड़ने लगी कि जब वह ऐसे विलक्षण बालक को घर ले जाकर अपनी धर्मपत्नी के हाथों में देगा तब अतीव आनन्द से वह कितनी भावविभोर हो जायगी ? फिर वह इसका बहुत नेह पूर्वक लालन पालन करेगी और इसकी बाल लीलाओं से सारे घर को आनन्दित बना देगी। दत्तक पुत्र के रूप में यह बालक उनके कुल का दीपक बन जायगा।

''स्वामी, हमने चारों ओर सारे जंगल को छानमारा लेकिन हमें तो कोई मानव या मानवी कहीं पर नहीं दिखाई दी। ऐसा लगता है कि किसी महिला ने रास्ता भटक कर यहां बालक को जन्म तो दे दिया किन्तु किसी कार्यवश बालक को झोली में लटका कर वह इधर–उधर गई होगी और कोई जंगली जानवर उसे खा गया होगा।' थके हुए अनुचरों ने अपने स्वामी को यह ब्यौरा देते हुए सुझाव दिया कि वे इस बालक को अपने साथ ले चलें।

''तुम ठीक कह रहे हो भाई, मैं खुद इसे घर ले चलने के लिए बहुत उत्सुक हूं किन्तु हमें इसकी माता के आने की अभी भी कुछ और इंतजार करना चाहिये क्योंकि किसी नवजात शिशु को उसकी माता से विलग कर देना अच्छा नहीं है। इसलिए दो दिन तक अपना पड़ाव यहीं रहने दो, खाना बनाओ, खाओ और विश्राम करो।'

स्वामी का यह आदेश सुनकर सभी अनुचर बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि हकीकत में वे बहुत थके हुए थे और उन्हें विश्राम की सख्त जरूरत थी। बनजारे ने अपने एक प्रिय अनुचर को अपने पास रोक लिया कि वह उसके पास ही ठहरे और जो कुछ निर्देश दे, तत्काल उन्हें पूरा करे।

बनजारा तो खाना, पीना, आराम करना सब कुछ भूल गया। उसका मन ही नहीं होता था कि वह उस बालक को अपने हाथों से नीचे उतारे। वह खुद ही बालक को दूध पिलाता, रमाता और हंसाता था। बालक जब किलकारियां मारता तो बनजारे को जैसे खजाना ही मिल जाता, वह भी जोर

जोर से कूदने और मोद मनाने लगता।

पड़ाव डाले हुए दो दिन भी पूरे होने आये लेकिन वहां कोई भी नहीं आया। इससे यह निश्चित हो गया कि उस बालक की मां जीवित नहीं बची है और अब बनजारा बिना किसी हिचक के उस बालक को अपने घर पर ले जा सकता था। इस खुशी में पड़ाव उठाने से पहले बनजारे ने अपने सभी साथियों और अनुचरों को इकट्ठा किया और उनको सम्बोधित करते हुए बोला–

''भाइयो ! आप देख रहे हैं कि बालक का कोई भी पालक नहीं दिखाई दे रहा है अतः यदि आप सब लोग सहमति दें तो मैं इसे अपने साथ ले लूं और अपना दत्तक पुत्र बनालूं।'

सभी लोगों ने आपस में विचार–विमर्श किया और उसमें से एक ने बनजारे की बात का जबाव दिया–

''मुखियाजी, हम बनजारे तो फर्ज को भी अच्छी तरह समझते हैं। यह ठीक है कि आपको संतान नहीं होने से बालक की जरूरत है किन्तु ऐसा नहीं होता तब भी क्या हमारा फर्ज नहीं होता कि इस बियावान जंगल में अकेले रहे हुए इस बालक को हम साथ में ले जाते और इसका उचित रीति से लालन पालन करते। हमें तो बहुत खुशी है कि हमें हमारे मुखियारीजी का उत्तराधिकारी मिल गया है।'

''तो भाइयो ! अपन यहां से प्रस्थान करें उसके पहिले एक सहभोज का आयोजन करें और इस मनमोहक बालक का जन्मोत्सव मनावें।'

X X X

''महाभाग, देखो तो सही इस बार मैं तुम्हारे लिए कैसी अनोखी वस्तु लेकर आया हूं जिसे तुम देखोगी तो खुशी से पागल हो जाओगी।'' मुखिया बनजारा ने अपनी बनजारिन को जोर से पुकारते हुए कहा।

''अरे आप आ गये ! क्या अनोखी वस्तु लेकर आप आये हैं, जरा देखूं तो ?''

बनजारिन भागती आयी और अपने पति की ओर उत्सुकता पूर्वक देखने लगी। बनजारे ने अपने अनुचर को आदेश दिया कि वह बालक को ले आवे। जब उस सुन्दर और सुकुमार बालक को बनजारिन ने अपने हाथ में लिया तो उसको उतना अतिशय आनन्द आया जैसे कि उस बालक को उसने ही जन्म दिया हो। वह तो बालक को गोदी में लेकर भावातिरेक में

स्तनपान कराने लग गई और यह क्या हुआ कि उस बांझ के आंचल में भी दूध उमड़ आया। बालक प्रसन्नता पूर्वक स्तनपान करने लगा और बनजारिन उसको देख–देख कर प्रमुदित होने लगी। उसकी प्रसन्नता का जैसे आर–पार ही नहीं था।

बनजारे ने कहा–''क्यों पसन्द आ गया न अपना नया पुत्र ! यह धर्म का प्रसार है। तुमने लम्बे समय तक धैर्य रखा जिसका ही सुपरिणाम है कि हमें ऐसा अद्वितीय पुत्र रत्न सहज ही में प्राप्त हो गया है। अब तुम अपने मन के खूब अरमान निकालो और इस मनमोहक बालक का श्रेष्ठ रीति से लालन–पालन करो।'

बनजारिन ने बिना आंखें ऊपर उठाये ही जवाब दिया– ''स्वामी, मैं तो इसे पाकर निहाल हो गयी हूं। हो सकता था कि मैं अपने जाये पुत्र पर भी इतना स्नेह नहीं दे पाती किन्तु घोर निराशा के बाद जो इस अद्वितीय पुत्र की प्राप्ति हुई है– इस पर तो मैं बलिबलि ही जाऊंगी। लेकिन इसका जन्मोत्सव धूमधाम से मनाने के बारे में क्या आपने कुछ भी नहीं सोचा है ?

''ऐसा कैसे हो सकता है प्रिये, छोटा–मोटा जन्मोत्सव तो हमने जंगल में ही मना लिया था। अब तो इसका अच्छा सा नाम सुझाओ ताकि नामकरण संस्कार के रूप में ऐसा बड़ा उत्सव मनावें जैसा मुश्किल से ही कभी आयोजित किया गया हो।''

''मुझे बहुत खुशी हो रही है कि आपने इतना बड़ा आयोजन करने का विचार किया है। भला यह तो बताइये कि आपने इसका नाम क्या सोचा है ?''

''देखो हम तो पैसा कमाना जानते हैं दूसरी बातों में पीछे ही रहते हैं इसलिए तुम ही कोई अच्छा सा नाम सोच कर तय कर लो।''

बनजारिन को जब पति ने यह मान दिया तो उसने अपना सिर ऊंचा करके कहा–''जब आपने यह काम मुझ पर ही छोड़ दिया है तो मैं अवश्य ही एक अच्छा सा नाम खोज लेती हूं। क्या आपने इस बालक को अच्छी तरह से देखा है ?''

''अच्छी तरह से देखने की बात पूछती हो ? जंगल में जब से मैंने इसे झोली में से उतार कर अपनी गोद में लिया तब से एकटक इसको देखता ही रहा हूं। यह इतना प्यारा बालक है कि इस पर से नजर हटती ही नहीं है। लेकिन इसका नाम क्या होना चाहिये यह तो तुम ही सोचो।'

बनजारिन बालक को नेह भरी नजरों से निहारती ही रही और सोचने लगी कि इस बालक का कोई ऐसा नाम होना चाहिये जिसमें इसके शारीरिक सौन्दर्य का पूर्णतया बोध हो सके। बालक एकदम गौर वर्ण का था, नाक नक्श सुन्दर थे और शरीर का अंग–अंग बहुत ही सुकोमल था। बनजारिन इन सभी विशेषताओं को एक ही शब्द में बांध लेना चाहती थी जिससे उस नाम को पुकारने के साथ ही ये सारी विशेषताएं उभर कर सामने आ जाय। वह सोचती रही, बालक को निहारती रही और गहराई से सोचती रही। अचानक ही उसके दिमाग में जैसे बिजली सी चमकी और वह खिलखिलाती हुई अपने पति से कह उठी–

''क्यों स्वामी, हमारा यह लाल बहुत ही स्वरूपवान है न ?''

''अवश्य है, इतना स्वरूपवान कि इसकी जोड़ का कोई दूसरा बालक ढूंढ लेना कठिन ही लगता है।''

''तो यह स्वरूपवान है, आकर्षक है और कोमल इतना है कि शायद फूल भी इतना कोमल न हो।''

''तो इसका नाम फूल का अर्थवाचक ही क्यों न रख दिया जाय ? फूल सुन्दर होता है, आकर्षक होता है और सुकोमल भी होता है। इसके अलावा फूल में सुवास होती है वही उसकी सच्ची पहिचान होती है। हमारा यह लाल भी भविष्य में ऐसे श्रेष्ठ जीवन वाला बनेगा कि इसकी यशः कीर्ति रूपी सुवास चारों ओर खूब फैलेगी और संसार में खूब सराही जायगी।''

''मैं भी ठीक यही सोच रही थी। आपने मेरे ही मुंह की बात छीन ली है। मैंने सोचा है कि इसका नाम नाम कुसुमकुमार रख दिया जाय। क्यों ठीक रहेगा न ?''

नाम सुनकर बनजारा खुशी में झूम उठा और कहने लगा– ''प्रिये, अपना यह पुत्र अब कुसुमकुमार कहलायेगा। मुझे यह नाम बहुत पसंद आया है। अब जल्दी ही इसके नामकरण संस्कार के उत्सव की तैयारियां शुरू करता हूं.....।''

बनजारा तो बाहर चला गया किन्तु बनजारिन की तो कुसुमकुमार के सिवा कुछ दीखता ही नहीं था। कभी उसे दूध पिलाती, कभी उसे नहलाती, कभी उसे सजाती तो कभी उसे सुलाते हुए हालरिया गाती। हर समय उसी की सेवा टहल में लगी रहती और जब नन्हा सा कुसुम अठखेलियां करता तो

उसे ऐसा लगता कि उसकी मन की बगिया चारों ओर से हरी भरी होकर खिल उठी है।

इस तरह बनजारा और बनजारिन के लाड़ प्यार में कुसुमकुमार दूज के चांद की तरह बड़ा होने लगा।

X X X

कुसुमकुमार के नामकरण संस्कार के उत्सव का दिन आ ही पहुंचा। मुखिया बनजारा तथा बनजारिन फूले नहीं समा रहे थे। अपनी सारी बिरादरी के अलावा नगर के गणमान्य सज्जनों को भी विशाल प्रीतिभोज में आमंत्रित किया गया था। सबको जिमाने के बाद नामकरण–संस्कार के लिये अलग से आयोजन रखा गया था। दोनों पत्नी पति घूम–घूम कर तैयारियां देख रहे थे और उन्हें सुव्यवस्थित करने के सुझाव दे रहे थे।

यह बनजारा पति–पत्नी के जीवन का प्रमुख एवं उल्लासमय दिवस था। उनके भाग्य से उन्हें अपनी जाइन्दा संतान नहीं मिली किन्तु प्रकृति ने उन्हें ऐसा अनुपम पुत्ररत्न प्रदान किया था जिसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इसलिए उनके हर्ष की सीमा नहीं थी। उन्होंने अपने घर आंगन को बहुत ही सुरुचि के साथ सजाया था और तोरण बंदनवार लगाये थे। उनके सम्बन्धी सुबह जल्दी ही वहां पहुंच गये थे जो सारी तैयारियों में जुटे हुए थे।

प्रीति–भोज का दृश्य बड़ा ही सुवाहना लग रहा था। विविध व्यंजन सबको परोसे जा रहे थे और जीमनें वाले प्रेम पूर्वक भोजन कर रहे थे। भोजन से सबके निवृत्त हो जाने के बाद नामकरण–संस्कार का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। एक ओर एक सुन्दर नक्काशीदार पालने में कुसुमकुमार को सुलाया गया था अतः जो मेहमान आता उस मनमोहक बालक को देखता और उसे भरपूर आशीर्वाद देता हुआ यथास्थान बैठ जाता।

जब सभी मेहमान आ गये तो मुखिया बनजारा ने सारी कहानी सुनाते हुए इकट्ठी हुई पंचायत से निवेदन किया–

''मैं आपका मुखिया जरूर हूं फिर भी मैं चाहता हूं कि प्रत्येक कार्य सबकी सहमति से किया जाय। चूंकि यह बालक मेरा उत्तराधिकारी मुखिया बनेगा इसलिए आप सबकी स्वीकारोक्ति मांगता हूं कि मैं इसे गोद ले लूं.....।''

''हमारी सबकी पूर्ण सहमति है।''

''तो मैं इसमें भी आप सबकी सहमति चाहता हूं कि इसका नाम कुसुमकुमार रखा जाना तय किया है।''

''इसमें भी हमारी पूर्ण सहमति है।''

''तो आप कृपा करके सब इस नन्हें बालक को अपना आशीर्वाद दें कि यह दीर्घजीवी हो तथ अपने सत्कार्यों से पूर्ण यशस्वी बने।''

फिर सभी ने कुसुमकुमार को अपना हार्दिक आशीर्वाद दिया और एक साथ उच्चरित किया–''कुसुमकुमार दीर्घजीवी हो, यशस्वी हो.....।''

❑❑❑

# ६
# मिलने की असीम उत्कंठा, लेकिन यह क्या ?

विद्याधर को यथासमय विमान सौंपकर श्रीकान्त एक नये व्यापार में लग गया और संयोग की बात कि इस बार उसका व्यापार जमता ही गया और उसमें धीरे–धीरे सफलताएं प्राप्त करते हुए वह अच्छा अर्जन करने लगा। नैतिकता उसके व्यापार की जान थी याने कि नैतिकता पहले और व्यापार बाद में। व्यापार से किसी भी तरह लाभ हो हाय– यह उसे पसन्द नहीं था। लाभ नीति के साथ किये जा रहे व्यापार से हो तभी उसे वह लाभ ग्राह्य था।

नीतिमय व्यापार से जल्दी ही अनाप–शनाप धन इकट्ठा नहीं हो सकता है अतः श्रीकान्त को अपने व्यापार कार्य में फलते–फूलते चार–पांच वर्ष निकल गये। तब तक उसके पास कुछ धन–संग्रह भी हुआ तो उसके साथ ही उसको घर की याद भी सताने लगी।

वह कल्पना में दृश्य देखने लगा कि उसका सुपुत्र अब तक बड़ा हो गया होगा, वह घर आंगन में खूब खेलता होगा और अपनी बाल क्रीड़ाओं से सबके मन खुशी से भर देता होगा। मां को तो वह परम दुलारा होगा ही, किन्तु उसकी मां और उसकी बहिन के हाथों में भी वह प्रेमपूर्वक झूलता रहता होगा। और मंजुला, उसकी प्रिय धर्मपत्नी उसकी कितनी उत्सुकता से प्रतीक्षा करती होगी कि कब उसके पति पंहुचे और दोनों अनुराग के मीठे झरने में नहाने लगें। कल्पना ही कल्पना में जैसे वह अपने पुत्र को अपने हाथों में उठा लेता, ऊपर उछालता और उसके नन्हें से मुखड़े को चूम लेता। किन्तु कल्पना के क्षेत्र से बाहर निकलते ही वह वास्तव में घर पहुंच जाने के लिए व्यग्र हो उठता। घर पहुंच कर सबसे मिलने की श्रीकान्त के मन में असीम उत्कंठा पैदा हो गई थी।

दौड़ा–दौड़ा श्रीकान्त अपने साथियों के पास पहुंचा और उनसे आग्रह करने लगा कि वे भी उसके साथ परदेश से अपने–अपने घरों के लिये प्रस्थान करें ताकि सबके साथ में यात्रा आनन्दपूर्वक सम्पन्न की जा सके।

''क्यों मित्र, तुम्हारा भी अब घर चलने का मन हो रहा है या नहीं ?''–श्रीकान्त ने उत्सुकता से पूछा।

''घर की हमको याद आ रही है, श्रीकान्त, लेकिन बहुत जल्दी हम नहीं चल पायेंगे। तुम कब तक रवाना हो जाना चाहते हो ?''

''कब तक की बात अब मेरे मन में नही है, मित्र जल्दी से जल्दी अब मैं चल देना चाहता हूं–आज, कल या दो दिन बाद। मुझे अब घर की याद बहुत तेजी से सता रही है।'

''भाई हम तो अभी छः माह–वर्ष पहले यहां से प्रस्थान करने की स्थिति में नहीं है। हमें खेद है कि हम तुम्हारा साथ नहीं कर पायेंगे।''

निराश श्रीकान्त घर लौट आया और सोच विचार कर उसने निश्चय किया कि अब वह घर के लिये अकेला ही चल देगा। आखिर आया भी तो वह अकेला ही था। इस बार साथ में जोखिम है तो क्या हुआ ? उसमें कौनसी साहस की कमी थी। और वैसे भी वह सिद्धान्तवादी था कि यह जीव इस संसार में अकेला ही आता और अकेला ही जाता है–सिर्फ अपने अच्छे या बुरे कर्म ही अपने साथ रहते हैं। इसलिए अकेलेपन से कैसा डर ?

X X X

घर जाने के लिये निश्चय करने के साथ ही श्रीकान्त का मन फिर कल्पना की उड़ाने भरने लगा। किसके लिये क्या–क्या वस्तुएं वह खरीदे–इसकी उसने लम्बी सूची बनाई– वस्त्र, अलंकार एवं अन्य पदार्थ और उस नन्हें के लिए क्या ले जाऊं– वह बार–बार सोचने लगा। मन में आया कि उसके लिये कुछ ऐसा ले जाऊं कि जिसे देखते ही वह किलकारियां भरने लगे– बेहद खुशी की किलकारियां कि यह उसके पिता की प्रेममयी भेंट है– दिल से उफनते हुए स्नेह की भेंट।

वह बाजार में निकल गया और बड़े ध्यान तथा नेह से चीजें खरीदने लगा। सब सामग्री एकत्रित करके वह घोड़े पर सवार हुआ और श्रीपुर की दिशा में चल पड़ा।

घोड़ा अपनी राह चल रहा था, किन्तु श्रीकान्त का मन कहां राह पर बंधा हुआ था ? वह तो एक दिशा से अनेक दिशाओं में बिजली से भी ज्यादा तेजी के साथ सरपट भाग रहा था। उसके मन में यह लग रही थी कि वह जल्दी से जल्दी मंजुला की खबर ले और विद्याधर के ज्ञान की जांच करे कि

उसका सुपुत्र कैसा भाग्यशाली है ? वह यह भी सोचने लगा कि यह एक लम्बे अर्से बाद घर पहुंच रहा है तो उसकी धर्मपत्नी, मां और बहिन कितनी उमंग से उसका स्वागत करेंगे और जाति बिरादरी वाले पड़ौसी भी उससे प्रेमपूर्वक मिलने आवेंगे तथा परदेश के हाल–चाल पूछेंगे। यह सोचते हुए मन ही मन भावुक हो उठा कि वह सबको उनके उपहार देता हुआ जब अपने छोटे राजकुमार के सामने उसका उपहार रखेगा तो वह अपनी तुतलाती बोली में पूछेगा–''यह तैता उपहाल लाये हैं पिताजी आप मेले लिये ?'' तो वह कितना प्यारा लगेगा। उसे हाथों में उठाकर चारों ओर घुमा दूंगा मैं– और हकीकत में उसके हाथों में से घोड़े की लगाम छूट गई और उसने अपने हाथ चारों ओर घुमा दिये।

अब श्रीकान्त ने काफी दूरी पार करली थी और उसका घोड़ा श्रीपुर के समीप पहुंचता जा रहा था। ज्यों–ज्यों वह समीप पहुंचता जा रहा था, श्रीकान्त का हृदय बांसों उछलता जा रहा था–उसकी मातृभूमि, उसकी माता, उसकी धर्मपत्नी, उसकी भगिनी, उसका लाल और उसके सभी आत्मीय जन उससे मिलने ही वाले हैं। कितना आनन्दित होगा वह उन सबसे मिलकर ?

अपनी हवेली के बाहर पहुंचते ही जब श्रीकान्त ने अपनी मां को पुकारा तो मां ने उसे बाहर ही रोककर आरती का थाल तैयार किया तथा उसकी आरती उतारी। पद्मा ने भाई साहब की बलैयां ली और उन्हें सम्मानपूर्वक भीतर ले गई।

किन्तु यह क्या ? श्रीकान्त जिन्हें देखने के लिए उतावला हो रहा था, उन दोनों में से किसी की भी शक्ल अभी तक उसके सामने नहीं आई। न तो अभी तक उसे मंजुला ही दिखाई दी और न उसका नन्हा लाड़ला ही इधर–उधर कूदता फांदता नजर आया। वह हैरान था कि आखिर दोनों कहां चले गये हैं। या भीतर ही ठहरे हुए हैं। उसने सोचा– उसकी मंजुला बहुत संकोचशील और शिष्ट है अतः उसने व्यर्थ की व्यग्रता नहीं दिखाई हो। आखिर वह स्वयं भी उनके लिये अपने हृदय की व्यग्रता को कहां प्रकट कर सका है ? वह मंजुला के लिए पूछ भी ले, मगर उसकी मां–उसकी बहिन क्या सोचेगी कि हमसे तो तनिक भी बात ही नहीं की और अपनी घरवाली की कितनी ललक लगी हुई है ? वह प्रकट रूप से अपने पुत्र–पत्नी के लिये वास्तव में कुछ भी नहीं पूछ सका।

मां ने बहुत लाड़ से श्रीकान्त को भोजन, कराया, पद्मा ने पंखा झला और उससे परदेश की कमाई की, उपहारों की बातें वे दोनों करती रही। वह सुबह के अपने भोजन से निवृत्त हो रहा था तभी उसके पड़ौसी, सम्बन्धी और जाति भाई मिलने आने लगे। वह अपनी बैठक में बैठ गया और सब का स्वागत करने लगा। सब उसका कुशल क्षेम पूछते, और परदेश के हाल–चाल जानते। सब उसे इस बात की बधाई दे रहे थे कि वह साहस करके परदेश गया और अपने कार्य कौशल से बहुत धन संग्रह करके लाया। मिलने आने वालों का तांता लगा हुआ था– एक गया तो दूसरा आया। उसे तनिक भी समय नहीं मिला कि वह स्वयं मंजुला के कक्ष में जाकर पता लगाता कि वह बाहर क्यों नहीं आई है ?

शाम होने लगी तो वह अपनी बैठक से उठ कर भीतर गया, फिर भी उसको दोनों आत्मीय कहीं भी नहीं दिखाई दिये। वह अपने मन को तसल्ली देने लगा कि दोनों या तो उसके ससुराल गये होंगे या किसी अन्य गांव में अपने किसी सम्बन्धी से मिलने गये होंगे। यदि वह अपनी अधिक अधीरता बतायेगा तो मां क्या महसूस करेगी और उसकी नटखट बहिन तो उसकी खिल्ली ही उड़ाने लग जायेगी। इस कारण उसने चुप रहना ही उचित समझा। आखिर तो वह मां बहिन के पास अभी शाम का खाना खाकर बैठेगा और बातचीत करेगा तब उन दोनों का प्रसंग भी छिड़ेगा ही एवं तब उसको उनके बारे में सब कुछ मालूम हो ही जायगा।

श्रीकान्त भीतर गया तो मां किसी काम में लगी हुई थी अतः उसने पद्मा की चोटी खींच कर उससे मजाक की, उसको उसके उपहार दिये और फिर धीरे से पूछा–

''क्यों पद्मा, तुम्हारी भाभी दिखाई नहीं दे रही है–क्या वह कहीं बाहर गई हुई है ?''

पद्मा ने भाई साहब के इस प्रश्न को सुना तो उसका चेहरा फक पड़ गया। वह क्या जबाब दे– यह उसे सूझा ही नहीं। और सूझता भी क्या ? सारा कांड ही उसकी पाप बुद्धि के कारण ही तो घटा था। भाई साहब की अंगूठी प्रमाण में दिखाने के बाद भला क्या सन्देह रह गया था मंजुला के कथन में ? भाभी हर तरह से पवित्र थी किन्तु पद्मा ने ही नीचता की अति करके अंगूठी के बारे में सफेद झूठ बोला और भाभी को कलंकित करके अकेली घर से बाहर निकलवा दी। तबसे भाभी न जाने कहां–कहां क्या–क्या

भुगत रही होगी– उसके भतीजे का क्या बेहाल हो रहा होगा ? वह अब भाई साहब को क्या जवाब दे ? उसको इतनी लज्जा आ रही थी कि धरती फटे और वह उसमें समा जाये तो बहुत अच्छा ताकि भाई साहब की ताड़ना से तो वह बच जाय। वास्तव में जब दुष्ट मनोभावों के आवेश में कोई भी पाप कर्म का किस–किस को क्या–क्या कुप्रभाव भोगना पड़ेगा, लेकिन जब उसके पाप कर्म पर से पर्दा उठने को होता है, तब उसे घोर पश्चाताप होने लगता है। पद्मा की उस समय ऐसी ही दशा हो रही थी।

दूसरी बार पूछने पर भी जब पद्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया तो श्रीकान्त अपनी मां के पास चला गया। उसने सम्मान और मधुरता के साथ मां से ही पूछ लिया–

''मां, मंजुला कहीं दिखाई नहीं दे रही है क्या बात है ?''

पद्मा तो अपने झूठ को जानती थी, किन्तु बेचारी मां को क्या मालूम कि अंगूठी के बारे में पद्मा ने सफेद झूठ बोला था। उसके सामने तो यही स्थिति आई थी कि मंजुला ने पद्मा के कक्ष में से वह अंगूठी चुरा कर अपना झूठा बचाव करना चाहा था– हकीकत में तो वह अपराधिनी थी ही, उसने कुल पर कलंक लगाया ही था। इस कारण मां के मन में कोई दुविधा नहीं थी। वह अपने मन में साफ थी, अतः उसने श्रीकान्त के प्रश्न का कोई सीधा उत्तर देने की वनिस्पत सिर्फ इतना ही कहा–

'बेटे, मंजुला का नाम लेना भी अब श्रेयस्कर नहीं है।'

यह सुनते ही श्रीकान्त के दिल की धड़कन तेज हो गई। अब तक तो वह एक या दूसरे विचार से अपने मन को तसल्ली दे रहा था किन्तु मां के इस स्पष्ट उत्तर ने तो उसके सामने प्रश्न–चिन्हों का ढ़ेर खड़ा कर दिया था। भीतर ही भीतर उसे पक्का अनुमान लगने लगा कि मां ने ऐसा क्यों कहा है और उस निर्दोष के साथ कैसी दुर्घटना घटी होगी ? उसे याद आया मंजुला का वह अनुरोध कि वह कुछ समय के लिये ही सही–लेकिन मां से मिलकर जावे, किन्तु अपने वचन निबाहने के जोश में उसने उसके अनुरोध को अनसुना कर दिया था– क्या उसका ही भयंकर कुफल इस रूप में प्रकट हुआ है ? क्यों उसकी दी हुई अंगूठी से उसकी स्थिति का बचाव नहीं हो सका ? तो क्या मंजुला के गर्भ को इन लोगों ने अनुचित समझा और उस पर कलंक का टीका लगाकर उसे घर से निष्कासित कर दी ? क्या इन लोगों ने उस पर–मंजुला पर तनिक भी विश्वास नहीं किया ? 'उसका नाम लेना

ही श्रेयस्कर नहीं है इसका क्या साफ–साफ यही अर्थ नहीं निकलता कि इन लोगों ने मंजुला को दुष्चरित्र और घोर कलंकिनी घोषित कर दी ? क्या उसकी छोटी सी भूल से दो निर्दोष जीवन खतरों से झूल रहे हैं या कि उनका क्या हुआ है–ज्ञानीजन ही जानें। उसके दिल में सैकड़ों सवाल उठ रहे थे पर उनके उत्तर देने वाला कोई नहीं था।

श्रीकान्त के मन में यह निश्चय हो गया कि उसका अनुमान सही है और उसी के कारण मां यह कह रही है कि मंजुला का नाम लेना भी श्रेयस्कर नहीं है। दूसरे किसी कारण की सम्भावना उसको कम ही लगी। लेकिन सारा विवरण और स्पष्टीकरण वह मां से कैसे पूछे इसी पर विचार करता रहा। वह विचार करता रहा मंजुला के दुर्भाग्य पर–कितनी गुणशील सम्पन्न पत्नी उसको मिली थी लेकिन उसके ही घर में उसके साथ कितना निकृष्ट दुर्व्यवहार हुआ था और वह भी उसकी भूल के कारण। जिस साध्वी ने बिना शरीर सम्बन्ध विवाह होते ही परदेश जाने के उसके संकल्प को पूरा करने में भी सहयोग दिया वही साध्वी कलंकिनी सिद्ध कर दी गई। उसके सद्‌गुणों पर मुग्ध होकर मां ही उसे इस घर में मेरी इच्छा को मोड़ कर भी लाई लेकिन वहीं मां इतनी कटुता से उसके विरुद्ध हो गई ?

मिलने की कितनी असीम उत्कंठा लेकर श्रीकान्त अपने घर की ओर भागा–भागा आया था, लेकिन यह कैसा दृश्य उसके सामने आया है ? वह मां से सारी दुर्घटना का समूचा विवरण जानना चाहता था, और तुरन्त जानना चाहता था। किन्तु उतावली करने में उसे संकोच महसूस हुआ। इसलिये उसने यही निश्चय किया कि परिवार के तीनों सदस्य जब निवृत्त होकर साथ में बैठेंगे, तभी वह सारा विवरण दोनों से पूछेगा।

❑❑❑

१०

# श्रीकान्त ने आपा नहीं खोया

''मातेश्वरीजी, आप जानती हैं कि मैं उतनी जल्दी विवाह नहीं करना चाहता था किन्तु आपने ही आग्रह करके मेरा विवाह कराया और जिस मंजुला के लिये उसके विविध सद्‌गुणों के कारण आपकी अत्यधिक पसन्दगी थी, वही मंजुला मेरे परदेश जाने के बाद किस प्रकार और क्यों अपराधिनी हो गयी कि आप मुझे अब उसका नाम लेने से भी मना कर रही हैं। मुझे साफ–साफ बताइये कि उसने क्या दोष किया ? मैं सारा विवरण जल्दी से जल्दी जानना चाहता हूं और निर्णय लेना चाहता हूं कि सही वस्तुस्थिति क्या रही ? क्या आप इतना भी महसूस नहीं करती कि मैं आपकी बहू और आपके पोते को देखने के लिये कितना उत्सुक हो रहा हूं.....''

श्रीकान्त की आवाज में अथाह पीड़ा झलक रही थी और उस पीड़ा को उसकी मां ने भी महसूस किया किन्तु वह अपने मन में इतनी हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी कि जो कुछ बीता है उसे साफ–साफ अपने बेटे को बता दे। अभी–अभी श्रीकान्त ने जो यह कहा कि वह अपने बेटे से मिलने को उतावला हो रहा है उसका साफ मतलब यह निकला कि जो कुछ मंजुला कह रही थी वह सत्य व पूर्ण सत्य था। और इस नजर से उसके हाथों मंजुला के साथ जो भी बर्ताव हुआ है वह एकदम अन्यायपूर्ण था। अब वह वह अपने बेटे को क्या विवरण बतावे, कैसे बतावे और किस मुंह से बतावे ? उसके मन में यह डर भी समा रहा था कि सारी बात सुनकर श्रीकान्त न जाने क्या कर बैठे ? वह दो सम्भावनाओं के बीच झूलने लगी।

तब श्रीकान्त की मां ने सारी बात तरकीब से ही उसे बताने का निश्चय किया, इस कारण वह टालमटोल करती हुई बोली–

''मैंने तुम्हें सही कहा है बेटा कि अब मंजुला का नाम भी मत लो। जो बीत गई है उसे भूल जाओ और अब आगे क्या करना है उसके बारे में सोच विचार करो।''

''आगे क्या करना है– यह बाद में देखा जायगा। इस समय तो मैं उस मंजुला के दोष अपराध की पूरी जानकारी लेना चाहता हूं जिसे मां, तुम और मैं परम शीलवती, बुद्धिमानी और सद्‌गुण सम्पन्न मानते थे। बीती बात को यों ही छोड़ देने के पक्ष में मैं नहीं हूं। किसने क्या सही किया है और किसने क्या गलत इसका फैसला नहीं करें तो संसार के सारे काम अंधेरे में ही चलने लग जायेंगे.....आप कहती हैं कि मैं उसे भूल जाऊं तो आप ही सोचिये कि क्या मैं उसे भूल सकता हूं ? मेरा निवेदन है कि आप पहेलियां मत बुझाइये और मुझे साफ–साफ बताइये कि मंजुला इस घर में क्यों नहीं रही और इस वक्त वह कहां है ?

श्रीकान्त का हठ देखकर मां का जी घबराने लगा किन्तु उसके मन में अथाह व्यग्रता और लज्जा समा गई थी, इसलिए उसने यही उत्तर दिया कि मंजुला ने गम्भीर अपराध किया था जिसको बताने में भी उसको भारी शर्म लग रही है। यह भूमिका बांध कर मां ने श्रीकान्त को समझना शुरू किया–'बेटे, तुम्हारा जीवन बड़ा पवित्र है और ऐसा ही पवित्र जीवन मैं मंजुला का भी मानती थी लेकिन तुम्हारी गैरहाजिरी में उसने ऐसा अपराध किया कि जिससे हमारे सारे कुल पर कलंक लगता था। इस कारण मुझे मजबूर होकर उसे इस घर से बाहर निकाल देनी पड़ी।'

मां के मुंह से निकले इस विवरण को सुन कर इस बात से कि मंजुला को इस घर से निकाल दिया गया है–श्रीकान्त अवाक् रह गया। कहां तो वह असीम उत्कंठा लेकर अपनी प्रिया और अपने लाल से मिलने के लिये परदेश से अकेला ही भागा–भागा आया था और कहां यह विडम्बना कि उन दोनों का कोई पता भी नहीं है कि वे कहां और कैसी विपदाओं से जूझ रहे होंगे ? कुछ क्षण तक भावावेश में श्रीकान्त कुछ भी नहीं बोल सका। भीतर ही भीतर कठिन वेदना से वह सिहर उठा लेकिन वह एक सुसंस्कारी एवं पुरुषार्थी युवक था अतः उसने अपने मन पर नियंत्रण किया और उतने ही विनयपूर्वक अपनी मां से बोला–

''मां मंजुला को घर से निकाले हुए करीब कितना समय हुआ होगा ?

'' यही करीब पांच वर्ष हुए होंगे।''

'क्या पांच वर्ष हो गये हैं मंजुला को इस घर से निकाले हुए ? जिस घर में उसके कुमकुम के पगलिये मंडा कर प्रवेश कराया गया था, उन पगलियों को मां, तुमने मेरे जाने के सात–आठ माह बाद ही घर से बाहर कर

दिया–शायद है कि तब तक उन पगलियों के कुमकुम की ललाई भी नहीं मिट पायी होगी। आप बार–बार उसके कलंक की रट लगा रही हैं किन्तु मुझे बता तो दो कि उसने क्या कलंक लगाया था ?''

''श्रीकान्त, तुम मेरे इकलौते बेटे हो और मैं नहीं चाहती कि तुम्हारा दिल दुखाऊं। बस इतना समझ लो कि उसने ऐसा कलंक लगाया है जिसे कभी मिटाया नहीं जा सकता।''

''मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं मां कि तुम मुझे उसका कलंक बता दो। क्या उसने कोयला खाकर सारा मुंह काला कर लिया था ?''

''क्या बच्चों जैसी बातें करता है। उसने कोयले से नहीं, किसी परपुरुष के साथ मुंह काला किया था और जब हमने उसको घर से बाहर निकाला तब उसे कोई तीन–चार माह का गर्भ था लेकिन उस समय तुम्हें परदेश गये सात–आठ माह हो चुके थे।''

''ओहो मां, तुमने गजब कर दिया। वह परपुरुष और कोई नहीं, मैं स्वयं ही था। तुम्हारे हाथों कितना बड़ा अनर्थ हो गया कि तुमने एक पतिव्रता को और उसके गर्भस्थ भाग्यशाली शिशु को कठिनाइयों के उबलते हुए कुण्ड में गिरा दिया.....।' इतना ही कहने के बाद श्रीकान्त की रुलाई इस कदर फूट पड़ी कि वह बच्चों की तरह बिलख–बिलख कर रो पड़ा। अपने बेटे को इस तरह दुःख करते हुए देख कर मां का दिल भी पिघलने लगा और पश्चात्ताप की आग में झुलसने लगा। वह भी रुंधे हुए कंठ से धीरे–धीरे बोली–

''मेरे बेटे श्रीकान्त, तुम मुझे सारी बात बताओ। लगता है मेरे हाथों हकीकत में बड़ा अनर्थ ही हो गया है। मुझे भी मंजुला पर उतना सन्देह नहीं था किन्तु पद्मा ने ही मुझे सारी बात इस तरह बतायी कि मुझे उसकी बात को सच माननी पड़ी।''

श्रीकान्त ने रोते–रोते उस रात की सारी घटना कह सुनायी और यह भी कहा कि समयाभाव में वह उसके दर्शन करके नहीं जा सका। किन्तु उसने यह भी बताया कि वह उस घटना की सत्यता के प्रमाण स्वरूप अपनी अंगूठी भी तो मंजुला को देकर गया था। फिर श्रीकान्त ने अपनी मां से पूछा–

''क्या मां, तुमने मंजुला के कहने पर कोई विश्वास नहीं किया और क्या उसने तुम्हें सबूत के तौर पर कि मैं उस रात आया था– वह अंगूठी भी नहीं दिखाई जो तुम्हारे स्नेह की निशानी के तौर पर मुझे दी हुई थी और

जिसे मैंने परदेश रवाना होते समय अपनी अंगूठी में पहनी हुई थी। तुम्हें बतायी थी वह अंगूठी या नहीं ?''

''वह अंगूठी मंजुला ने हमें बतायी थी और मैं उस पर विश्वास भी कर रही थी लेकिन तभी पद्मा ने बताया कि उस अंगूठी को बाहर निकल कर तुमने पद्मा को दे दी थी। पद्मा ने यह भी कहा था कि वह अंगूठी मंजुला ने उसके कक्ष से चुरा ली है। इस कारण मंजुला के प्रति मेरा विश्वास टूट गया और तब उसको घर से बाहर निकाल देने के अलावा और कोई चारा नहीं रहा।'

श्रीकान्त सिसकियां भर रहा था। उसके दिल के दर्द को सिर्फ वही महसूस कर रहा था कि दर्द कितना कठिन है ? वह पतिव्रता मंजुला कहां होगी किन कष्टों से घिरी हुई होगी और उस नन्हें बालक का भी न जाने क्या हाल हो रहा होगा ? वह सोचने लगा कि मैं तो पुरुष हूं सो कितनी भी कठिन स्थिति हो, बर्दाश्त कर सकता हूं किन्तु वह तरुणी मंजुला अपना जीवन किस तरह गुजार रही होगी ? इन्हीं विचारों में खोया श्रीकान्त बहुत अधीर हो रहा था कि वह जल्दी से जल्दी अपनी पत्नी व पुत्र का पता लगावे, फिर भी मां को उसने बहुत ही धैर्य के साथ कहा–

''मां, पद्मा के लिये मैं क्या कहूं लेकिन मंजुला पूर्णतया निर्दोष थी। मैं समझता हूं कि उसने अपने जीवन में जितनी पवित्रता रखी थी उतनी शायद ही अन्य कोई स्त्री रख सकती हो। मैंने भी तुम्हारा दूध पिया है मां, इसलिए अपने जीवन को सदा पवित्र रखने की कोशिश की है– परदेश में रहते हुए भी मन को कभी इधर–उधर भटकने नहीं दिया। उन्हीं हम पवित्र जीवन वालों को इस तरह दुःख भोगने के लिये मजबूर होना पड़ रहा है।'' इतना कह कर श्रीकान्त चुप हो गया।

जब मां को पूरी कहानी समझ में आयी तो उसे यह भी समझ में आ गया कि उसकी गुणशीला बहू पर उसी के हाथों भयंकर अत्याचार हो गया और इस कारण वह अपने भाग्यशाली पोते के लाड़लड़ाने से भी वंचित रह गयी। सोचते–सोचते वह भारी पश्चात्ताप करने लगी जो इतना गहरा होता गया कि उसे मूर्च्छा आ गयी।

X X X

एक कहावत है–

पाप छिपाया न छिपे, छिपे तो मोटा भाग।

दाबी दूबी ना रहे, रूई लपेटी आग।।

प्रकृति का नियम है कि आखिर जाकर एक दिन तो पाप का भांडा फूटता ही है। पद्मा का पाप भी आज फूट रहा था। मां की मूर्च्छा ज्यों ही खत्म हुई, मां ने पद्मा को आवाज लगायी। अब तक वह भाईसा द्वारा भाभी के बारे में पूछने के बाद से उनसे टली–टली फिर रही थी, किन्तु अब मां द्वारा बुलाने पर उनके सामने आना ही पड़ा। तब कड़क कर मां ने उससे पूछा–'' पद्मा, तुम्हें याद है न कि मंजुला ने श्रीकान्त के एक रात के लिये आने के सबूत में यह अंगूठी दिखाई थी।''– मां ने तब वह अंगूठी पद्मा के सामने रख दी और श्रीकान्त को पूछा– ''क्यों श्रीकान्त, क्या तुमने यह अंगूठी जाते समय मेरे से विदा लेकर बाहर पद्मा को तो नहीं दे दी थी ?'

श्रीकान्त बोले उससे पहले ही पश्चात्ताप से संतप्त बनी पद्मा ने रोते–रोते कहा–''भाईसा, मैं पापिनी हूं। मैंने ही ईर्ष्या की आग में जल कर भाभी को सताना चाहा और उस आवेग में मेरी दुष्टता इतनी बढ़ गयी कि भाभी को मैंने इस घर की देहरी से बाहर निकलवा कर ही दम लिया। मुझे आप जो दण्ड दें मैं लेने के लिये तैयार हूं। मैंने ही नीचता करके साफ झूठ बोल दिया था कि आप यह अंगूठी बाहर निकलते हुए मुझे देकर गये थे और उस अंगूठी को भाभी ने चुरायी है। भाईसा, भाभी परम सद्गुणी थी और इसीलिए मां उससे मेरे से भी अधिक स्नेह करने लगी थी– बस यह मुझसे सहा नहीं गया। इसमें मां का कोई दोष नहीं है, सारी नालायकी मेरी ही है।'

मां भी यह सुनकर अत्यधिक विलाप करने लगी और कहने लगी–''पद्मा ने गलत कहा और मैंने उसके कहने पर तो विश्वास कर लिया लेकिन मंजुला के कहने को मैंने सुना तक नहीं तो इसमें मुझसे भी भारी भूल हुई है। अगर मैं ऐसी भूल नहीं करती तो इस तरह मेरा सोने जैसा परिवार उजड़ता नहीं। आज मुझे अपने जीवन पर भयंकर ग्लानि हो रही है। मैं तुझसे माफी मांगती हूं मेरे बेटे, लेकिन मैं तुम्हें किसी तरह से सांत्वना देने की स्थिति में नहीं हूं।''

उस समय परिवार में कुल तीन सदस्य थे श्रीकान्त, उसकी मां और उसकी बहिन। और तीनों अतीव दुखभरी मनःस्थिति में पहुंच गये थे। श्रीकान्त की आंखों के सामने अन्धेरा छा रहा था कि वह अपनी पत्नी और अपने पुत्र को कहां खोजेगा, वे उसे मिलेंगे या नहीं और मिलेंगे तो न जाने

किस हालत में ? उसके दिल में रह–रह कर टीस उठ रही थी और आंसुओं की धारा बहती जा रही थी।

श्रीकान्त की मां एक सरल महिला थी किन्तु अपनी दुर्गुणी बेटी की बातों में वह आ गई और अपनी सद्‌गुणी बहू को घर से निकाल बैठी अब वह अपने ही बेटे को क्या जवाब दे ? श्रीकान्त तो उस समय विवाह करने के लिए राजी भी नहीं था, मैंने ही जबरदस्ती की और मैं ही इसके साथ अन्याय कर बैठी और मैंने ही उसके जीवन को उजाड़ दिया। वह अपनी आंखों से अविरल अश्रुधारा बहा रही थी किन्तु फिर भी उसके मन में रंच मात्र भी शान्ति का प्रवेश नहीं हो पा रहा था।

और वह दुर्गुणी पद्‌मा आज सारे दुर्गुणों को भूलकर भयंकर पश्चात्ताप की अग्नि में जल रही थी। वही साफ–साफ जान रही थी कि सारी दुर्घटना की एकमात्र जिम्मेदार वही है। वह लगातार रो रही थी किन्तु साथ ही उसका सारा शरीर भी थर–थर कांप रहा था– शायद वह डर रही थी कि उसके भाईसा उसे कितना दण्ड देने का निश्चय करें।

लेकिन श्रीकान्त तो एक पुरुषरत्न था। उसके पास अटूट साहस ही नहीं, अमित सहनशक्ति भी थी। जो हो चुका था उसे अनहुआ नहीं बनाया जा सकता था। अब तो यही शेष था कि वह प्राणों की बाजी लगा कर भी मंजुला और उसके लाल की खोज करे। उसने मां और बहिन से मीठे शब्दों के साथ ही अपने निश्चय को सुनाया–

''मां, आपका भी कोई दोष नहीं है और बहिन का भी कोई दोष नहीं है। यह तो मेरे तथा मंजुला के निकाचित कर्मों का उदय हुआ और उसके कारण आपके हाथों यह सारा बनाव बना। मुझे आप दोनों पर किसी तरह का कोई रोष नहीं है। किन्तु अब मैं मंजुला के प्रति अपने कर्त्तव्य को अवश्य पूरा करूंगा। मैं उन दोनों की खोज करने के लिए अभी निकल रहा हूं अगर सही सलामत मिल गये तो हम सब शीघ्र ही आपकी सेवा में आ जायेंगे।'' यह कह कर श्रीकान्त तुरन्त उठ खड़ा हुआ और धीरे–धीरे हवेली से बाहर निकल गया किन्तु दोनों में से कोई भी उसे रोक नहीं सकी।

इतनी अन्यायपूर्ण एवं कष्टपूर्ण घटना के गुजर जाने पर भी श्रीकान्त ने आपा नहीं खोया। विवेकशील व्यक्ति यही सोचते हैं कि ढुले हुए दूध के लिए रोना–धोना ता ताड़ना–फटकारना व्यर्थ होता है। वे तब भविष्य की बात सोचते हैं कि नया दूध कहां से और कितनी जल्दी लाकर क्षतिपूर्ति की जा

सकती है ? इस विवेक का सीधा सा असर उस पर होता है जिसके हाथों दूध ढुल गया था। ऐसे सद्व्यवहार से दूध ढोलने वाले मन का डर तो मिटता ही है, लेकिन उसे अपनी भूल या गलती पर पूरा प्रायश्चित भी होता है, बल्कि अगर किसी ने जानबूझ कर दूध ढोला हो तो उसका मन ऐसे व्यवहार से भीतर ही भीतर तड़प उठता है और वह अपने कुकृत्य को धो डालना चाहता है। व्यवहार–व्यवहार में कितना अन्तर हो जाता है कि सद्व्यवहार से दोषी का मन निष्कलुष हो जाता है सो तो ठीक लेकिन वह स्वयं भी सद्व्यवहारी हो जाता है। इसी के स्थान पर यदि दूध ढोलने वाले के साथ फटकार–दुत्कार का दुर्व्यवहार किया जाय तो विपरीत असर दिखाई देता है। दूध ढोलने वाला अपनी गलती मानने के लिए कभी तैयार नहीं होता, बल्कि फटकारने वाले को शत्रु मानकर उससे बदला लेने की तरकीबें सोचता है। अतः सद्व्यवहार से सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार से दुर्व्यवहार पनपता है, बढ़ता है।

श्रीकान्त ने आपा नहीं खोया और मां बहिन की गलती भी नहीं निकाली–यह उसका सद्व्यवहार था जिसका जादू भरा असर उसकी मां और बहिन के मन पर पड़ा। मां का दोष उतना नहीं था जितना पद्मा का था और उस कारण पद्मा के पश्चात्ताप की सीमा नहीं थी। हवेली से निकलते हुए वे दोनों श्रीकान्त को रोक नहीं सकीं, किन्तु प्रायश्चित के अपने ज्वार को भी वे रोक नहीं पा रही थीं।

❑❑❑

# ११

# धैर्य और विवेक की कड़ी परीक्षा

महाराजा जयशेखर मन में प्रसन्न हो रहा था कि अब तो कुछ देर से सही लेकिन उसका मनोरथ पूर्ण हो जायगा तथा मंजुला उसकी हृदयेश्वरी बन जायेगी।

मंजुला ने पहले बाहर से अपने अनुकूल रुख का स्वांग रचते हुए यह मांग की थी कि वह अपनी भावनाओं को महाराजा के लिये केन्द्रित करने हेतु एक अनुष्ठान करना चाहती है और जयशेखर ने प्रसन्न होकर उसे उस अनुष्ठान के लिये अनुमति दे दी थी। तब से मंजुला तपाराधन में लगी हुई थी। उसका मूल उद्देश्य यह था कि किसी भी तरह जयशेखर को बहलाते रखकर समय गुजारा जाय ताकि कहीं किसी की सहायता की स्थिति पैदा हो जाय अथवा कहीं राजा को ही सद्‌बुद्धि आ जाय। उसके साथ ही वह स्वयं पर पूरा नियंत्रण रख सके इसके लिये वह कठिन तप भी कर रही थी।

मंजुला उस कठिन परिस्थिति को अपने धैर्य तथा विवेक की कड़ी परीक्षा मान रही थी क्योंकि वह अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए उस आग में से बेदाग निकल जाना चाहती थी। वह जानती थी कि राजा शक्ति सम्पन्न है अतः यदि वह विवेक से नहीं चलेगी तो राजा को जबरदस्ती करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी, इसलिए इस विवेक के साथ में उसे पूरा धीरज भी रखना होगा, कारण इस बन्धन से छुटकारा पाने में न जाने कितना समय लग जाय।

एक प्रकार से जयशेखर और मंजुला के बीच में मानसिक युद्ध चल रहा था। जहां जयशेखर कामभोग की लालसाओं में अन्धा बनकर किसी भी तरह मंजुला को जल्दी से जल्दी अपनी बना लेने के लिये आतुर था तो वहां मंजुला स्वस्थचित्त तथा गम्भीर विवेक के साथ कठिनाई को टालने के लिये भीतर ही भीतर ऐसी योजना बना रही थी कि जिसके आधार पर वह राजा की अन्धता का लाभ उठा सके।

तपस्या ऐसा साधन होती है जिसकी आराधना से अपने मन के भीतरी विकार तो समाप्त होते ही हैं किन्तु उसके साथ ही अपनी आत्मा में एक

प्रकार का ऐसा तेज भी प्रकट होता है जो सामने वाले को बरबस ही प्रभावित कर देता है एक तपस्वी के सामने कोई कितनी ही बुरी इच्छाएं लेकर के आता है तब भी उसमें ऐसा संकोच पैदा हो जाता है कि वह अपनी मनमानी कर नहीं पाता है। मंजुला ने तथाकथित अनुष्ठान के बहाने जो कठिन तपस्या की थी उसके परिणाम स्वरूप वह भीतर बाहर से विशेष रूप से साहसी और तेजस्वी बन गई थी। उसका यह संकल्प अतीव सुदृढ़ हो गया था कि वह वर्तमान संकट से सफलतापूर्वक जुझ सकेगी।

X X X

''सौभाग्यशालिनी, तुमने यह कैसा अनुष्ठान किया है कि शरीर सूख कर कांटे जैसा हो गया है। मुझे इंतजार करते–करते भी बहुत समय गुजर गया है अब तो तुम अपना अनुष्ठान पूरा करके मेरे रनिवास की शोभा बढ़ाओ। तुम्हारे आने से पहले मेरे रनिवास में सितारे ही सितारे टिमटिमा रहे थे किन्तु मेरा मन फूला नहीं समा रहा है कि तुम्हारे प्रवेश से अब वहां पूर्ण चन्द्र का उदय हो जायेगा।' जयशेखर अपने मन के विकारी भावों को यों प्रकट करते हुए बहुत खुश हो रहा था जैसे कि अब उसके मन की मुराद पूरी होने में कोई देर नहीं थी।

सामान्य स्थिति होती तो मंजुला ने उसका कड़ा प्रतिरोध किया होता किन्तु वह परिस्थिति के अनुसार अपनी सोची हुई योजना पर ही चलना चाहती थी इसलिए उसने शांत भाव से कहा–राजन्, अनुष्ठान करना कोई आसान काम थोड़े ही है और इसमें समय तो लगता ही है ! आप जानते ही होंगे कि राजनीति में अपने शत्रुओं एवं स्वयं अपनी जनता पर भी नियंत्रण करना कितना कठिन होता है, फिर मैं तो अपने ही मन के विचारों से लड़ रही हूं कि वे अनुकूलता का रुख पकड़ सकें। राजन् मन पर शासन करना बहुत कठिन होता है और मैं इस कठिन काम में लगी हुई हूं। क्या आप शीघ्रता दिखाकर मेरी साधना में विघ्न डालना चाहते हैं ?

राजा जयशेखर उतावलेपन से बीच में ही बोल पड़ा ''नहीं–नहीं, मैं विघ्न कतई नहीं डालना चाहता हूं। तुम मेरे लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना चाहती हो और मैं तुम्हारी छोटी सी बात भी नहीं मानूं– यह कभी हो सकता है क्या ? मैं तो यही कहना चाहता हूं कि तुम व्यर्थ में हठ न करो और योगिनी की तरह अपने इस सुन्दर और सुकोमल शरीर को नष्ट न करो।

''आपने हठ की बात कही सो यद्यपि नारी हठी होती है फिर भी मैं व्यर्थ हठ नहीं कर रही हूं लेकिन आप भी राजहठ में न पड़ें और मेरे साथ उदारता का व्यवहार दिखाते हुए मेरी साधना के सम्पन्न होने में पूरा सहयोग दें।' मंजुला ने अपने शब्द इस तरह तौल–तौल कर कहे कि जिनका राजा के मन पर वांछित प्रभाव पड़ सके।

जयशेखर ने जब मंजुला का उत्तर सुना तो उसका मन कुछ ढीला पड़ा। उसने सोचा कि जब मंजुला उसकी ही तरफ आगे बढ़ रही है तो उसमें जल्दबाजी करने में कोई फायदा नहीं है, बल्कि ऐसा करने से उसका काम बिगड़ सकता है फिर भी बाहर से उसने कुछ कठोरता लाकर कहा–''हम दोनों ही अपना–अपना हठ न करें यह तो ठीक है लेकिन तुम इतने लम्बे अनुष्ठान से अपने इस शरीर को नष्ट करती रहो यह मैं नहीं देख सकूंगा।' तब मंजुला ने और नरम पड़कर कहा–''राजन, जब मैं सही दिशा में ही आगे चल रही हूं तो आप भी जोश के साथ होश रखें। आप उतावल करेंगे तो मेरी साधना में बाधा पड़ेगी जिसके कारण आपका और मेरा दोनों का हित नहीं सधेगा। आप जानते हैं कि मैं आपके राजभवन से कहीं बाहर जाने में समर्थ नहीं हूं फिर भी आप इतने व्यग्र क्यों हो रहे हैं ?''

भीतर से खुश होते हुए भी राजा जयशेखर ने बाहर से कड़े बनकर मंजुला को चेतावनी दी–''देखो सुन्दरी, कि तुम राजभवन में ही हो फिर भी अभी तक मेरे वश में नहीं हो रही हो यह उचित नहीं है। अपने मन में गांठ बांध लो कि तुम्हें मेरी पटरानी बनना होगा और मेरे मन को आनन्दित करना होगा। अब साफ–साफ कहे देता हूं कि तुम सात दिन के भीतर अपने अनुष्ठान को पूरा कर लो, अपने मन को बना लो और मेरे मन पर शासन करना शुरू कर दो। विश्वास रखो, मैं तुम्हारी अपने प्राणों से भी ज्यादा परवाह करूंगा। समझ लेना यह अवधि अन्तिम अवधि है और इसके बाद मैं अधिक प्रतीक्षा नहीं करूंगा।'' इतना कह कर बाहर से क्रोध जताता हुआ राजा जयशेखर मंजुला के सामने से चला गया।

X X X

जयशेखर तो चला गया किन्तु मंजुला का मानसिक संघर्ष और अधिक तेज हो गया। मंजुला ने यह नहीं सोचा था कि उसे कोई अवधि बतायी जायेगी और वह भी मात्र सात दिन की अवधि। अब तो इसी अवधि में कुछ ऐसा अवसर पैदा होना चाहिये कि उसके शील की सुरक्षा हो सके।

आन्तरिक वृत्तियों के इस संघर्ष में दोनों अपनी–अपनी चालें चल रहे थे। जयशेखर चाह रहा था कि मंजुला मेरे मन की लालसाओं की पूर्ति करे और मेरे जीवन में भोग का आनन्द बिखेर दे। जबकि मंजुला सोच रही थी कि मैंने जगत साक्षी से जिस पुरुष के साथ विवाह किया है वही एकमात्र पुरुष मेरा पति है और बाकी सब मेरे पिता एवं भाई के तुल्य हैं। मैं पिता और भाई के तुल्य पुरुषों की सेवा कर सकती हूं और धर्म रीति से उनकी कृपा प्राप्त कर सकती हूं किन्तु जहां तक शारीरिक सुखोपभोग की बात है मैं इस बारे में पति के सिवाय किसी अन्य की कल्पना तक नहीं कर सकती और इसीलिए इस कठिनाई में मुझे अपने शील को सम्भालना है।

मंजुला ने कल्पना की कि मैं उस पानी के बहाव की तरह बनना चाहती हूं जो भयंकर चट्टानों के आड़े आ जाने पर भी बीच में से कहीं न कहीं अपना स्रोत निकाल लेता है। यह जयशेखर मुझे प्रलोभन दे रहा है, साम–नीति से समझा रहा है, दाम–दृष्टि से मुझे अपनी सारी समृद्धि लुटाने के लिये तैयार है, मेरे साथ भेद व्यवहार भी कर रहा है तो अब यह दण्ड–नीति पर भी उतर आया है जिसका संकेत वह अभी–अभी कर गया है। चिंतन करने लगी कि कामवासना में अन्धा बना हुआ शक्तिशाली पुरुष सात दिन बाद न जाने कैसा दुर्व्यवहार करे और न जाने कैसी क्रूरता का परिचय दे ?

मंजुला की चिंतनधारा बदली– उसके मन में जो आशंका के भाव पैदा हुए थे उन्हें उसने निकाल फैंका। मन में एक नई दृढ़ता जागी और उसने विचार किया कि मैं अपने मन की स्वामिनी हूं और जब मेरा मन अपने वश में होगा तो संसार की कोई भी शक्ति न मेरे मन को मोड़ सकती है और न मेरे शरीर को छू सकती है। मेरा यह संकल्प दृढ़ है। मैं अपने में अखण्डित हूं और कोई भी मेरी आत्मशक्ति को खण्ड–खण्ड करने में समर्थ नहीं है। जो नारी खण्ड–खण्ड में बंट सकती है, वही अपनी आत्मा और अपने मन से दुर्बल हो जाती है और उस दुर्बलता में वह अपना सर्वस्व भी खो सकती है। किन्तु मैं तो अपने आराध्यदेव में एकनिष्ठ हूं, अखण्ड मन से लगी हुई हूं तो फिर भला मेरे मन को कौन तोड़ सकता है। बस मुझे अपने साध्य के प्रति सतत रूप से सजग रहना है।

वैसे भी मंजुला अपने विवेक तथा धैर्य की कड़ी परीक्षा की मनः स्थिति में चल रही थी, पर परीक्षा की तिथि इतनी नजदीक आ जायेगी यह उसने सोचा नहीं था। किन्तु उसने अपनी संकल्पशक्ति के बल पर अपने मन को

आने वाली उस भीषण कठिनाई के लिये तैयार कर लिया। वास्तव में कठिन से कठिन संकट से भी संघर्ष किया जा सकता है, बस शर्त यही है कि विवेक और धैर्य कभी भी नहीं खोवें, बल्कि ज्यों–ज्यों संकट जटिल होता जाय, विवेक और धैर्य भी पैना होता जाना चाहिये।

मंजुला वहां से उठी, एकान्त स्थान में आसन लगाया और महामंत्र का अविचल जाप करने लगी। तपस्या की आराधना के साथ वह ध्यान योग में निमग्न हो गयी ताकि वह आत्मबल से आने वाले संकट के साथ सफल संघर्ष कर सके।

❑❑❑

# १२
# पत्नी और पुत्र की खोज में

मन में चाहे कितनी ही पीड़ा हो किन्तु पुरुषार्थ में शिथिलता नहीं आवे– तभी वैसा व्यक्ति, सच्चा पुरुषार्थी कहलाता है। श्रीकान्त ऐसा ही निजी–पुरुषार्थी था जो मन में अथाह पीड़ा लिये हुए भी अपनी प्रिय पत्नी मंजुला एवं अनदेखे पुत्र को खोजने के लिये तेजी से अरण्य की ओर चल पड़ा। घर, नगर पीछे रह गया और वह चलता ही रहा। आशा का दीप संजोए वह निश्चल गति से चलता रहा।

श्रीकान्त ने जंगल छाने, गांवों नगरों में खोज की तो पहाड़ और कन्दराएं तलाशी, लेकिन कहीं भी उसकी मंजुला या उसके लाल का कोई सूत्र नहीं मिला। एक स्थान पर पूछताछ करने पर भी उनका कोई पता नहीं लगता तो वह बिना किसी तरह की हताशा लाये अगले स्थान के लिये चल पड़ता। उसका मजबूत इरादा था कि वह उन दोनों को ढूंढकर ही चैन लेगा। उन दोनों के साथ उसके ध्यान–बेध्यान से जो अन्याय हुआ है, उसे उन्हें खोजकर ही मेटा जा सकता है और तभी वह अपनी भूल का प्रायश्चित कर सकता है। यह सोच कर उसका उत्साह कभी ठंडा नहीं पड़ता और उम्मीद के आसरे वह दर–दर भटकता रहा। किन्तु उसे सफलता की झलक तक कहीं नहीं दिखाई दे रही है।

एक दिन एक जंगल में चलते–चलते जब वह बहुत थक गया तो थोड़ा विश्राम कर लेने की इच्छा से एक वृक्ष के नीचे लेट गया। फिर भी उसके मन को विश्राम कहां था ? पैर रुक गये तो मन तेजी से चलने लगा। श्रीकान्त सोचने लगा–मैंने मंजुला की इतनी गहराई से खोज करली कि आसपास का कोई क्षेत्र मैंने नहीं छोड़ा तब भी कोई संकेत नहीं मिला है तो इसका यही अर्थ हो सकता है कि या तो निष्कासन के कष्टों ने मेरी मंजुला को तोड़ डाला हो और वह इस में संसार नहीं रहा हो अथवा समीप के क्षेत्रों को छोड़कर दूर चली गई हो। यदि ऐसा हो तो अब मुझे दूरस्थ क्षेत्रों की ओर चलना चाहिये। सोचते–सोचते थोड़ा सा उसे निराशा का झटका लगा–

आखिर मंजुला को अबला ही तो मानेंगे और एक अबला एकाकी कितना कष्ट भुगत सकती है जबकि उसे केवल अपना ही निर्वाह और संरक्षण नहीं, बल्कि अपने लाल का भी निर्वाह और संरक्षण करना हो ? तो क्या अब मेरी मंजुला मुझे नहीं मिलेगी ? क्या मैं उसे कभी नहीं देख पाऊंगा ? और क्या मेरा लाल अपने अभागे पिता की छाती से कभी नहीं लग पाएगा ?.....

अब उसका मन भी थकने लगा क्लान्त, विक्लान्त हो उठा। थके हारे शरीर और मन को नींद ने अपनी गोदी में भर लिया।

X X X

श्रीकान्त कल्पना लोक से स्वप्नलोक में विचरण करने लगा। उसे लगा कि वह एक बियावान जंगल में से होकर जा रहा है। रास्ता नुकीले पत्थरों और कंटीली झाड़ियों से भरा पड़ा है। उसके पैर लहुलूहान हुए जा रहे हैं, मगर चलते रहने से उसके उत्साह में कोई कमी नहीं है। जंगली जानवरों के चिंघाड़ने–दहाड़ने की आवाजें भी उसे डरा नहीं पा रही हैं। वह चलता जा रहा है और इसलिये चलता जा रहा है कि उसे दूर बहुत दूर मंजुला का हंसता हुआ चेहरा दिखाई दे रहा है।

तभी उसे ठोकर लगी और उसका सिर एक चट्टान से जा टकराया। आंखों के आगे अंधेरा छा गया और साथ ही मंजुला का हंसता हुआ चेहरा दिखाई देना बन्द हो गया। फिर तो उसका मन घबराने लगा। वह निराशा सा अपना चोट खाया हुआ सिर अपने दोनों हाथों में थामकर वहीं पर बैठ गया। वह पीड़ा से कराह उठा और उसका चित्त संज्ञा शून्य होने लगा।

अचानक एक तेज रोशनी चमकी, मगर उसे दिखाई कुछ नहीं दिया– सिर्फ उसके कानों में आवाज उभरी–

''अरे श्रीकान्त तुम निराश होकर थक हार गये हो। क्या तुम्हारे जैसे पुरुषार्थी के लिये यह शोभनीय है ?''

''आप–आप कौन हैं जो मुझे बुला रहे हैं ? आप सच कह रहे हैं कि मैं मंजुला की खोज करते–करते थक गया हूं–हार गया हूं और लगता है कि मेरी आशा का दीप भी बुझने को है। लेकिन अब मैं क्या करूं–कहां जाऊं ? आप ही मुझे बताइये, मुझे सुझाइये, मेरे सामने आइये और मुझे उत्साहित कीजिये.....''श्रीकान्त गूंजती हुई आवाज में बोला कि उसका सहायक जिस किसी दिशा में छिपा हो, उसे सुन ले।

फिर भी सामने कोई नहीं आया, लेकिन वही आवाज फिर सुनाई दी–''श्रीकान्त, जो कांटों के जंगल में चलता हुआ घबराता नहीं और उसे पार लेता है, वही फूलों के बाग में पहुंचता है। एक पुरुषार्थी अपने पैरों के खून को नहीं देखता, अपने मन की लौ को देखता है कि वह निरन्तर प्रकाशित होती रहे। तुम भी अपने मन की लौ को देखो, जो जलती रहे, अपने सिर और पैरों के खून से घबराओ मत। चलते रहो, सतत चलते रहो.....।''

''आप मेरे मन को गलत समझ रहे हैं और मेरे पुरुषार्थ को गलत आंक रहे हैं। ये दोनों कभी थकने वाले नहीं है थकान है तो प्रेरणा के अभाव की–हंसते हुए चेहरे के यकायक छुप जाने की। पुरुषार्थ को प्रेरणा की अपेक्षा होती है। मुझे मेरी प्रेरणा लौटा दीजिये, मैं फिर से चल पड़ंगा। मेरी गति और शक्ति कभी नहीं थकेगी.....''

तेज रोशनी फिर चमकी, उस रोशनी में उसे फिर से मंजुला का वहीं हंसता हुआ चेहरा दिखाई देने लगा। प्रेरणा को पाते ही पुरुषार्थ उठ खड़ा हुआ। श्रीकान्त भूल गया कि उसके पैर लहूलुहान हैं या कि उसका सिर चोट खाया हुआ। वह तो उन्हीं कांटों–भाटों पर उससे भी दुगुने उत्साह से चल पड़ा। उस हंसते हुए चेहरे को देखते–देखते वह लगातार चलता रहा। उसे पता ही नहीं चला कि कब वह बियावान जंगल बीत गया और कब वह फूलों की महकती घाटी में उतर आया। चारों ओर सुबह की लाली फूट रही थी और ठंडी बयार चल रही थी।

खिले हुए महकते फूलों की एक झाड़ी के पास श्रीकान्त ठगा सा खड़ा रहा। उसका शरीर तन्दुरुस्थ था और मन स्वस्थ। निराशा का अंधेरा उसको क्या–आसपास के सारे वातावरण को भी कहीं छू नहीं रहा था। उत्साह जैसे उसकी नस–नस में और धरती के कण–कण में फैल रहा था। तभी उसे लगा कि मंजुला का वह हंसता हुआ चेहरा बड़ा होता गया, उसके नजदीक आता गया और धीरे–धीरे उसी में समा गया। प्रेरणा पुरुषार्थ में मिलकर एकीभूत हो गई बल्कि अपने प्रेम को प्राप्त कर गई।

X X X

धनसुख सार्थवाह ने श्रीकान्त की भागीदारी के समय अच्छा धन कमाया था, किन्तु जब उसके लोभ ने सीमाएं तोड़ दी और वह माल इधर–उधर लाने ले जाने व खरीदने बेचने से होने वाले लाभ की अपेक्षा चोर पल्लियों के सरदारों से अनैतिक समझौते करने लगा तो श्रीकान्त ने उसे छोड़

दिया था क्योंकि उसे कैसे भी पाया हुआ धन नहीं, नीति से कमाया हुआ धन चाहिये था। श्रीकान्त के छोड़ देने के बाद कुछ समय तो धनसुख अपने अनैतिक समझौतों के बल पर खूब धन कमाने लगा लेकिन अनीति की उम्र लम्बी नहीं होती है। अनीति के कारण उसकी प्रतिष्ठा डूबती गई और वह चारों ओर के झगड़ों में इस तरह फंस गया कि उसे उन चोर पल्लियों का सारा मार्ग ही छोड़ देना पड़ा।

उस दिन वह एक नये ही मार्ग से अपना काफिला ला रहा था। सुरक्षा की दृष्टि से काफिले के आगे–आगे एक घुड़सवार चला करता था जो चारों ओर सतर्कतापूर्वक देखते हुए काफिले को आगे बढ़ते रहने का संकेत देता था। बाद में माल भरे वाहन के आगे–पीछे रक्षक हुआ करते, जिनके साथ सार्थवाह रहता है और पीछे अनुचर चलते। उसक काफिले के घुड़सवार की नजर दूर से एक वृक्ष के नीचे सोये हुए पुरुष पर पड़ी। उसने काफिले को रुकने का संकेत दिया और वह अपने घोड़े को बढ़ाकर उस वृक्ष तक ले गया। उसने देखा– एक पुरुष बेखबर नींद में सोया हुआ है जिसका शरीर सूखा हुआ है तो चेहरा बढ़ी हुई दाढ़ी मूंछों से भयावना सा दिखाई दे रहा है। उसने सोचा कि वह साधारण व्यक्ति भी हो सकता है यद्यपि लुटेरा भी हो सकता है यद्यपि लुटेरा होने की आशंका कम ही थी। फिर भी सारा विवरण सार्थवाह को बताकर ही आगे बढ़ना चाहिये– इस विचार से वह अपने घोड़े को दोड़ता हुआ सार्थवाह के पास पहुंचा और बोला–

''स्वामी, उस वृक्ष के नीचे एक पुरुष सोया हुआ है जिसका शरीर दुबला और दाढ़ी मूंछे बढ़ी हुई है। होना तो साधारण व्यक्ति ही चाहिये, फिर भी सतर्क होना जरूरी है। आप भी पधारिये और उसे देख लें ताकि उसे जगाकर मिलें तथा परिस्थिति के अनुसार कार्य करलें।'

धनसुख सार्थवाह भी उसके साथ हो लिया और वे दोनों उस वृक्ष के पास पहुंच गये। वह पुरुष तब भी सोया हुआ था। धनसुख ने उसे देखा तो ऐसा लगा कि वह तो उसका पूर्व परिचित है किन्तु शरीर और चेहरे की हालत से वह उसे तुरन्त पहिचान नहीं पाया। इतना उसे महसूस हो गया कि डर जैसी कोई बात नहीं इस कारण धनसुख ने मीठे शब्दों में उसे जगाया–

''भाई, उठो, यहां जंगल में अकेले कैसे सोये हुए हो ?''

दो तीन बार पुकारने पर श्रीकान्त चौंककर उठा खड़ा हुआ। उसकी नजर ज्योंही धनसुख के चेहरे पर पड़ी, वह चीख पड़ा–

''अरे धनसुख भाई साहब, आप यहां कहां मिल गये ? क्या अपना काफिला लेकर इधर से निकल रहे हैं ?''

अब धनसुख के चौंकने की बारी थी। उसकी भी याद लौट आई और वह दौड़कर श्रीकान्त के गले लग गया। वह इतना ही बोल सका–''श्रीकान्त तुम हो, यह तुमने अपनी क्या हालत बना रखी है ?'' और हर्षावेग में रो पड़ा।

फिर तो काफिले को वहीं पड़ाव डालने के निर्देश दे दिये और दो पुराने मित्रों के मिलन की खुशी सारे वातावरण में फैल गई। भोजन आदि से निवृत्त होकर दोनों मित्र जमकर बैठ गये यह जानने के लिये कि इतने अर्से में किस पर क्या बीती है ?

धनसुख ने ही पहले बात शुरू की–

''श्रीकान्त, नीति की बात पर जब तुम मुझे छोड़कर चले गये तब मुझे सद्‌बुद्धि आ जानी चाहिये थी किन्तु मैं तो धन के लालच में था अतः जब धीरे–धीरे सभी चोर सरदारों से झगड़े होने लगे तो मेरा व्यापार ही चौपट हो गया क्योंकि तब मैं डर के मारे उन क्षेत्रों में नहीं जा सकता था। इस तरह अनीति ने मुझे कहीं का नहीं रखा। आज भी यह नया मार्ग है जिस पर मैं अपना काफिला ले जा रहा हूं। यहां अकस्मात तुमसे भेंट होगी, ऐसी मैंने कल्पना तक नहीं की थी।'

''संयोग–दुर्योग इसी तरह आते हैं भाई साहब''–श्रीकान्त ने पीड़ा भरा उत्तर दिया जिसे सुनकर धनसुख हिल उठा, उसने पूछा– ''भाई श्रीकान्त, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हो गई ? क्या व्यापार में भयंकर घाटा हुआ अथवा किसी बड़ी आपत्ति के चक्कर में आ गये हो ?''

''हां भाई साहब, कुछ ऐसा ही गुजर गया है, जिसके कारण मुझे जंगल–जंगल और ग्राम–नगरों में भटकना पड़ रहा है– इतना कहकर श्रीकान्त कुछ क्षण रुका, यह सोचते हुए कि दूसरों के सामने अपनी जांघ उघाड़ना अच्छा नहीं कहलाता और बात को बदलकर कहने लगा–''मनुष्य का भाग्य बड़ा विचित्र है, उसके जीवन में कब क्या घटित हो जाता है, कई बार उसका तनिक भी पूर्वानुमान नहीं लगता।'

तुम ठीक कहते हो श्रीकान्त, मेरे खुद के जीवन में ऐसी–ऐसी घटनाएं घटी हैं, जिनकी मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था। कोई बात नहीं, कोई ऐसी दुर्घटना तुम्हारे जीवन में घटी है जिसे तुम मुझे नहीं बतलाना चाहते

किन्तु एक मित्र के नाते मेरा आग्रह है कि तुम अभी तो मेरे साथ हो जाओ, तन–मन से जरा स्वस्थ हो लो, फिर जब जी चाहे अपने गन्तव्य की ओर चले जाना।' धनसुख ने उचित नहीं समझा कि जिद करके श्रीकान्त से ऐसी दुःख भरी दुर्घटना के बारे में पूछे जिसे वह किसी भी कारण से उस पर प्रकट करने में संकोच कर रहा है।

श्रीकान्त का दिल भर आया, उसने धनसुख के प्रस्ताव का बहुत प्रेम से उत्तर दिया–

''भाई साहब, मैं आपके प्रेम भरे आग्रह को टालने की मनोदशा में नहीं हूं और आपके काफिले के साथ चलने से मेरी यात्रा भी ठीक रहेगी अतः मैं आपकी सेवा में अवश्य चलूंगा।''

''श्रीकान्त, मुझे बहुत खुशी हुई है कि तुम्हारे जैसे नीतिवान एवं पुरुषार्थी पुरुष का सम्पर्क मुझे फिर से मिलेगा– शायद है मुझे अपने पुराने लोभ का प्रायश्चित्त करने का कोई अवसर मिल जाय।''

श्रीकान्त ने विचार किया कि धनसुख कितना बदल गया है ? लोभ के वशीभूत होकर वह क्रूर हो गया था किन्तु अब उसकी स्नेहभरी सहानुभूति कितनी सुखद लग रही है? उसने यह भी विचार किया कि काफिले के साथ रहते हुए किसी सुज्ञ पुरुष से मंजुला का सुराग भी मिल सकता है। वैसे भी उसे खोज तो करनी ही है फिर उसे काफिले के साथ रहकर सुरक्षित रूप से ही क्यों न की जाय ? उसने धनसुख के दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर आदरपूर्वक कहा– ''भाई साहब, ऐसी क्या बात करते हैं ? मैं तो आपका बहुत आभारी हूं। जितने समय तक भी मैं आपका स्नेह पा सकूंगा, मैं प्रसन्न ही रहूंगा।

तब श्रीकान्त धनसुख के काफिले के साथ हो गया।

''वे योजनाएं क्या होगी, सरदार ?''

''हमें फिर दूर–दूर शहरी बस्तियों पर डाके डालने होंगे और वह बड़ा ही जोखिम भरा काम होगा ?''

''नहीं सरदार, हमें ऐसा नहीं करना पड़ेगा। अब कोई न कोई शिकार हमें मिल जायगा।'

इतने में एक चोर दौड़ता–दौड़ता पहुंचा और सरदार के सामने सिर झुकाकर बोलने लगा–''खुशी की खबर है सरदार, यहां से तीन–चार कोस

की दूरी पर एक बड़े सार्थवाह का काफिला इधर ही आगे बढ़ता हुआ आ रहा है। उसमें माल के वाहन भी काफी संख्या में हैं और रक्षक अनुचर भी काफी हैं। मैं जल्दी भागकर इसलिये आया हूं कि हम अच्छे शस्त्रों से लैस होकर ज्यादा से ज्यादा संख्या में कुछ आगे पहुंच उस काफिले को इस चतुराई से घेरें कि वे हमारे घेरे में बन्द होकर हमारा मुकाबला नहीं कर सके। चूंकि काफिले के पास रक्षक अनुचर काफी हैं और हम चोरों की संख्या उतनी नहीं है इसलिए हमें हमला बहुत सूझबूझ और तरकीब के साथ करना पड़ेगा।''

सभी चोर और चोरों का सरदार खुशी से उछल पड़े। उनकी किस्मत इतनी जल्दी जाग जायगी—यह उन्होंने नहीं सोचा था, इसलिए खुशी भी उन्हें बहुत ज्यादा हुई। चोरों के सरदार ने सबको तुरंत आदेश दिया—''तुम्हारे में से कुछ लोग रास्ते के दोनों तरफ झाड़ियों में छिप जाओ और ज्यों—ज्यों काफिला आगे बढ़ता जाय पीछे से घेराबन्दी करते जाओ और आगे से मैं खुद नाकेबन्दी करूंगा। फिर मेरा इशारा मिलते ही चारों तरफ से सभी एक साथ काफिले पर टूट पड़ें और सबसे पहले लोगों को बन्दी बनाते जावें। सबसे बड़ी सावधानी इस बात की रखनी है कि हमला करने से पहले काफिले में से किसी को कानोंकान भनक तक न पड़े। जितनी ज्यादा बेखबरी में हमला होगा उतनी ही पक्की हमारी जीत होगी।'

आदेश होते ही सभी योजना के अनुसार सशस्त्र होकर अपने—अपने स्थानों की ओर चल दिये।

❑❑❑

# १३
# आपत्ति अकेली नहीं आती

भयंकर अटवी में एक चोर पल्ली। चोर पल्ली का सरदार अपनी गढ़ी में बैठा हुआ था। चारों ओर खास–खास चोर उसकी सेवा में बैठे थे। तब चोरों के सरदार ने बात शुरू की–''भाइयों, आजकल धंधा बिल्कुल नहीं चल रहा है। या तो हमारा संगठन ठीक से काम नहीं करता अथवा इस मार्ग से काफिलों का आना–जाना नहीं हो रहा लगता है। इस तरह तो हमारा सबका जीना ही कठिन हो जायगा।'' तब अपने खास साथी की तरफ मुंह करके उसने कहा–''तुमने अपने जासूसों को ठीक तरह से काम पर लगा रखा है या नहीं, जो काफिलों के आने जाने की दूर से ही जानकारी ले लें और हमें सूचना करदें ताकि पूरे बल प्रयोग के साथ उनको हम लूट सकें ?''

उस साथी ने अदब के साथ जवाब दिया–'' सरदार साहब, हमारी व्यवस्था में कोई कमी नहीं है और हम सब लोग भी पूरी तरह से सावधान रहते हैं लेकिन हकीकत यह है कि काफिलों का आना–जाना ही बहुत कम हो गया है। अभी कई दिनों से तो कोई काफिला आय गया ही नहीं है।'

चोरों के सरदार के मुंह पर चिंता की रेखाएं खिंच आयी और वह उदास स्वर में बोला–''इस तरह हम कितने दिन और निकाल पायेंगे ? हमारे पास न खेती है और न कोई दूसरा धंधा, मात्र आने–जाने वाले काफिलों को हम लूटते हैं और इस लूट के माल से ही अपना गुजारा चलाते हैं। अगर आसपास के किसी भी काफिले का आना जाना नहीं हो रहा है तो अपनी हद को आगे बढ़ाओ और दूर–दूर तक काफिलों की टोह रखो। ध्यान रखो कि दो–चार दिन में तो हमें कोई न कोई शिकार मिल जाना चाहिये नहीं तो हमें कुछ दूसरी योजनाएं बनानी पड़ेंगी।'

धनसुख सार्थवाह का काफिला सतर्कता व निर्भयता के साथ आगे बढ़ रहा था। धनसुख का हृदय अधिक आनन्दित था कि उसके साथ उसका पुराना मित्र श्रीकांत भी चल रहा था। दोनों के घोड़े पास–पास चल रहे थे और दोनों अपने बीते अतीत की बातें कर रहे थे।

काफिले के लिए रास्ता नया था और वह अटवी भी बड़े–बड़े वृक्षों तथा झाड़–झंखाड़ों से भरी हुई थी। झाड़ियां इतनी घनी थीं कि उसमें छिपा हुआ कोई जानवर या आदमी दिखाई ही नहीं पड़ता था। आगे–आगे चलने वाला घुड़सवार दूर–दूर तक दृष्टि फैलाकर देखता जा रहा था किन्तु आस–पास की झाड़ियों पर उसका खास ध्यान नहीं था चोरों ने जो घेराबन्दी की थी वह इस तरह की थी कि आस–पास की झाड़ियों में उन्होंने अपने आप को पूरी तरह छिपा लिया था और ज्योंही घेरा कस जाय, वे हमला बोल देने के लिए तैयार थे।

अचानक काफिले के आगे–आगे चलने वाला घुड़सवार रुक गया और खतरे का इशारा करते हुए उसने तेज आवाज में पीछे सूचना दी– ''सावधान हो जाओ रक्षको ! सामने चोरों को एक दल आगे बढ़ा आ रहा है उसे तुरंत रोको।''

चोरों का सरदार कुछ साथियों के साथ आगे से आ रहा था। वे लोग तेजी से तीर चलाते जा रहे थे। इसलिए काफिले के सभी रक्षक एक साथ आगे बढ़ आये और अपने शस्त्रों के साथ चोरों के बाण झेलने लगे और उन पर वार करने लगे। बस यही मौका था–चोरों के सरदार ने इशारा किया और बाकी चोरों ने दोनों बाजुओं तथा पीछे से एक साथ हल्ला बोल दिया। रक्षक आगे थे और पीछे लोग निहत्थे रह गये थे इस कारण चोरों ने धड़ाधड़ उनको बन्दी बना लिया और माल के वाहनों पर कब्जा कर लिया। फिर चोरों का पूरा दल एक साथ काफिले के रक्षकों पर टूट पड़ा। रक्षक भी उनका सामना न कर सके और विवश होकर हार गये।

चोरों के सरदार की घेराबन्दी कामयाब रही। उन्हें इतना माल हाथ लगा था कि वे महीनों तक सबका गुजारा चला सकते थे। अपनी इस कामयाबी के कारण वे लोग खुशी से पागल हुए जा रहे थे। सरदार ने एक तेज आवाज लगाकर सबको सावधान किया और हुक्म दिया–'' तुम में से कुछ लोग सभी बन्दियों को बांध लो और उन्हें एक साथ गदी के पिछले वाले कमरे में ले जाओ जहां इन सबको बन्द रखा जायगा। बाकी सब लोग माल के वाहनों को साथ लेकर अपने गोदामों की तरफ चलो।''

सरदार की आज्ञानुसार माल के वाहन गोदामों की तरफ ले जाने लगे तो दूसरे चोरों ने सभी काफिले वालों को बन्दी बनाना शुरू कर दिया। वे चोर क्रूर और नृशंस थे–काफिले के लोगों को वे बुरी तरह से पीटते जाते और

रस्सियों से बांधते जाते थे। बांध लेने के बाद एक–एक चोर दस–दस आदमियों को बांधते जाते थे। बांध लेने के बाद एक–एक चोर दस–दस आदमियों को खींचता और घसीटता जाता था। कष्टों से कराहते हुए काफिले के रक्षक और अनुचर चोरों को विवशता की नजरों से देख रहे थे कि वे पूरी तरह सतर्क न रहने के कारण ही अपने स्वामी के प्रति रक्षा का अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पाये थे। इस कारण स्वामी और स्वामी का माल तो खतरे में पड़ा ही किन्तु वे खुद भी खतरे में पड़ गये थे। वे सोच नहीं पा रहे थे कि अब इन चोरों की कैद से कब और कैसे छुटकारा हो सकेगा ?

काफिले के साथ धनसुख भी बन्दी बनाया ही गया था किन्तु अभागा बना था श्रीकान्त जो अकारण ही इस विपदा में फंस गया था और वह भी सबके साथ बन्दी बना लिया गया था।

X X X

कहते हैं कि आपत्ति कभी अकेली नहीं आती और श्रीकान्त के साथ ऐसा ही कुछ घटित हो रहा था। कहां तो वह अपनी प्रिय पत्नी और लाड़ले की खोज करने निकला था और कहां वह खुद ही इस मुसीबत में फंस गया ? उस चोरपल्ली की कैद में बैठा हुआ श्रीकान्त विचारने लगा–'' यह कैसे–कैसे कर्मों का उदय है कि ऐसी विचित्र दशा बन गई है ? मैंने अपने मित्र धनसुख का काफिले के साथ चलने का आग्रह इस कारण स्वीकार किया था कि मैं सुरक्षित होकर खोज कर सकूंगा किन्तु इसे मैं अपने भाग्य का ही दोष मानू कि उल्टे मैं अधिक असुरक्षा में गिर गया हूं। इन चोरों के मन को कौन जानता है कि ये सबके साथ कैसा व्यवहार करेंगे ? वह इसी सोच में डूबा हुआ था कि धनसुख ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा– 'क्यों श्रीकांत, अगर हम चोरों से यह प्रस्ताव करें कि वे हमारा सब माल ले लें और हमें छोड़ दे तो कैसा रहेगा ?''

श्रीकान्त ने धनसुख की बात का समर्थन किया और तभी उनकी चौकीदारी कर रहे एक चोर को श्रीकान्त ने पास बुलाकर कहा–''क्यों भाई, तुम हमारा एक काम करोगे ?''

उस चोर ने जैसे वह बात सुनी ही नहीं और वह अपनी जगह पर तन कर खड़ा ही रहा। श्रीकान्त ने सरलता से फिर कहा– ''भाई, जरा बात तो सुन लो।'' तब चौकीदार ने एंठकर पूछा– ''कहो, क्या कहना चाहते हो ?'' फिर श्रीकान्त ने उसे समझाया कि वह अपने सरदार से जाकर बात करे और

उनके प्रस्ताव को बतावे कि हमारा सब माल सरदार रख ले लेकिन हम सबको छोड़ दे। सारी बात बताकर श्रीकान्त ने उससे एक और मांग की–''इसमें हम तुम्हारी भी मदद चाहते हैं कि तुम हमारा प्रस्ताव सरदार को बताकर हमारी ओर से यह सिफारिश भी करना कि कई बन्दी बहुत दुःखी हो रहे हैं, उनके परिवारों के दूसरे काम भी हैं इस कारण सबको जल्दी मुक्त कर दें।'

उस चौकीदार चोर ने इतना ही कहा–''खैर, तुम कह रहे हो तो मैं अपने सरदार को जाकर तुम्हारी बात बात दूंगा, लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि सरदार तुम्हें छोड़ दें। हमारी पल्ली का यह नियम है कि लूटे हुए काफिले वालों के साथ पूरी निर्दयता का बर्ताव किया जाय ताकि वे यहां से छूटकर किसी भी तरह की कार्यवाही करने से बाज आवें। अभी तो तुम लोगों को बन्दी बनाये हुए चंद दिन ही तो हुए हैं।' और वह चौकीदार अपने सरदार से पूछने के लिये चला गया।

थोड़ी देर में उसने लौटकर बताया कि उनका छुटकारा अभी जल्दी नहीं हो सकेगा। सरदार ने साफ–साफ मना कर दिया है।

श्रीकान्त शांत चित्त से बैठ गया और ध्यानमग्न होकर सोचने लगा कि जो भवितव्य में होगा सो होगा, उसे अपने मन में किसी तरह की अशांति को स्थान नहीं देना चाहिये।

❑❑❑

# १४

# पुरुषार्थी आत्मा का प्रभाव

''भाई, तुम आज उदास दिखाई दे रहे हो, क्या बात हो गई है ?'' श्रीकान्त ने बड़े प्रेम से उन पर चौकीदारी कर रहे उस चोर से पूछा, जो उससे परिचित हो गया। श्रीकान्त ने सोचा कि अभी कुछ ही दिन पहले तो इस चोरपल्ली के चोरों ने उनके काफिले को लूट कर बहुत कीमती माल पाया है और इसी कारण उस दिन ये लोग भारी खुशी में झूम रहे थे, फिर आज क्या कारण हो गया कि इन लोगों के मुंह उतरे हुए हैं ?

समझें कि ये दो व्यक्ति साथ रह रहे हैं जिनमें एक व्यक्ति सद् प्रवृत्ति वाला है तो दूसरा दुष्ट प्रवृत्ति वाला। किन्तु दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को भी दुःख देखकर सद् प्रवृत्ति वाले व्यक्ति का दिल पिघल जाता है और वह उसकी सहायता करने के लिये तैयार हो जाता है। वह यह नहीं सोचता कि इस व्यक्ति ने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया था या अभी तक कर रहा है। वह तो यही सोचता है कि उसका काम वह करे, मुझे मेरी प्रवृत्ति के अनुसार ही कार्य करना है, बल्कि वह अपनी सद् प्रवृत्ति के बल पर दुष्ट प्रवृत्ति वाले व्यक्ति के जीवन को भी बदल लेने का प्रयास करता है। श्रीकान्त ऐसी सद् प्रवृत्ति वाला पुरुषार्थी युवक था अतः वह उन चोरों की उदासी को भी कैसे सहन करता, जिन्होंने भले ही अकारण काफिले को लूटा था और उन निरपराधियों को बन्दी बना लिया था।

अपने ही बन्दी श्रीकान्त की सहानुभूति पूर्ण बात सुन कर वह चौकीदार चोर भी हिल उठा कि कितना सज्जन व्यक्ति है, जो यह अपने पर अत्याचार करने वाले का भी भला सोच रहा है। उसका मन तरल हो गया, भावनाओं में एक ज्वार सा आया और उसका गला रुंध सा गया—वह कुछ बोल नहीं पाया।

'क्यों भाई, तुम कुछ बोल नहीं रहे हो ? क्या दुःख का कोई इतना बड़ा कारण है कि जो तुम्हारे मन को इस तरह मथ रहा है ? तुम्हारे दुःख से मेरा मन भी दुःखी हो रहा है, इस कारण मैं चाहता हूं कि तुम अपना दुःख मुझे

कहो ताकि यदि मैं उसे मिटाने के लिये कुछ कर सकूं तो मैं सहर्ष करने को तैयार हूं''—श्रीकान्त ने जैसे उसके मन की भीतरी परतों में प्रवेश करते हुए अपने सदाशयी सहयोग का प्रस्ताव रखा।

जब आत्मीयता के भाव से कोई कुछ पूछता है और सौजन्यता का स्नेह भरा व्यवहार करता है तो सामने वाला कितना ही निर्दयी हो, नरम और सरल पड़ जाता है। वह चोर भी पिघल पड़ा—उसकी आंखों से आंसू बह चले। वह बड़ी नरमाई से बोला—

''भाई साहब, आप मनुष्य ही नहीं, देवता मालूम होते हैं। हमने आपको लूटा पकड़ा और कल ही आपके अच्छे प्रस्ताव को भी ठुकरा दिया, फिर भी आप हम अन्यायियों के साथ सहानुभूति जतला रहे हैं ? मैं तो शर्म के मारे जमीन में गड़ा जा रहा हूं.....।''

श्रीकान्त ने उसकी पीठ पर थपकी देते हुए कहा—''ऐसी कोई बात नहीं है भाई। एक को दूसरे के दुःख में मदद करनी ही चाहिये। तुम मुझे अपने दुःख का कारण अवश्य बताओ मैं मेरे योग्य मदद करने के लिये उत्सुक हो रहा हूं।''

''जब आप इतनी आत्मीयता से पूछ रहे हैं तो मैं भी कहे बिना नहीं रह सकता हूं। आपने मेरे कड़े दिल को भी मोम बना दिया है। भाई साहब, बात यह है कि हमारे सरदार के जवान लड़के को पिशाच लग गया है जिसके कारण वह गम्भीर रूप से पीड़ित हो गया है। सरदार तो अब वृद्ध हो रहे हैं—वह लड़का ही सारी पल्ली की आशा का दीपक है। वह हमारा भावी सरदार भी है। यही कारण है कि मैं अकेला ही नहीं, सारी पल्ली वाले उदास हो रहे हैं। उसकी दशा देखी नहीं जाती है—वह बार—बार बेहोश होता रहता है। ऐसा लगता है जैसे कि उसकी नाड़ियां टूट रही हों कोई उपचार भी उसके लागू नहीं हो रहा है। अब आप कोई उपचार जानते हो तो मैं तुरन्त जाकर सरदार को सूचित करूं ?''—यह कह कर वह चौकीदार एकटक श्रीकान्त की ओर आशा भरी नजरों से देखने लगा।

श्रीकान्त एक समदृष्टि एवं पुरुषार्थी आत्मा थी। उसमें सब तरह का विज्ञान था। अन्तःकरण से एक आवाज उठी— इस अवसर का सदुपयोग किया जाना चाहिए क्योंकि अगर एकनिष्ठ पुरुषार्थ के प्रभाव से सरदार का लड़का स्वस्थ हो जाता है तो हो सकता है कि सारी पल्ली के लोगों के स्वभाव व धंधे में बदलाव लाया जा सके। और कुछ नहीं होगा तब भी लड़के

का मरण तो सुधारा ही जा सकेगा कि वह आर्त व रौद्र ध्यान में ग्रस्त होकर न मरे। यह विचार कर श्रीकान्त ने सरदार के लड़के की शान्ति हेतु प्रयास करने का निश्चय कर लिया और उस चौकीदार से कहा–''भाई तुम अपने सरदार से पूछ कर आ जाओ। मैं उस लड़के का उपचार करना चाहता हूं और संयोग ठीक रहा तो वह स्वस्थ भी हो सकेगा।''

उस चौकीदार चोर के लिये उस समय उससे बड़ी सुखद बात क्या हो सकती थी, उसने हर्षित होकर पूछा– ''क्या आप मन्त्रवादी हैं अथवा तन्त्रवादी ? आप उसका क्या उपचार करेंगे ?''

''मेरा विश्वास अपनी निज की आत्म–शक्ति में है। मैं उस पीड़ित लड़के को शांति देने का प्रयास करूंगा ताकि तुम्हारे सरदार तथा सारी पल्ली के लोगों को शान्ति मिले।''

''मैं सरदार के पास पूछने के लिए जा रहा हूं किन्तु उपचार के लिए आवश्यक सामग्री–भैंसे, बकरे आदि की बलि देनी हो तो– मुझे बता दें ताकि मैं सामग्री तैयार रखने की भी सूचना करदूं।

''भाई, ये बलि और हिंसा की बात गलत है। एक की हिंसा से दूसरे को आराम हो–ऐसा कभी नहीं होता। मैं तो अहिंसक तरीके का मंत्र जानता हूं और उसी से शान्ति मिल सकेगी।''

''मैं अभी ही दौड़कर सरदार के पास जा रहा हूं।' यह कह कर वह चला गया। थोड़ी ही देर में वह वापिस लौटकर आया और श्रीकान्त को सम्मान सहित अपने साथ ले गया।

X X X

गढ़ी के भीतर का दृश्य बड़ा कारुणिक था। सरदार का इकलौता बेटा जोर से उछल कूद रहा था तो कभी दीवाल से अपना सिर फोड़ता था। लोग पकड़ना चाहते, मगर किसी की भी पकड़ में नहीं आ रहा था। बेटे की ऐसी दुर्दशा देखकर सरदार और उसकी पत्नी ही नहीं, बल्कि पल्ली के सभी नर–नारी व बच्चे, जो वहां इकट्ठें थे, दुःखी हो रहे थे। ओझा लोग मन्त्र बोल रहे थे और धूप दे रहे थे। दूसरे उपचार करने वाले भी अपने–अपने प्रयोग कर रहे थे लेकिन पिशाच से पीड़ित उस जवान लड़के पर किसी का कोई असर दिखाई नहीं दे रहा था।

तभी चौकीदार के साथ श्रीकान्त ने वहां प्रवेश किया। सरदार उसकी अगवानी में खड़ा था, लेकिन शर्म के मारे कुछ भी बोल नहीं सका कि जिस निरपराध को उसने बन्दी बना रखा था, वही बदला लेने की बजाय उसकी मदद करने के लिये आया है। श्रीकान्त ने वहां पहुंच कर कहा–

''भाइयो ! मैं इस पीड़ित जवान को शान्ति देने के लिये आया हूं, इसके लिये मैं शान्त चित्त से महामन्त्र का जाप करूंगा। आप जो भी इसके लिये प्रयोग कर रहे हैं, उन सबको एकदम बन्द करदें। आप सब लोग भी एकदम चुप हो जावें। ध्यान रखें कि मेरे जाप करने तक कोई चूं भी न करें, वरना इस पीड़ित को शान्ति नहीं मिलेगी।''

तब सरदार बोला–''आपको जाप के लिये क्या–क्या सामग्री चाहिये–मैं तुरन्त मंगवा लेता हूं।'

''मुझे कोई सामग्री नहीं चाहिये, सिर्फ चारों ओर एकदम शान्ति चाहिये। यह लड़का उछले कूदे या चाहे जो करे, आप कोई कुछ न बोलें– न अपने स्थान से ही हटें।''

इतना कह कर श्रीकान्त उस पिशाच–पीड़ित लड़के के ठीक सामने आसन लगाकर बैठ गया और दत्तचित्त होकर महामंत्र का जाप करने लगा। चारों ओर अपूर्व शान्ति छा गई। बीच–बीच में उस लड़के की यदाकदा चीख निकलती थी तभी शान्ति भंग होती थी किन्तु श्रीकान्त पूर्णतया ध्यानस्थ होकर मन्त्रपाठ कर रहा था। यह क्रम काफी देर तक चलता रहा और ज्यों–ज्यों समय बीतता जा रहा था, सरदार तथा पल्ली के लोगों की आशएं बढ़ती जा रही थी।

तभी अचानक वह लड़का जोर से कूदा और पैर पटक कर चीखा– '' इस लड़के ने मेरे साथ बड़ा अत्याचार किया। मैं एक राहगीर के रूप में इस रास्ते से गुजर रहा था तब इसने मुझे लूटा ही नहीं, बल्कि मुझे बहुत पीटा और पीटते–पीटते मार डाला। मर कर मैं व्यन्तर जाति का देव बना हूं और अभी इसके शरीर में प्रविष्ट होकर अपने अत्याचार का बदला ले रहा हूं कि मैं भी इसे तड़पा–तड़पा कर मारूं।'' फिर श्रीकान्त की ओर मुंह करके उसने कहा–''महाशयजी, आपके मन्त्र पाठ से मुझे शान्ति का अनुभव हुआ है और मैं असमंजस में पड़ गया हूं कि बदला लूं या इस लड़के को छोड़ दूं ?''

उपयुक्त अवसर जानकर श्रीकान्त ने उस पिशाच को लक्ष्य करके कहा–''देखो, वैर का बदला वैर से लोगे तो वैर का क्रम कभी टूटेगा ही नहीं।

आज तुम इसे तंग कर रहे हो, कल इसकी आत्मा तुमसे बदला लेगी और बदले की हिंसा–प्रतिहिंसा में दोनों जलते रहोगे। इससे दोनों का भला इसमें है कि तुम अपना वैर छोड़ दो और यह वैर की सांकल टूट जायगी।''

थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा और देखते–देखते वह लड़का श्रीकान्त के पैरों में झुक आया और धीरे–धीरे कहने लगा या यों कहिये कि उसके भीतर घुसा हुआ पिशाच बोला–

'' आप परम दयालु दिखाई देते हैं। आपके मंत्र पाठ और व्यक्तित्व का मेरे मन पर बहुत अच्छा असर पड़ा है। मैं ही आपकी आज्ञा से अपना वैर छोड़ देता हूं और इसके पिंड को भी छोड़ कर चला जाता है। आपने मुझे जो अमूल्य शान्ति दी है, मैं आपका ऋणी रहूंगा। कभी भी आप मेरा ध्यान करेंगे तो मैं आपकी सेवा में हाजिर हो जाऊंगा। महाशयजी, मैं अब न तो भविष्य में इसको सताऊंगा और न किसी और को ही। आपकी जय हो....'

सभी लोगों ने चकाचौंध नजरों से देखा कि एक धुएं जैसी आकृति सरदार के लड़के के शरीर से निकल कर ऊपर अन्तर्ध्यान हो गई। श्रीकान्त की पुरुषार्थी आत्मा के प्रभाव के रूप में इस विचित्र दृश्य को देख कर सभी स्तम्भित थे। तब भी वह लड़का श्रीकान्त के पैरों में झुका हुआ था और पूरी तरह स्वस्थ लग रहा था। उसने श्रीकान्त के पैरों की धूल अपने माथे पर लगा कर श्रद्धा से ऊपर देखा। श्रीकान्त ने बड़े ही प्रेम से पूछा–'' कहो भाई, अब तुम्हारी तबियत कैसी है ?''

''आपकी कृपा से मैं तो जैसे नई ही दुनिया में नया जन्म लेकर आया हूं। मुझे अब किसी तरह की पीड़ा महसूस नहीं हो रही है, बल्कि आपके सान्निध्य से मन में शान्ति समा गई है और खुशी भर गई है। पिशाच का मामला मुझे अच्छी तरह समझ में आ गया है और मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि अब मैं भविष्य में न तो चोर कर्म करूंगा और न ही कभी भी हिंसा में लिप्त होऊंगा। यह आपके महामंत्र का चमत्कार है।''–कहते–कहते वह सरदार का इकलौता बेटा रोने लगा और श्रीकान्त से बार बार अपनी पल्ली वालों द्वारा किये गये कुकृत्य के लिए माफी मांगने लगा।

तभी स्वयं सरदार उठ खड़ा हुआ और श्रीकान्त के सामने हाथ जोड़कर बोला–''आप एक महान पुरुष हैं। कहां तो हमने आपके साथ भारी अत्याचार किये और कहां आपने दिल खोल कर मेरे ऊपर उपकार किया ? आपने मेरे लड़के और पिशाच को ही नहीं, मुझे और सारी पल्ली वालों को

जगा दिया है। मैं इसी समय आप समेत सारे काफिले वालों को माल सहित मुक्त कर रहा हूं और आपके सामने प्रतिज्ञा कर रहा हूं कि अब से मैं व पल्ली वाले भी चोर कर्म छोड़ कर दूसरे सही धन्धों से अपना जीवन निर्वाह करेंगे। एक आपसे मेरी निजी प्रार्थना है कि काफिले वालों के जाने के बाद भी कुछ दिन आप हमारे मेहमान बन कर रहें और हमारे जीवन परिवर्तन में हम को रास्ता बतावें।''

यह तो जैसे क्रान्ति हो गई थी। एक पुरुषार्थी आत्मा ने कितनी हो पतित आत्माओं को पतन की गहरी नींद से जगा दिया था। उसका प्रभाव उत्थान का प्रकाश बन कर सारी पल्ली पर छा गया था। श्रीकान्त ने उत्तर दिया–

''भाइयो ! आप सब के मन में एक नई जागृति आई– इसकी मुझे बहुत–बहुत खुशी है। आपने अन्याय का अच्छा प्रायश्चित कर लिया है। आपके अनुरोध पर कुछ दिन आपके साथ रहने को मैं तैयार हूं।'

तब पल्ली वाले और काफिले वाले आपस में प्रेमपूर्वक गले मिले तथा पल्ली वालों के साथ श्रीकान्त ने भी धनसुख को और उसके काफिले को स्नेहपूर्वक विदाई दी।

X X X

कुछ दिन श्रीकान्त उस चोर पल्ली में रुका ओर उसने उन्हें खेती वगैरा के नये धंधे भी सिखाये तो धर्म साधना का मार्ग भी सुझाया उसके कहने से उस पल्ली का नाम बदल कर प्रेम पल्ली कर दिया गया।

श्रीकान्त को विदाई देते हुए सरदार का दिल भर आया और भेंट स्वरूप एक चूर्ण की पोटली देकर उसने कहा–''आपका अहसान हमेशा हमारे दिल–दिमाग पर छाया हुआ रहेगा, जो सूर्य की किरण की तरह सही रास्ता दिखाता रहेगा। मैं आपको यह छोटीसी भेंट दे रहा हूं। इस पोटली में जो चूर्ण है उसकी विशेषता यह है कि इसको पानी या किसी पेय पदार्थ में घोल कर किसी को पिला दिया जाय तो दो चार घंटे तक मीठी नींद सोया हुआ रहेगा। इसको थोड़ा सा किसी के चेहरे पर छिड़क भी दें तो वह यकायक बेहोश हो जायगा। यह चीज आपके कहीं काम आयगी। हमारे तो अब काम की है नहीं।''

''मैं तो अपने आत्मबल पर भरोसा करता हूं, फिर भी आपका मन रखने के लिये भेंट को ले लेता हूं। आप अब अपने नये जीवन को ज्यादा से ज्यादा उन्नत बनाते रहे–यही मेरी शुभकामना हैं'– श्रीकान्त ने अपना अन्तिम संदेश सुनाया और सबसे विदा लेकर अपनी खोज के मार्ग पर चल पड़ा।

❑❑❑

# १५
# प्रायश्चित, वैराग्य और दीक्षा

श्रीकान्त जब मंजुला और अपने पुत्र को खोजने के लिये निकल पड़ा तब पश्चात्ताप में डूबी श्रीकान्त की मां और बहन कुछ बोल तो नहीं सकी किन्तु उनके मन का संताप और अनुताप सीमा से परे पहुंच गया था। मां के लिये यह बहुत बड़ा आघात था कि उसने जिन हाथों से मंजुला के कुमकुम के पगलिये अपने घर आंगन में अंकित करवा कर नये सुखद परिवार की नींव रखी थी, वही नींव उसके ही हाथों उखाड़ कर फेंक दी गयी। बहू और पोते से तो उसने हाथ धोया ही किन्तु उसका परम लाड़ला इकलौता बेटा भी घर छोड़कर चला गया था और आशा की हल्की रेखा भी दिखाई नहीं दे रही थी कि उसका बेटा अपने परिवार के साथ अकेला कभी लौटकर भी आयेगा। सोचते–सोचते श्रीकांत की मां की आंखों से झरझर आंसू झरने लगे, मुंह से झाग जैसे निकले और वह मूर्छित होकर नीचे गिर पड़ी।

पद्मा के भीतर का ताप भी कम नहीं था। असल में तो इस सारी विनाशलीला के लिए वह स्वयं को ही दोषी मान रही थी। यदि व्यर्थ की ईर्ष्या से वह अपने हृदय को नहीं जलाती और उसके स्थान पर वह अपनी सद्गुणी भाभी के लिये सम्मान और स्नेह की ज्योति जगाती तो इस परिवार के सुखमय जीवन का दूसरा ही दृश्य उपस्थित होता। पद्मा युवावस्था की ओर बढ़ रही थी जबकि उसे सुख का सुनहला प्रकाश मिलना चाहिए था, अपनी ही करणी से उसने वहां घना अंधकार फैला दिया था। मां की मूर्च्छा को देखते ही उसके दिल की धड़कन बहुत तेज हो गयी और वह जोर–जोर से विलाप करने लगी। उसका रोना इतना तेज था जैसे कि कान फाड़ रहा हो और सुनने वालों का दिल चीर रहा हो।

ऐसा करुण विलाप सुनकर पड़ौसी लोग दौड़े हुए आये और हवेली में इकट्ठे हो गये। लोगों ने तत्काल पद्मा की मां के मुंह पर ठंडे पानी के छींटे दिये और दूसरा उपचार भी किया जिससे उसकी मूर्च्छा दूर हो गयी। जब मां और बेटी स्वस्थ सी हुई तो एक बुर्जुग पड़ौसी ने ढाढ़स बंधाते हुए कहा–

''देखो, जो कुछ होना था सो हो गया। यह तो जिसका जिस तरह का कर्मबन्ध होता है वे कर्म जब उदय में आते हैं तब उनका भुगतान लेना पड़ता है। श्रीकान्त और मंजुला के पहले के किन्हीं कर्मों का उदय हुआ और यह सारा बनाव बना जिसमें आप दोनों को भी निमित्त बनना पड़ा। इसलिए अब दोनों मां–बेटी इसको शांत भाव से सहन करो और प्रायश्चित द्वारा अपने मन को स्वच्छ बनाओ। इस तरह हाय विलाप करके अपने जीवन को और काला मत करो।''

सह सुनकर श्रीकांत की मां तो बुरी तरह से फूट पड़ी– ''अपने इस दुर्भाग्य पर मैं शांत कैसे रहूं ? मेरा मन एक पल के लिये भी चैन नहीं पा रहा है और मुझे अपना यह जीवन व्यर्थ लग रहा हैं।' पद्मा के ह्रदय की टीस तो चुपचाप आंसुओं में ही बह रही थी।

उन्हीं बुजुर्ग पड़ौसी ने सरलता और प्रेम से समझाया– ''अब पछताने और दुःख करने से कुछ होने वाला तो है नहीं, फिर अपनी आत्मा को कलुषमय बनाने से क्या लाभ ? अभी अपने नगर में बड़ी गुणवान साध्वियां आयी हुई है, उनके पास आपको ले जावें– वे अपनी अमृत वाणी से दोनों के दिलों को अवश्य ही शान्ति पहुंचा सकेंगी।'' फिर उन्हीं सज्जन ने वहां इकट्ठी हुई महिलाओ से कहा– ''आप लोग थोड़ी देर इनके पास बैठो, पूछताछ करो और इनके मन को स्वस्थ बनाओ। तब इनको महासतियां के यहां ले जाना और इन्हें धर्म श्रवण कराना। ध्यान रखना कि पड़ौसी भाई से भी बढ़कर होता है और उसे पड़ौसी के सुख–दुःख में हमेशा सम्मिलित रहना चाहिये।'

सब पड़ौस की महिलाएं वही रुक गई और पुरुष अपने–अपने घरों को चले गये।

X X X

हमारे हाथों बहुत बड़ा अन्याय हो गया है, गुरानी जी महाराज और उसका हम आपके चरणों में प्रायश्चित करना चाहती है। मैंने ही अधिक आग्रह करके अपने इकलौते बेटे श्रीकान्त का विवाह रचाया था और मेरी परख भी खरी थी कि मुझे अतीव गुणाशील बहू मिली। मेरा बेटा परदेश चला गया और झूठे भ्रम में मैंने उसी बहू को अपने घर से निकाल दिया। बहू ने हमारे भ्रम का सही–सही स्पष्टीकरण किया था किन्तु मैं अपने रोष पर काबू नहीं कर पायी। मेरा बेटा जब परदेश से लौटकर आया तब सारा सत्य खुल

गया कि मेरी जल्दबाजी से सोने समान गृहस्थी उजड़ गयी है। अब बेटा तो बहू की खोज करने के लिये चला गया है लेकिन हमारे पश्चाताप की सीमा नहीं है। रात–दिन यह घटना हमारे मन को कचोटती रहती है और हमको यह सूझ नहीं पा रहा है कि हम हमारी भूल का प्रायश्चित क्या करें और कैसे बिगड़ी हुई बात को बनावें ? हम आपसे वह मार्ग खोजना चाहती हैं कि जिस पर चलकर शान्ति मिले।' श्रीकान्त की मां ने महासतियांजी के समक्ष यह निवेदन करते हुए अपनी और अपनी बेटी पद्मा की आत्मा के कल्याण हेतु निर्देश मांगे। मां और बेटी सविधि वन्दना करके महासतियांजी के सामने विनयावनत खड़ी रहीं।

महासतियांजी परम प्रतापी धर्मोपदेशिकाएं थी। उन्होंने संसार की गतिविधियां भी देखी थी और धर्म साधना का गहरा अनुभव भी लिया था। वे भव्य प्राणियों के मन में चलने वाली विचारों की उथल–पुथल को भी समझती थी। तब बड़ी साध्वीजी ने श्रीकान्त की मां और बहिन के चेहरों पर आते–जाते हुए भावों का बारीकी से निरीक्षण किया और उनके हृदयों से उमड़ने वाले गहरे प्रायश्चित को समझा। तब वे उन दोनों को आश्वस्त करती हुई सी उपदेश के रूप में कहने लगीं–

''भद्राओ ! संसार में मोह की स्थिति रहती है और मोह से राग तथा द्वेष की उत्पत्ति होती है। इसी राग तथा द्वेष के चक्कर में भटकी हुई आत्माएं आर्त व रौद्र ध्यानों को ध्याती हुई अपने स्वरूप को विकृत बनाती रहती हैं। परन्तु जो आत्माएं शुक्ल एवं धर्म ध्यानों की शुभता में रमण करती हैं वे अपने स्वरूप पर लगी हुई कालिमा को धो डालती हैं। तब उनके भावों में द्वेष भी नहीं रहता और राग भी नहीं रहता। उन्हें हम वीतराग देव कहते हैं। ऐसे वीतराग देव जो उपदेश फरमाते हैं। उन पर आचरण करने से अन्य संसारी आत्माएं भी अपने स्वरूप को उज्ज्वल बना सकती है। हमने उसी वाणी का अध्ययन किया है, अपने जीवन में उस पर आचरण करने का प्रयत्न कर रही है एवं उस वीतराग वाणी का जो हमें उत्थानकारी स्वरूप समझ में आता है उसका उपदेश भी करती हैं.....संसार में रहते हुए जैसी घटना आपके साथ घटित हुई है, वैसी अनेकानेक घटनाएं रात–दिन गुजरती रहती है। आपकी अपनी घटना से आपके मन में जिस प्रायश्चित का उदय हुआ है उसकी सफलता इसमें है कि आप मोहबन्ध करने वाले सांसारिक वातावरण से अपने को दूर कर लें तभी आपका ध्यान वीतराग वाणी में लग सकेगा। इस दुनिया में जिसको जितने समय तक जिनके साथ रहना होता है उतने समय तक ही

वह साथ रह पाता है। इस दुनिया को आप एक बड़ी धर्मशाला मान लें। धर्मशाला में कुछ दिन ठहर कर जब कोई उसे छोड़ता है तो क्या वह किसी के लिये रोता है ? जैसे उस अवस्था में मोह क्षीण रूप में रहता है उसी प्रकार इस संसार में भी माता–पिता, भाई–बहन, पति–पत्नी, पुत्र–पुत्री आदि परिवारजन के प्रति मोह को घटाने रहने से ही निजात्मा का कल्याण किया जा सकता है.....आप भी संसार के मोह को छोड़कर संसार से वैराग्य लो, वीतराग वाणी में अपने मन को रमाओ एवं अपनी आत्मा के स्वरूप को उज्ज्वल बनाओ।''

महासतियांजी ने अपने इस उपदेश रूप कथन को पूरा करके जब मां बेटी की ओर देखा तो देखा कि उन दोनों के नेत्रों अविरल अश्रु धारा बह रही है। उन्हें अनुभूति हुई कि दोनों के चित्त प्रायश्चित की अग्नि में तप कर निखर उठे हैं। उन्होंने उन दोनों की आंखों में झांक कर इस तरह देखा कि वे अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करें।

श्रीकान्त की मां ने हाथ जोड़कर निवेदन किया–''धन्य हो आपका साधु जीवन, आपने अपनी अमृत वाणी से हमारी आत्माओं को जगा दिया है। हमें अपने आत्मकल्याण को मार्ग सूझ गया है। हम भी वीतराग देव के धर्म पथ पर चलने के लिये तैयार हो गयी हैं। आप हमें अपने श्रीचरणों में स्थान देने की कृपा करेंगी ?

तभी पद्मा ने भी अतीव विनम्र वाणी से निवेदन किया– ''गुरानीजी महाराज, मेरी मां तो बहुत सरल आत्मा है। मैं ही दुर्गुणी आत्मा हूं जिसने यह सारा दुःख भरा बनाव बनाया। मुझे उसका अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ है लेकिन मैं अब तक पापकारी ध्यान में पड़ी हुई थी। अब आपका यह उपदेश सुनकर मेरा मन में अपने आत्मस्वरूप को उज्ज्वल बनाने की ललक लग गयी है इसलिए मुझ पापिनी को भी अपने श्रीचरणों में स्थान देकर पतितपावन बनावें।''

महासतियांजी ने फिर उन दोनों को साधु धर्म का विस्तार से स्वरूप समझाया और यह चेतावनी दी कि धर्म तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन है अतः दीक्षा ग्रहण करने के पहले गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेना चाहिये। उन्होंने यह भी बताया कि अभी वे कुछ दिनों तक नगर में ठहरने की विचारणा में है अतः यदि वे विचारपूर्वक दीक्षा लेने का निश्चय करेंगी तो उसकी साधना में उनका योग भी प्राप्त हो जायेगा।

शोकमग्न होकर जो मां–बेटी महासतियांजी के समक्ष उपस्थित हुई थीं, वे अब प्रसन्नमुख हो गयी थीं। उनकी मुखाकृतियां एक नये ओज से जगमगा उठी थीं। वे एक शुभ निश्चय के साथ उस समय अपने घर को लौट गयीं।

X X X

श्रीपुर नगर का वह बड़ा ही खुशी का दिन था। सारे नगर में हलचल मची हुई थी। बाल, युवा, वृद्ध, नर, नारी धर्म स्थानक की तरफ उमड़े हुए चले जा रहे थे। कारण, दो भव्य आत्माएं सांसारिक मोह को त्याग कर एवं वैराग्य भावों में ओत–प्रोत होकर नगर में विराजित महासतियांजी के पास दीक्षित होने जा रही थीं। ये दोनों भव्य आत्माएं और कोई नहीं बल्कि श्रीकान्त की मां और बहिन ही थी। महासतियां जी के उपदेश का उनके मन पर गहरा असर पड़ा था और उसके अनुसार वीतराग वाणी का आश्रय लेकर अपने जीवन को समग्र रूप से बदल डालने का उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था। नगर के जो लोग उन दोनों की अब तक यत्किचित् आलोचना करते रहे थे, वे भी आज उनके त्याग की भूरि–भूरि सराहना कर रहे थे।

श्रीकान्त की मां और बहिन को परम आदरपूर्वक नगर जन धर्म स्थानक पर ले गये और महासतियांजी को उनकी तीव्र भावना के अनुसार उनको दीक्षित करने का अनुरोध किया। सबकी आज्ञा लेकर महासतियांजी ने उन दोनों को दीक्षा देकर उन्हें अपनी शिष्याएं बना लीं। तब कुछ दिन वहां रुक कर सारा सतीमण्डल वहां से विहार करके ग्रामानुग्राम विचरण करने लगा।

❑❑❑

# १६
# युद्ध के मोर्चे पर

मंजुला के लिए यह अचिन्त्य था कि उसको सात दिन बाद ही युद्ध के मोर्चे पर खड़ी हो जाना पड़ेगा। जब महाराज जयशेखर ने मंजुला को अपना अनुष्ठान समाप्त कर सात दिन बाद ही उसकी पटरानी बन जाने की चेतावनी दे दी तो उसे अपने उस वैचारिक युद्ध की तैयारी के लिए यही सात दिन की अवधि रह गयी थी।

जयशेखर भी मानवता के अन्दर रहने वाला चेतना का एक स्वरूप था किन्तु काम मोह से ग्रसित बन कर उसने अपनी चेतना को ज्ञान शून्य बना थी। दूसरी ओर मंजुला भी अपने नारी तन को सुशोभित करने वाली एक महिला थी लेकिन अन्तर यही था कि उसने अपने गुणशील धर्म से अपने आत्मस्वरूप को उज्ज्वल बनाया था और उसको उज्ज्वलतर बनाने हेतु प्रयत्नरत थी। इन दोनों के बीच में आन्तरिक वृत्तियों का मानों एक युद्ध चल रहा था। जयशेखर चाह रहा था कि मंजुला मानसिक वृत्तियों के अनुरूप कार्य करे जबकि मंजुला अपनी शील रक्षा पर डटी हुई थी।

मंजुला लम्बे अनुष्ठान के बहाने यह सोच रही थी कि जयशेखर से छुटकारा पाने का कोई न कोई रास्ता निकल आयेगा। किन्तु सात ही दिन की अवधि की चेतावनी से वह अधिक सजग हो गई थी। ज्योंही जयशेखर चेतावनी देकर मंजुला के कक्ष से बाहर चला गया, मंजुला ने अपनी संकल्प शक्ति सुदृढ़ बनायी और महामंत्र का जाप करते हुए ध्यानस्थ हो गयी। वह ध्यान में इतनी तन्मय हो गयी और अपने आत्मस्वरूप से इतनी जुड़ गयी कि बाहर के वातावरण को वह जैसे भूल ही गयी। उसने उसके बाद न अन्न लिया और न जल ही पिया। अडोल योगिनी की तरह वह अपनी ध्यान मुद्रा में निश्चल बैठी रही।

उसकी सेवा में नियुक्त की गई दासियां हतप्रभ थी कि इस तेजस्वी महिला ने आसन्न संकट के सामने क्या भीषण निर्णय लिया है। इतने दिनों से वे मंजुला के क्रियाकलाप देख रही थीं और जयशेखर की कामवासना के

कुटिल दृश्य भी। इस कारण उनके मन के भीतर भी मंजुला के लिये श्रद्धा और सहानुभूति पैदा हो गयी थी। मंजुला के उस ध्यानमग्न एवं तेजोमय स्वरूप को देखकर न तो उनका मन अपने राजा को कुछ भी सूचना देने को हो रहा था और न ही वे मंजुला को कुछ भी निवेदन करने का साहस जुटा पा रही थीं। और इस तरह पांच दिन निकल गये। मंजुला अपने ध्यान में हिली–डुली भी नहीं और दासियां उस मूर्त्ति को एकटक निहारती ही रहीं।

X X X

छठे दिन का सूर्य उग चुका था और राजा जयशेखर नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपने कक्ष में अकेला बैठा कल्पना के ताने बाने बुन रहा था। अब तो केवल दो ही दिन बाकी रह गये हैं जिसके बाद मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा। मैं ही अब तक मंजुला का मन जीतने के लिये उसके साथ रियायत बरतता रहा हूं, वरना एक छोकरी की क्या मजाल जो मेरे कहे को एक पल के लिये भी टाल सके। अब दो दिन तो मंजुला के हैं, फिर आयेगा मेरा दिन, फिर उसकी कुछ नहीं चलेगी और सिर्फ मेरी मनमानी चलेगी। मैंने उसके लिए अब तक बहुत प्रतीक्षा करली है अब मैं उसकी सुन्दरता का रसपान किये बिना रह नहीं सकूंगा।

और राजा जयशेखर मन की सुनहली तरंगों में बह चला कि मंजुला कितनी सुन्दर है, कितनी सुकोमल है और कितनी सुखदायिनी होगी वह मेरे लिए ?

तभी उसका दिवास्वप्न टूटा। एक अनुचर अन्दर आकर हाथ जोड़े थरथर कांपता हुआ राजा के सामने खड़ा रहा। राजा को उस समय उसका आना बड़ा बुरा लगा। उसने उसकी मानसिक तरंगों में एक ऐसा झटका लगाया कि वह सहम कर रह गया। कड़क कर उसने पूछा–"क्यों आये हो तुम इस समय ? क्या जरूरी काम आ गया ?"

"महाराज, क्षमा करें। मुझे सेनापतिजी ने भेजा है कि मैं तुरन्त आपसे सम्पर्क करूं ताकि सेनापतिजी आपकी आज्ञा से यहां आकर आपसे सारी बात कह सकें और आपके निर्देश प्राप्त करके तत्काल उचित कार्यवाही कर सकें"–उस अनुचर ने डरते–डरते भी सारी बात कह डाली।

राजा की त्यौरियां चढ़ गई कि उसने खास बात तो बतायी ही नहीं। क्रुद्ध स्वर में उन्होंने फिर पूछा–"सेनापतिजी मुझसे इसी समय किस कारण से मिलना चाहते हैं आखिर बात क्या हो गयी ? कहां है सेनापति इस समय,

उन्हें तुरन्त मेरे पास भेजो।''

''राजन, वे बाहर ही आपके निर्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं उन्हें अभी ही भीतर भेज देता हूं।''

ज्यों ही अनुचर बाहर गया कि थोड़ी देर बाद ही सेनापति भीतर आ गया।

''महाराज की जय हो। राज्य पर भीषण संकट आ गया है। अभी–अभी गुप्तचरों ने सूचना दी है कि भीलपति राजा ने अपनी सीमाओं पर हमला कर दिया है और यदि तुरन्त ही हमने सामना नहीं किया तो उसकी सेनाएं तेजी से बढ़ती हुई राजधानी तक पहुंच जायेंगी। इसलिए आपके निर्देश की आवश्यकता है।' सेनापति ने इतना कहने के साथ ही हमले का पूरा विवरण सुना दिया तथा अपनी सेनाओं की तैयारी का भी उल्लेख कर दिया।

अब जयशेखर अपनी कल्पना भी भूल गया और अपना क्रोध भी। उसके चेहरे पर चिन्ता भी दिखायी दी तो रोष भी उभर कर आ गया उसे याद आया कि पिछली बार भी जब भीलपति ने उसके राज्य पर आक्रमण किया था तो वह बहुत ही भयानक सिद्ध हुआ था। उसकी भील सेना इतनी बहादुर साबित हुई थी कि जिसने उसकी सेना के हौसले ही तोड़ दिये थे। तब अचानक उसके एक मित्र राज्य की सेना का सहयोग मिल गया था जिसके कारण भील सेना को राजधानी के भीतर घुसने नहीं दी और उसे वापिस खदेड़ दी। शायद उसी का बदला लेने को अब भीलपति ने वापिस हमला किया है और अब इसका सामना करना बड़ा ही कठिन दिखाई देता है। राजा ज्यों–ज्यों सोचता रहा, उसकी चिन्ता भी गहरी होती गई। तब उसने गम्भीरतापूर्वक सेनापति के साथ विचार–विमर्श करना शुरू किया– ''सेनापतिजी, यह तो बड़ी ही जटिल समस्या खड़ी हो गई है। हमें अब भीलपति का सामना करने में लोहे के चने चबाने पड़ेंगे। क्या गुप्तचरों ने भीलपति की सैन्य शक्ति के बारे में भी कोई सूचना दी है ?'

''हां महाराज, इस समय भीलपति के सशस्त्र सिपाहियों की संख्या अपनी कुल संख्या से कुछ ही कम है। पहले के अनुभवों को देखते हुए हम उनको हरा सकें–यह बड़ा मुश्किल दीखता है। किन्तु अगर हम शुरू–शुरू में ही दब जायं तो उसका परिणाम राज्य के विनाश के रूप में भी भयंकर हो सकता है। इसीलिए उचित यही लगता है कि हम पूरी ताकत और पूरे वेग से भीलपति के हमले को रोकने के लिये तुरन्त यहां से चल दें।''

''आपका सोचना ठीक है किन्तु इस बार केवल लड़ने से ही काम नहीं चलेगा। इस बार कुछ कूटनीति से भी काम निकालना होगा। अगर हम भीलपति की बढ़ती हुई सेनाओं को रोक पाने में असमर्थ रहे तो हमें तत्काल उसके साथ समझौते के प्रयत्न करने होंगे। आप तुरन्त राज्य परिषद् की बैठक बुलाइये ताकि सारी समस्या पर पूरी तरह विचार करके सेनाओं को यथायोग्य आदेश दें।''

तत्काल राज्य परिषद् की बैठक में विचार–विमर्श करके रणनीति तैयार की गई और जयशेखर स्वयं ने सेना की कमान सम्भाली।

मंजुला अपने एक तरह के युद्ध के मोर्चे पर तैयार खड़ी थी तो बेचारे जयशेखर को दूसरे ही युद्ध के मोर्चे पर प्रस्थान कर देना पड़ा।

युद्ध भी दो तरह के होते हैं–नैतिक और अनैतिक। यदि कोई राजा आक्रान्ता को हटाने के लिये नैतिकता के साथ चाहता है कि मैं स्वयं किसी पर आक्रमण नहीं करूंगा किन्तु आक्रान्त को हटाने में भी पीछे नहीं रहूंगा तो वैसा राजा अवश्य ही जीत हासिल कर सकता है। कारण, वह युद्ध–नीति में भी नैतिकता के साथ चलता है। किन्तु जिस प्रकार जयशेखर अपनी कामवासना की पूर्ति में नैतिकता के प्रति सावधान नहीं था उसी प्रकार युद्ध संचालन में भी उसे नैतिकता का भान नहीं रहा। वह तो सोच रहा था कि नैतिकता हो या अनैतिकता, एक चाल हो या दूसरी चाल किसी भी तरह से युद्ध में जीत हासिल कर लेनी चाहिये।

जब जयशेखर ने युद्ध नैतिकता का विचार छोड़ा तो भीलपति ने भी लोहे से काटने की नीति अपना ली। भीलपति की सेनाओं ने अपनी बहादुरी से जयशेखर की सेनाओं के छक्के छुड़ाने शुरू कर दिये। जयशेखर को जब महसूस होने लगा कि अब उसको हार का मुंह देखना पड़ सकता है तो वह पूरी तरह से अनैतिक बन गया। उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि भीलपति की सेनाओं को आगे से गोला बना कर चारों ओर घेर लो और सीमावर्ती जंगलों में आग लगा दो। यह जयशेखर की क्रूरता का कदम था किन्तु प्रकृति भी अनैतिकता को पहले नष्ट करती है। इधर जंगलों में आग भड़कने लगी तो उधर से मूसलाधार बरसात शुरू हो गयी। जब जयशेखर की यह चाल भी बेकार हो गई तब उसके मन में घबराहट फैली कि अब इस विषय स्थिति से कैसे निपटा जाय ?

कहां तो जयशेखर अपनी चेतावनी से सात दिन समाप्त होते ही मंजुला के साथ अपने मनोरथों को पूरे करना चाहता था और कहां भीलपति के साथ युद्ध–करते–करते कई सात दिन निकल गये। किसी भी तरह जब भीलपति की सेनाओं को आगे बढ़ने से रोकना कठिन हो गया तो जयशेखर ने सेनापति से विचार–विमर्श करके कूटनीति पर चलने का निर्णय लिया। उसने सोचा कि इस समय खुली पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा आगे बढ़कर भीलपति के सामने सन्धि का प्रस्ताव रखना उपयुक्त रहेगा ताकि भविष्य में कभी भी संधि तोड़कर भीलपति के साथ इस युद्ध का बदला लिया जा सके।

यह मंजुला की धर्म साधना का भी सुफल समझा जा सकता है कि अपनी शक्ति के मद में अन्धे बने हुए राजा को प्रकृति ने भीलपति के हाथों गर्व भंग करने का अवसर दिया हो। जयशेखर के लिए आत्मसमर्पण करके संधि का प्रस्ताव पेश करना अवश्य ही अपमान भरा था किन्तु उस समय अपने हाथ से राज्य के निकल जाने को बचाने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं था अन्त में अपना दूत भेजकर जयशेखर ने भीलपति से मुलाकात की और संधि का प्रस्ताव रखा। भीलपति एक ही शर्त पर संधि करने को तैयार हुआ कि अब तक युद्ध में उसकी सेनाओं ने जयशेखर के राज्य की जितनी भूमि जीत कर अपने कब्जे में कर ली है उसे वह वापिस नहीं लौटायेगा। अपनी घोर विवशता में जयशेखर को अपमान का यह अत्यन्त कड़वा घूंट भी पीना पड़ा। फिर संधि सम्पन्न करके जयशेखर अपनी सेनाओं के साथ अपनी राजधानी चन्द्रनगर को लौटा तो भीलपति भी अपनी जीती हुई भूमि पर अपना शासन प्रबन्ध कायम करके अपनी राजधानी की ओर प्रस्थान कर गया।

X X X

अपमान और तिरस्कार की ऐसी तीखी मार झेलकर भी जयशेखर के मन में नैतिकता का अनुभव नहीं जागा। यह हृदय की वृत्तियों पर निर्भर करता है कि कोई अपने किसी अनुभव से कितनी सीख ले सकता है। यद्यपि राजा के मन में ग्लानि और घृणा के भाव फैल रहे थे और मन ही मन वह भीषण लज्जा का भी अनुभव कर रहा था किन्तु राजधानी पहुंचते ही उसे मंजुला का ध्यान आये बगैर नहीं रहा। यह सही था कि वह अपने तन और मन से थका हुआ था फिर भी सबसे पहले मंजुला के पास ही जाने का विचार किया।

जब एक प्रकार से पराजय का काला टीका लगा कर जयशेखर अपनी सेनाओं के साथ राजधानी पहुंचा तो वहां जनता के मन में राजा के प्रति अवज्ञा एवं अवहेलना का विचार पैदा हो गया। एक तो मंजुला की चर्चा घर–घर में पहले ही फैल रही थी और एक सद्‌गुणी नारी के साथ राजा के दुर्व्यवहार से लोगों के मन में विक्षोभ था जिसने इस हार के बाद मुखर रूप ले लिया। शहर में जगह–जगह राजा के विरुद्ध चर्चाएं होने लगीं।

उधर सात रोज की कड़ी ध्यानमय तपस्या के बाद भी मंजुला अपनी साधना में जुट रही थी। इस समय में उसकी काया अत्यन्त कृश हो गयी थी किन्तु उसके मुखमण्डल पर जो आभा प्रकट हुई थी उससे कोई भी तत्क्षण प्रभावित हो जाता था इस अरसे में उसकी सेवा में रहने वाली दासियां भी भक्ति भाव से उसकी शिष्याओं जैसी बन गई थीं।

जब जयशेखर ने मंजुला के कक्ष में प्रवेश किया तो उस योगिनी की मूर्ति को देखकर वह चौंक सा गया। ग्लानि और घृणा से भरे उसके मन में भय का भयावना भाव पैदा हुआ। भीतर ही भीतर वह कांप उठा और उसके पांव वहीं चिपक गये जैसे कि सती के अमित तेज से उसका रोम–रोम संज्ञा शून्य हो गया हो। उस समय तो उसके अन्तःकरण से भी जैसे आवाज उठी–ऐ जयशेखर, तू इस पापकर्म से पीछे हट जा। मंजुला को मां मानकर इसकी पूजा कर। किन्तु लम्बे समय से पाले पोषे गये विकारों ने जयशेखर के मन पर फिर से अपना कब्जा कर लिया। वह वहीं से मंजुला को सम्बोधित करते हुए बोला किन्तु उसकी आवाज धीमी और ढीली थी–

''ओ सुन्दरी, मेरी दी हुई अवधि तो कभी की पूरी हो चुकी और तुम्हारा अनुष्ठान भी पूरा हो चुका होगा। अब तो मुझे तुम और प्रतीक्षा नहीं करवाओगी न ?''

''राजन् आपने इतना धैर्य रखा तो अपने ऊपर कुछ नियंत्रण और रखिये। यह विकार जो आपके भीतर से उठ रहा है आपके दुःख का कारण बना हुआ है। यही वजह है कि आप अशान्त हो रहे हैं। पहले अपने चित्त को शांत बना लीजिये– मैं कहीं बाहर जाने की स्थिति में तो हूं नहीं।''

जयशेखर को जैसे जोश सा आया और वह अपने कदम आगे बढ़ाने की चेष्टा करने लगा कि वह अपनी मनमानी करके ही रुकेगा। तभी मंजुला ने हाथ सामने करके तेजोमय स्वर में कहा–''ठहरो, और जयशेखर के कदम आगे नहीं बढ़ सके। तब मंजुला ने ललकार कर कहना शुरू किया–'' राजन्,

आप पुरुष हो या पशु ? पशु भी ऐसा व्यवहार नहीं करता जैसा व्यवहार करने पर आप उतारू हो गये। आपको सोचना चाहिये और अपनी गरिमा के अनुसार चलना चाहिये।'

मंजुला की आवाज में साधना की शक्ति थी, आत्मा का बल था और शील रक्षा का तेज था। उस आवाज को सुनकर राजा का मन बैठ गया। यह डर भी जाग गया कि कहीं सती का तेज उसे भस्म न कर दे, और वह उल्टे पैरों लौट गया।

❑❑❑

# १७

# दृष्टि मिलन और खून का लिखा सन्देश

श्रीकान्त ने चोरपल्ली बनाम प्रेमपल्ली से जब विदा ली तो जहां एक ओर उसके मन में नव संस्कार निर्माण का हर्ष था तो वहां दूसरी ओर खोज की चिन्ता का भी नया अध्याय प्रारम्भ हो गया।

चलते चलते वह चन्द्र नगर पहुंच गया। नगर के बाहर ही उसे पनघट दिखाई दिया जहां स्त्रियां पानी भर रही थीं। उसे भी प्यास लगी हुई थी सो पानी पिया तथा वहीं छाया में विश्राम करने लगा। बैठे–बैठे उसका ध्यान दो स्त्रियों के वार्तालाप की ओर मुड़ा।

एक स्त्री बोली– ''तुम्हें मालूम है या नहीं कि हमारे राजा जयशेखर सीमा पर हुए भीलपति के हमले में हार कर लौटे हैं ?''

दूसरी ने जवाब दिया–''ऐसा अन्यायी राजा हारेगा नहीं तो क्या होगा ? जो स्त्री जाति का सम्मान नहीं करता और उसके शील भंग की कुचेष्टा करता है, उसका तो और बुरा हाल होना चाहिये।'

''इस बात पर तो नगर की एक–एक औरत जयशेखर को नफरत की नजर से देखती है कि वह एक पतिव्रता नारी को उसकी अनुपम सुन्दरता के कारण जंगल के राजभवन में उठा लाया और उसे अपनी पटरानी बनाने के लिये तंग कर रहा है।''

''लेकिन तुमने सुना या नहीं कि वह पतिव्रता नारी कठिन तपाराधन कर रही है, और अब इतनी तेजस्वी दिखाई दे रही है कि जयशेखर जब सीमा के युद्ध से लौट कर उसके पास पहुंचा तो उसको ऐसा झटका लगा कि उल्टे पैरों लौट आना पड़ा।''

''अरे यह बात तो मैंने सुनी ही नही। राजा बहुत ही नीच साबित हो रहा है कि कब से इस पतिव्रता को उसने महलों में कैद कर रखा है। यह तो उसका तेज ही है कि इससे जोर–जबरदस्ती करते नहीं बनी है।''

''हां यह ताजा बात ही है कहते हैं कि युद्ध में जाने से पहले तो उसने सात दिन की अवधि दी थी कि उसके बाद वह मनमानी करने से नहीं चूकेगा, किन्तु बीच में उसका युद्ध में चले जाना पड़ा।''

''बहिन, राजा का ऐसा चरित्र अपने नगर के लिये कलंक है।''

''है कैसे नहीं ?'' यह तो भविष्य के लिये एक खतरे की स्थिति पैदा हो रही है। यथा राजा तथा प्रजा का क्रम चलेगा तो समग्र स्त्री समाज के लिये अपनी शील रक्षा कठिन हो जायगी।''

श्रीकान्त ने जब यह वार्तालाप सुना तो उसके मन में सन्देह पैदा हुआ कि हो सकता है–यह पतिव्रता नारी मंजुला ही हो। उसे अपनी खोज में आशा की किरण दिखाई दी। आशा की इस क्षीण रेखा ने भी उसके हृदय को हर्ष के आवेग से भर दिया तो उसकी उत्कंठा उग्र बन गई।

उसने मन ही मन सोचा कि इस चन्द्रनगर में मंजुला की गहरी खोज करनी चाहिये। यदि जयशेखर के राजभवन में नजरबन्द महिला के लिये ही मंजुला का अनुमान लगाऊं तो मुझे राजभवन के आसपास ही टोह लेनी चाहिये और कोई लक्षण आशाजनक दिखाई दे तो फिर आगे का मार्ग निश्चित करूं। उसका मन गवाही देने लगा था कि उसकी मंजुला उसे मिल जायगी।

इस विचार के आते ही वह अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। उसके कदम चन्द्रनगर के भीतर प्रविष्ट हो गये। पूछता हुआ वह राजभवन तक पहुंचा और अन्दाज लगाने लगा कि वह किस दिशा में ऐसा निरपद स्थान खोज कर ठहरे जिस ओर राजा के रनिवास के कक्ष हों, ताकि घूमते–फिरते उसे मंजुला दिखाई दे जाय अथवा कहीं मंजुला ही उसे देख ले।

राजभवन के पिछवाड़े में उसे एक उद्यान दिखाई दिया जिसमें एक तरफ महलों के गोखड़े नजर आ रहे थे। उद्यान में स्त्री–पुरुषों का अधिक आवागमन भी उसे नहीं दिखाई दिया–मात्र कुछ माली वगैरा काम कर रहे थे। वह भी उद्यान के भीतर पहुंच कर एक ऐसे वृक्ष के नीचे बैठ गया जहां से कुछ गोखड़ों में घूमती–फिरती आकृतियां साफ साफ दिखाई दे सकती थी। यहां भी काम करते–करते दो माली आपस में धीमे–धीमे बात कर रहे थे। उस ओर श्रीकान्त ने भी अपने कान लगा दिये कि शायद उनकी बातचीत में भी कोई सुराग उसके हाथ लग जाय।

एक माली ने कहा–''अपने महाराज दो तीन दिनों से बहुत अशान्त हैं और उनका चेहरा उतरा हुआ है।''

दूसरे ने उसकी बात मानते हुए बताया–''बन्धु, युद्ध से हार कर लौटने में तो ऐसा ही होता है।''

''अरे नहीं, एक और रहस्यभरी बात है।''

''वह क्या ?'

''तू नहीं जानता कि बहुत दिनों पहले अपने यहां एक हाथी पागल हो गया था और वह जंगल की ओर भागा तब अपने महाराज भी उसे काबू में करने के लिये घोड़े पर पीछे–पीछे भागे। वे जब एक सरोवर के पास पहुंचे, वह पागल हाथी पहले ही सरोवर पर नहाती हुई एक सुन्दर महिला को सूंड में पकड़ कर सरोवर में फेंक चुका था। उस महिला की सुन्दरता पर रीझ कर महाराज हाथी को तो भूल गये, मगर खुद के मन को ही पागल हाथी बना बैठे और उस मूर्छित महिला को उठवा कर राजभवन में ले आये, तब से उसे अपनी वासनापूर्ति के लिये मजबूर कर रहे हैं।'

''यह तो बहुत बुरी बात है भाई। अगर राजा ही दुष्चरित्र बनने लगेगा तो प्रजा का क्या हाल होगा ?'

''पर वह महिला पतिव्रता सती है। जो उसका वश नहीं चला तो मर जायगी मगर इस दुष्ट राजा के हाथ कभी नहीं लगेगी। वह तो वैसे ही तपस्या करके शरीर को कांटा बना चुकी है, मगर एक दासी कह रही थी कि अभी ही उसके तेज का राजा को कड़ा झटका लगा है और उस कारण ही वह बुरी तरह से अशान्त हो रहा है।''

''ऐसे दुष्ट राजा की नजर कैद से उस महिला का छुटकारा होना भी बड़ा कठिन दिखाई देता है।''

''ऐसा मत कहो, जिनका आत्म–बल मजबूत हो जाता है, उनके सामने समय आने पर दुष्ट राजा या उसकी बली सेना का भी असर नहीं पड़ता है।''

उसने धीरे से पूछा–''क्या तुमने उस सती के कभी दर्शन किये हैं ?'

''हां–हां, कई बार। यह सामने जो गोखड़ा दिखाई देता है, कई बार वह उसी से उद्यान की तरफ सूनी आंखों से न जाने क्या देखती रहती है या किसी की प्रतिक्षा करती रहती है।''

''तब तो मुझे भी उस पवित्र आत्मा के दर्शन करा दो ताकि मेरा जन्म सफल हो जाय।''

''अरे अभी लो। थोड़ी देर में सती इसी सामने वाले गोखड़े में दिखाई दे सकती है जरा उधर दृष्टि डालते रहना। तुम्हारा भाग्य होगा तो अवश्य दर्शन हो जायेंगे।

अब तो उस माली की दृष्टि की बात तो छोड़िये वृक्ष के नीचे बैठे हुए श्रीकान्त की दृष्टि उस गोखड़े पर एकटक जम गई। उसकी उत्कंठा कंठ तक पहुंच गई कि अब उसका भाग्य क्या दृश्य दिखाता है ?

संकट का एक मोर्चा टल जाने के बाद भी मंजुला की आशंका कुछ अधिक बढ़ गई थी कि उसके द्वारा उस दिन तिरस्कृत होने के बाद राजा न जाने आगे क्या करने की सोच रहा हो ? वह किस समय आकर क्या करने को उतारू हो जाय– उसका अनुमान लगाना कठिन था, क्योंकि जिसका मन वश में न हो उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान ही कहां कहता है ?

बैठे–बैठे उसे यह भी विचार आया कि उसके पारिवारिक जीवन का क्या हाल हो रहा है ? कहां उसके पतिदेव होंगे, वे क्या सोच रहे होंगे और उसके लिए क्या कर रहे होंगे ? श्रीपुर पहुंच कर जब सारी बात उनके सामने आई होगी तो फिर क्या वे वहां रुके थोड़े ही होंगे ? उसे अवश्य ही वे जगह–जगह खोज रहे होंगे– क्या ऐसा संयोग नहीं मिल सकता कि वे इधर ही आ जावें और दोनों का सुखद मिलन हो जाय। फिर तो उसके छुटकारे का भी वे कोई कारगर उपाय कर सकेंगे।

और उसका नवजात शिशु– क्या हुआ होगा उसका ? उस घने वन में क्या वह रक्षित रह सका होगा ? लेकिन ऐसा सौभाग्यशाली बालक, निश्चित रूप से आयुष्वान् भी होगा, पर कहां वह पल रहा होगा और कैसे रह रहा होगा ?

तरह–तरह के विचार उसके हृदय में उठ रहे थे–उसकी सासूजी और ननद और उसके पति यदि उसे घर से खोजने निकल गये होंगे तो अकेले क्या करते होंगे ? किसी का कोई समाचार नहीं। सारा परिवार जैसे टुकड़े–टुकड़े अलग–अलग हो गया था। सभी जैसे क्षर भर के लिये मिले और ऐसे विलग हुए कि मिलने का कोई अतापता ही नहीं है।

शंकाओं–आशंकाओं से मंजुला का मन घिरा हुआ था फिर भी हृदय के तले से जैसे एक अज्ञात खुशी महसूस हो रही हो–ऐसा उसे लगा, लेकिन यह समझना कठिन था कि वह खुशी किस बात की हो सकती है ? विचारों की ऐसी उधेड़बुन में वह हमेशा की तरह अपने कक्ष से बाहर निकली और कुछ खुलेपन में हल्की हो जाने की इच्छा से गोखड़े में आकर खड़ी हो गई। उसकी दृष्टि उद्यान की तरफ न होकर ऊपर खुले आसमान की तरफ थी, बल्कि सच पूछें तो वह किसी भी तरफ नहीं थी– अपने ही भीतर में डूबी हुई और बाहर अनन्त में खोई हुई थी। अतः नीचे से देखने वाला यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वह किस ओर देख रही है ?

नीचे उद्यान में दो जोड़ी आंखें गोखड़े में इस आशा से बारबार देखती जा रही थी कि सती के दर्शन हो जाय, किन्तु ऊपर की आंखों से भी अधिक व्यथित नीचे से गोखड़े को एकटक निहार रही दो दूसरी आंखें एकदम उस ओर केन्द्रित हो गई।

''बन्धु, देखो सती पधार गई हैं, जी भर कर दर्शन करलो।''

''अवश्य–अवश्य, ऐसा पुण्यलाभ शुभ भाग्योदय से ही होता हैं''–और दोनों मालियों ने वहीं से हाथ जोड़ कर सिर झुका लिया, बिना यह देखे कि सती का ध्यान उनकी तरफ गया है या नहीं।

परन्तु श्रीकान्त अपलक देखता रहा– क्या यह 'सती' मंजुला ही है ? उसका मंजुला से विवाह हुए लम्बा अर्सा बीत गया था, किन्तु उसके साथ उसका घनिष्ठ परिचय आखिर कितना था ? उस रात की मंजुला और अभी देख रही मंजुला में भी कितना अन्तर आ गया था ? वह अपनी गहरी नजर से देखता रहा– आंखों को जैसे अद्‌भुत आनन्द मिल रहा था तो दिल में खुशी की लहर उठ रही थी। उसके मस्तिष्क ने कम भी कहा हो लेकिन उसके मन ने जैसे उसे साफ–साफ कहा कि यह मंजुला ही है।

और अचानक मंजुला की दृष्टि भी वृक्ष से उतर कर श्रीकान्त के मुख पर गिरी तो श्रीकान्त ने भी अनुभव किया कि उसकी अपेक्षा मंजुला ने उसे जल्दी पहिचान लिया है। कुछ पल तो वह सुध–बुध सी खो बैठी। क्या उसका सौभाग्य इस तरह जाग गया है कि उसने ध्यानपूर्वक पतिदेव का स्मरण किया और पतिदेव के साक्षात् दर्शन हो गये। उसके नेत्रों से टप्‌टप् आंसू झरने लगे।

कब के बिछुड़े और अतुल व्यथा का भार ढो रहे पति–पत्नी का दृष्टि मिलन हो गया था।

X X X

दृष्टि मिली तो प्राण सजग हुए और शक्तिशाली की कैद से छूटने की आशा का दीप जल उठा। मंजुला ने श्रीकान्त को कुछ ठहरने का संकेत दिया और भीतर की तरफ भागती सी गई।

समस्या थी कि आतुर पति के पास अपनी व्यथा का सन्देश कैसे पहुंचाऊं ? और कोई साधन तत्काल उसे दीखा नहीं और वह इस रहस्य को किसी को भी प्रकट करने की इच्छुक नहीं थी। उसने एक सफेद वस्त्र निकाला और उसे सामने फैला दिया। सुई चुभोकर एक पात्र में अपना कुछ खून इकट्ठा किया और उसमें अपने तीखे से नख को डूबो–डूबो कर उस वस्त्र पर लिखने लगी अपने मन का निचड़ा हुआ सार संक्षेप। उस सन्देश में वह कुछ ही शब्दों में भूत, वर्तमान तथा भविष्य के तीनों काल का समोवश कर लेना चाहती थी। उसने आकस्मिक हर्ष और पीड़ा से थर–थर कांपते हुए हाथों से लिखा–

''दासी का प्रणाम । कथा लम्बी चौड़ी है, मिलने पर निवेदन करूंगी। अभी तो राजा की कैद से मुझे छुड़ाना है। बड़ी कठिन समस्या है, लेकिन आप पधार गये हैं तो सब कुछ सम्भव हो जायगा। आप पूरी सावधानी से उपाय सोचें और मुझे निर्देशित करें। मुझे आपके दर्शनों से अपार हर्ष हो रहा है। आपकी–मंजुला'

जल्दी–जल्दी उसने वह वस्त्र समेटा और उसके साथ एक छोटा सा कंकर बांधा ताकि वस्त्र को यथास्थान फेंका जा सके। वह फिर से गोखड़े में चली आई। उसकी अश्रुधारा तब भी बराबर बह रही थी।

चारों ओर उसने ध्यान से निगाह घुमाई कि कहीं कोई देख न रहा हो और सावधानी से वस्त्र को श्रीकान्त की तरफ फेंक दिया–श्रीकान्त के मुख मंडल को परम भक्ति और प्रेम से निहारते हुए। उसके सजल नेत्र जैसे श्रीकान्त के उत्सुक नेत्रों में प्रविष्ठ होकर एकरूप हो गये थे।

श्रीकान्त ने तुरन्त उस वस्त्र को याने कि अपनी हृदयश्वेरी के खून से लिखे सन्देश को उठा लिया और एक ही सांस में पूरा पढ़ लिया। मंजुला की वर्तमान स्थिति का विस्तार से ज्ञान उसे वार्तापालों से हो ही चुका था, अतः उसने संकेत ही संकेत में मंजुला को समझा दिया कि अब निश्चित हो जाय और सावधान रहे–शीघ्र ही वह उसकी मुक्ति का सफल उपाय कर लेगा।

❑❑❑

# १८
# चन्द्रनगर में 'योगिराज' पधारे

जिन दिनों महाराजा जयशेखर की पराजय एवं चारित्रिक पतन की चर्चाएं चन्द्रनगर की जनता में चल रही थी, उन्हीं दिनों जनता को एक शुभ समाचार भी मिला कि नगर के बाहर एक उद्यान में बहुत ही पहुंचे हुए योगिराज पधारे हैं। लोगों ने सुना कि उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व सामने आने वाले को सहज ही में अभिभूत कर लेता है। उनकी साधना भी इतनी ऊंची श्रेणी की है कि उससे उनको कई प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हैं। वे अपने आत्मबल से किसी के भी मन में रही हुई इच्छा तो ताड़ लेते हैं और उसके किसी भी प्रकार के मनोरथ को पूर्ण कर देने की क्षमता रखते हैं।

योगिराज की इन चर्चाओं से पुरानी चर्चाएं दब सी गई और सारे नगर का ध्यान योगिराज की तरफ मुड़ने लगा। लोगों ने यह भी सोचा कि यदि योगिराज के पुण्य प्रताप से राजा जयशेखर को सद्‌बुद्धि आ जाय और वह पतिव्रता सती को मुक्त कर दें तो राज्य का सौभाग्य भी फिर से जाग उठे। भविष्य में हो सकता है कि फिर कभी इस राज्य को पराजय का मुंह भी नहीं देखना पड़े। इस दृष्टि से समग्र जनता ने योगीराज के आगमन से राहत की सांस ली। तब प्रतिदिन का यह कार्यक्रम हो गया कि झुण्ड के झुण्ड नर नारी बड़े सवेरे से योगी के दर्शनों के लिए जाते रहते।

लोगों को योगीराज के दर्शन मात्र कर लेने से ही संतोष रखना पड़ता था, क्योंकि योगीराज निरन्तर अपनी योग साधना में तल्लीन रहते थे। लोगों को यह भी पता नहीं चलता था कि योगीराज कब उठते–बैठते और खाते सोते हैं अथवा अन्य क्रियाओं से निवृत्त होते हैं। वे यही समझने लगे कि योगीराज बराबर ध्यानस्थ रह कर किसी और ऊंची साधना में जुटे हुए हैं और इस समझ से उनके प्रति लोगों की श्रद्धा अपार रूप से बढ़ गई।

योगीराज की इस प्रकार की प्रशंसा जब राजा जयशेखर के कानों तक पहुंची तो उसने भी अपने विकारी मन में सोचा कि ऐसे महान् योगीराज उसके मनोरथ को भी पूरा कर सकते हैं। वह अनुभव कर रहा था कि मंजुला

के बढ़ते हुए आन्तरिक तेज के सामने उसका ठहर पाना कठिन हो गया है, इस कारण किसी अन्य प्रभाव की सहायता से ही उसके मन को अपनी ओर मोड़ा जा सकता है। उसका भाग्य काम कर जाय तो योगीराज के प्रभाव से उसका मामला बैठ सकता है। योगीराज बहुत पहुंचे हुए हैं तो कई तरह के तन्त्र मन्त्र भी जानते होंगे और उनके प्रयोग से वे मंजुला के दृष्टिकोण को बदल सकते हैं।

जिसकी जिस तरह की भावना होती है उसी रूप में वह सामने वाले को देखता है। एक ठाकुरजी के मन्दिर में सज्जनों और भक्तों के अलावा अगर दुर्जन चोर डाकू आदि भी पहुंचते हैं तो वे ठाकुरजी से अपने मन की बात ही पूरी करने की कामना करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि ठाकुरजी से अपने पतित जीवन को पावन बनाने की कामना करें। इसी प्रकार योगीराज के दर्शन करने की इच्छा करने के साथ राजा जयशेखर ने भी यह कामना नहीं कि कि वह योगीराज के सान्निध्य में जाकर जीवन के अपने विकारों को नष्ट करने और उसे सुकृत्य में लगाने की चेष्टा करें।

जयशेखर ने निश्चय किया कि वह योगीराज के समीप जाकर उन्हें अपने मन की बात कहेगा तथा आग्रह करेगा कि वे उसे पूरी कराने में पूरी सहायता करें। किन्तु वह लोगों के उनके पास रहते अपनी वैसी मनोकामना को प्रकट नहीं कर सकता था। इसलिए उसने अपने जासूसों को बुलाया और निर्देश दिया कि वे जांच करके योगीराज के अपने स्थान पर एकाकी होने की सूचना तुरन्त उसे पहुंचावें।

X X X

''योगीराज, मैं इस चन्द्रनगर का राजा आपको प्रणाम करता हूं .....'' योगीराज तो अपनी योग–साधना में ही तल्लीन रहे जबकि राजा को उनकी प्रतीक्षा में खड़े रहना पड़ा। वास्तव में जब आप मन की किसी कामना के वश में हों और उसकी पूर्ति की किसी से याचना करना चाहें तो उस समय में न भक्ति होती है और न साहसिकता। उस वक्त तो 'गर्ज बिचारी बावली' ही सिर पर चढ़ी रहती है।

उस समय उद्यान के उस भाग में योगीराज एवं जयशेखर के अलावा अन्य कोई नहीं था। राजा अपने अनुचरों को बहुत दूर ही छोड़ आया था और उन्हें यह भी आज्ञा दे आया था कि वे किसी एक को भी उधर न आने दें। योगीराज ध्यान मुद्रा में बैठे हुए थे और राजा सामने हाथ बांधे खड़ा था।

इस तरह काफी समय बीत गया किन्तु राजा की हिम्मत योगीराज को पुकार लगाने की नहीं हुई। वह डर रहा था कि यदि किसी भी कारण से योगीराज कुपित हो गये तो उसका सोचा सोचाया हुआ काम मिट्टी हो जायगा। तभी योगीराज ने धीरे–धीरे अपने नेत्र उघाड़े और रुखे स्वर में पूछा–

''तुम कौन हो और यहां क्या कर रहे हो ? क्या हमारी साधना भंग करना चाहते हों ?''

राजा थरथर कांपने लगा और अनुनय के स्वर में बोला– ''क्षमा करें योगीराज, मैं तो आपके दर्शन के लिए उपस्थित हुआ हूं। मैं इस नगर का राजा जयशेखर हूं। आपकी सेवा भक्ति करके आपको प्रसन्न करना चाहता हूं। मुझे आज्ञा दीजिये, भगवन ?'

''अच्छा, आप यहां के राजा हैं। हम यहां उद्यान में बहुत प्रसन्न हैं। हमें किसी वस्तु की जरूरत नहीं है।'

''मैंने सुना है योगीराज कि आपकी योग साधना बहुत ही ऊंची श्रेणी की है और आपकी कृपा हो जाय तो कोई भी मनोरथ सिद्ध हो सकता है।''

''क्यों तुम भी कोई मनोरथ लेकर आये हो मेरे पास है ?''

''हां प्रभु, मेरा आपसे एक निवेदन है।''

''कहने की जरूरत नहीं हम जानते हैं। तुम किसी को अपने वश में करके ''अपनी' बनाना चाहते हो ?''

'सत्य है भगवन् सत्य है। आप तो परम ज्ञानी हैं, परम सिद्ध हैं। मेरा मनोरथ अवश्य पूरा कर दीजिये योगीराज !'' राजा हर्षातिरेक से गद्‌गद् हो रहा था।

''जाओ हमने कह दिया, तुम्हारा मनोरथ पूरा हो जायगा लेकिन उसके लिए एक काम करना होगा।''

''बताइये योगीराज, मैं तैयार हूं।''

''सुनो तो, जिसे आप अपनी बनाना चाहते हो उसे मेरे पास लेकर आओ। उसके दिल और दिमाग को आपकी तरफ मोड़ने के लिए मुझे कुछ तांत्रिक प्रयोग करने पड़ेंगे। पुरुष नहीं समझ सकता कि नारी के दिल में कितनी तरह के कैसे–कैसे तूफान उठा करते हैं। उन तूफानों को थामना और उसके दिल में नये प्रेम का झरना बहाना आसान काम नहीं है। तंत्र के प्रयोग

से ही इस काम में सफलता मिल सकेगी।''

जयशेखर ने बहुत ही नरम पड़ कर निवेदन किया–''आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरा एक निवेदन भी आपको मानना होगा।''

''वह क्या ?'

''योगीराज, मैं जिसको चाहता हूं उस सुन्दरी को यहां लाना उचित नहीं रहेगा और यहां तो हर वक्त लोगबाग आपके दर्शनों के लिए आते रहते हैं इसलिए आप अपना तंत्र प्रयोग राजभवन में पधार कर ही करें– यह मेरी प्रार्थना है''

''योगी लोग राजभवन में जाना पसन्द नहीं करते। उनके लिए राजा और प्रजा सब बराबर होते हैं, तुम्हें अपना काम करवाना है तो उसे लेकर यहीं आ जाओ।''

''ऐसा नहीं योगीराज, मुझ पर यह कृपा भी अवश्व कीजिये कि आप वहीं पधारें, एकान्त में तन्त्र प्रयोग करें और मेरे सौभाग्य को संवारने का अनुग्रह करें।''

''राजा, हम इस बारे में अभी कुछ नहीं कह सकते। हमारा ध्यान करने का समय हो गया है, अब आप जा सकते हैं। अब कल इसके लिए इसी वक्त मिलें।' इतना कह कर योगीराज पुनः ध्यानमग्न हो गये और जयशेखर को विवश होकर राजभवन लौट जाना पड़ा।

X X X

राजभवन पहुंचकर जयशेखर चिन्ता में डूब गया कि इन योगीराज से अपनी बात मनवाना बहुत मुश्किल लगता है। योगी हकीकत में बहुत पहुंचे हुए ही मालूम होते हैं, इसी कारण वे राजा तक की परवाह नहीं कर रहे हैं। परन्तु मुझे तो किसी भी तरह झुक–झुकाकर भी अपना काम बनाना है। किसी भी तरह योगीराज को राजभवन में ही लाना होगा क्योंकि मेरे कहने से मंजुला किसी भी दशा में योगीराज के पास उद्यान में चलने को तैयार नहीं होगी और मंजुला से कोई भी काम बलात् करा पाना सम्भव नहीं दीखता है। उसे रात भर नींद नहीं आयी और वह इसी समस्या को उधेड़ता बुनाता रहा कि वह योगीराज को ही राजभवन में आने के लिए राजी करे।

दूसरे दिन समय होते ही राजा उद्यान की ओर चल पड़ा। उसे यह देखकर प्रसन्नता हुई और आशा बंधी कि तब योगीराज ध्यानस्थ नहीं एवं

खुले नेत्रों से अकेले ही बैठे हुए थे मानो उसी के आने की प्रतीक्षा कर रहे हों।

राजा उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर सामने खड़ा रहा।

''हमने आपकी प्रार्थना पर विचार किया है और हमने आपके सम्मान की नजर से राजभवन में चल कर ही तन्त्र प्रयोग करने को उचित समझा है। इस वास्ते हम चलने को तैयार हैं।''

राजा तो खुशी के मारे जैसे एकदम उछल पड़ा। उसे इतना ही अनुमान नहीं था कि योगीराज उसे यों तैयार मिलेंगे। उसे पक्का विश्वास हो गया कि उसके हाथों उसका मनोरथ अवश्यमेव पूरा हो जायगा।

राजा ने तब अपने अनुचरों को बुलाया और पूरे राजकीय सम्मान के साथ वह योगीराज को राजभवन की ओर ले चला।

❑❑❑

# १६

# योगीराज ने मनोरथ पूर्ति का बीड़ा उठाया

राजा जयशेखर के साथ जब योगीराज का पदार्पण राजभवन में हुआ तो वहां सब ओर हलचल सी मच गई। रनिवास में आतंक जैसा वातावरण छा गया तो दासियां एक दूसरी के कानों में फुसफुसा कर अजीब–अजीब बातें करने लगीं। मुख्य कक्ष में योगीराज को बिठाकर उनका सम्मान किया गया। फिर राजा और योगीराज अकेले में बैठकर मंत्रणा करने लगे।

मंजुला को भी योगीराज के समाचार मिले तो वह चौंकी कि राजा अब उस पर मंत्र या तंत्र बल का प्रयोग करवाना चाहता है। इस आशंका से उसे भय की अनुभूति हुई, फिर भी उसे एक प्रकार की निश्चिन्तता का भी अनुभव हो रहा कि अब जो कुछ भी होगा, उस पर उसका श्रीकान्त अवश्य ही अपनी नजर रख रहा होगा। श्रीकान्त के सम्बल से उनके मन में विशेष बल जो पैदा हो गया था।

''क्या यही वह सुन्दरी है, राजा जिसे आप अपने वश में करना चाहते हैं ?'' राजा द्वारा दूर से मंजुला की ओर संकेत करने पर योगीराज ने पूछा। राजा योगीराज को मंजुला के कक्ष की ओर ही ले जा रहा था।

घनी सफेदझक दाढ़ी मूछों से ढके चेहरे वाले सफेद वस्त्र ही पहने योगीराज को भी जब मंजुला ने दूर से देखा तो वह सहम उठी कि उसे पूरी सतर्कता से व्यवहार करना होगा, कारण कौन जाने राजा के सिखाये–सिखाये यह सन्यासी उसके साथ कैसा सलूक करे ?

जयशेखर और रोगीराज दोनों साथ–साथ चलते हुए मंजुला के कक्ष में प्रविष्ठ हुए तो सभी दासियां राजा के संकेत पर वहां से उठकर बाहर चली गई। तब योगीराज ने राजा की तरफ मुड़कर कहा–

''यह स्थान ठीक है राजा, मैं मंत्र जाप यहीं शुरू करूंगा, किन्तु मन्त्र जाप के समय यहां इस सुन्दरी के अलावा और कोई भी नहीं रह सकेगा आप

भी नहीं। बस मैं और यह सुन्दरी ही आपने सामने रहेंगे और मुझे अपनी तांत्रिक क्रियाएं पूरी करनी पड़ेगी।'

यह सुनकर राजा भी चौंका किन्तु अधिक चौंकी मंजुला। उसने तेजी के साथ कहा–''महात्माजी, आपको जो भी प्रयोग करना हो, सबके सामने ही कीजिये, एकान्त में करने की कोई आवश्यकता नहीं है आपका स्त्री के साथ एकाकी रहना क्या उचित है ?''

ऐ मूर्ख स्त्री ! तू हमें पहिचानती नहीं, हम योगीराज हैं। हमने वासना को जीत लिया है। हमारे लिये तुम्हारी सुन्दरता को कोई मतलब नहीं है। हमें तो इस राजा पर तरस आ गया और उसकी मदद करने के लिये ही हम यहां आये हैं। तुम हम से निर्भय रहो। लेकिन मंत्र पाठ तो विधिपूर्वक ही करना होगा और उसमें किसी तीसरे की उपस्थिति सह्य नहीं होती है।''–कहते हुए तरकीब से योगीराज ने भरपूर नजर से मंजुला की आंखों में गहराई से झांककर देखा और उसे इशारे से ही इशारे में सारा रहस्य समझा दिया।

X X X

जब योगीराज और मंजुला ने ऐसी चतुराई से नाटक खेलना शुरू किया कि अपने को बुद्धि–शक्ति से बली समझने वाला जयशेखर भी पूरी तरह से बुद्धू बन गया।

''मैं क्षमा चाहती हूं योगीराज कि मैंने आप जैसे पहुंचे हुए महात्मा पर शंका करने की धृष्टता की। एक साधारण स्त्री को आपकी महान् योग साधना का भला क्या ज्ञान हो सकता है ? मेरे ध्यान में तो रावण की बात आ गई थी, जिसने धोखा देने के लिये साधु का वेश धारण करके सीताजी का अपहरण कर लिया था– बहुत ही सहमते हुए मंजुला ने उत्तर दिया।

योगीराज ने भी अपना ठप्पा लगाया–''कोई बात नहीं देवी, हम तुम्हारी सतर्कता से प्रसन्न हुए हैं। तुम बुद्धिशालिनी हो– इसमें कोई सन्देह नहीं है। मेरे प्रति तुम कोई अन्यथा चिन्तन मत करना। मैं जो कुछ प्रयोग करूंगा, वह सब तुम्हारी भलाई के लिए ही करूंगा।' फिर उन्होंने राजा की तरफ देखकर कुछ संकेत किया कि राजा भीतर ही भीतर आशा से भर उठा। ऐसी कठोर स्त्री यदि इस तरह नरम हो गई है तो यह स्पष्ट रूप से योगीराज का ही प्रभाव है और अब इन्हीं योगीराज के प्रभाव से ही उसका काम बन सकेगा ऐसा मंजुला के स्वभाव में तत्क्षण आये परिवर्तन को देखकर राजा को विश्वास होने लगा।

राजा को यह भी विश्वास होने लगा कि इस योगीराज की वाणी का ही जब यह प्रभाव सामने आया है तो इनके मंत्र जाप और तन्त्र प्रयोग का तो निश्चित रूप से परिणाम उसके अनुकूल निकलने ही वाला है।

''अब मैं दो घड़ी तल्लीनता से मन्त्र जाप शुरू करना चाहता हूं इसलिये महाराज आप भी बाहर जाइये। कठोर आज्ञा दे दें कि कोई भी इधर आने की और जाप में किसी तरह का विघ्न डालने की हिम्मत न करे। जाप जितना निर्विघ्न होगा, परिणाम उतना ही सुखद निकलेगा।'' जब योगीराज ने गम्भीरतापूर्वक कहा तो राजा को वहां से हटना ही पड़ा। फिर भी राजा के मन में कुछ शंका उठी अतः वह ऐसे स्थान से छिप कर देखने लगा जहां से वह उन दोनों को देख सकता था किन्तु वे उसे नहीं देख सकते थे।

राजा देख रहा था कि योगीराज ने बिना एक भी बार मंजुला की ओर देखे वहां अपना आसन बिछाया, आवश्यक सामग्री यथाविधि जमाई तथा आंखें बन्द करके मंत्र जाप आरम्भ कर दिया। उनके ठीक सामने मंजुला बैठी हुई थी किन्तु उसकी आंखें भी नीचे जमीन की तरफ झुकी हुई थीं। योगीराज बन्द नेत्रों से मन्त्र पाठ करते जा रहे थे और कभी कुंकुम तो कभी पुष्प मंजुला की तरफ फैंकते जा रहे थे। राजा को अपनी शंका निर्मूल लगी– इसलिये वह वहां से उठकर चला गया। किसी तरह के विघ्न से प्रयोग असफल न हो जाय इस दृष्टि से जाते–जाते राजा ने मंजुला के कक्ष की तरफ से सभी रास्ते यहां तक कि देखे जा सकने वाले बारे तक बन्द करा दिये और किसी को भी उधर न जाने और न देखने तक की सख्त हिदायत कर दी।

काफी देर बाद आसपास की हलचल के आधार पर जब योगीराज को समझ में आ गया कि अब किसी ओर से व्यवधान नहीं है तो उन्होंने हंस कर मंजुला से पूछा–'' प्रिये, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे बन गई ?''

नाथ, यह सब कहने–सुनने में तो दो घड़ी का समय अभी बीत जायगा, क्योंकि दो बिछुड़े हुए प्रेमियों की व्यथा कथा कई घण्टों तक भी पूरी नहीं हो सकेगी। फिर दो घड़ी के बीतने के पहले बीच में कभी राजा वापिस भी आ सकता है अतः अभी तो आपने यहां से मेरी मुक्ति का जो भी उपाय सोचा हो, उसके सम्बन्ध में अभी आवश्यक निर्देश मुझे दे दीजिये।''

''घबराओं मत मंजुले, मैं पूरी तरह से सावधान हूं। मैंने तुम्हारी मुक्ति का उपाय भी निश्चित कर लिया है। अब तुम्हें बहुत ही कुशलता से जयशेखर के साथ नाटक खेलना है। तुम यह जताओगी कि मेरे जाने के बाद मेरे प्रयोग

से तुम राजा की ओर पूरी तरह से आकर्षित हो गई हो और कल पीछे वाले उद्यान में टहलते–टहलते उसे पटरानी बनने का अपना निर्णय सुनाने को कहोगी। मैं तुम्हें चूर्ण की एक पुड़िया दे रहा हूं जिसे तुम वहां उद्यान के एकान्त में किसी पेय पदार्थ में घोलकर प्रेम के स्वांग के साथ राजा को पिला देना जिससे वह तुरन्त तीन चार घन्टे के लिए बेहोश हो जायगा। तब तुम उद्यान के दक्षिणी फाटक पर पहुंच जाना–वहां मैं घोड़ा लिए तैयार मिलूंगा।

यह कहकर योगीराज उर्फ श्रीकान्त ने चूर्ण की पुड़िया मंजुला को दे दी जिसे उसने उसी समय अपनी साड़ी की किनारी पर बांध दी। श्रीकान्त ने मंजुला को फिर सावधानी दी–''देखो, तुम्हारा सारा व्यवहार इतनी चतुराई से होना चाहिए कि राजा को या किसी दूसरे को भी तनिक आशंका न हो कि आगे क्या होने वाला है ? तुम सफलतापूर्वक ज्योंही दक्षिणी फाटक पर पहुंचोगी कि तुम राजा की कैद से मुक्त हो जायोगी। फिर हम दोनों घोड़े पर सवार होकर हवा से बातें करते हुए दूर चल पड़ेंगे।'' मंजुला ने हामी भरी और दोनों अपनी–अपनी चतुराई से आश्वस्त होते हुए निश्चिन्त हो गये।

मंत्र जाप का दो घड़ी का समय बीतने को था अतः योगीराज और मंजुला पूर्व स्थिति में आ गये तथा मंत्र जाप का क्रम पूर्ववत चलने लगा।

तभी हर्ष से उल्लासित होता हुआ राजा जयशेखर वहां आ पहुंचा। वह तो उस मंत्र जाप के प्रभाव को जानने के लिए बड़ा ही आतुर हो रहा था। उसने तो दो घड़ी का वक्त भी बड़ी आकुलता और व्याकुलता से व्यतीत किया था कि कब समय पूरा हो और कब वह अनुकूल बनी मंजुला से भेंट करे ? राजा ने जब देखा कि योगीराज और मंजुला यथावत ध्यान मुद्रा में बैठे हुए हैं एवं विधिपूर्वक मंत्र जाप चल रहा है तो उसे बहुत सन्तोष हुआ।

योगीराज ने जाप समाप्त करके आंखें खोली तो देखा कि राजा खड़ा है। राजा ने झुककर प्रणाम किया और पूछा–

''योगीराज, मंत्र जाप कैसा रहा ? क्या मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायगा ? क्या इस सुन्दरी के हृदय में मेरे लिये अनुकूलता का भाव जागा है ? मुझे जल्दी बताइये, मैं जानने के लिये बहुत ही उत्सुक हो रहा हूं।''

योगीराज ने मधुर–मधुर मुस्कान के साथ कहा–'' राजा, कुछ तो धीरज रखो। अभी–अभी मन्त्र जाप सम्पन्न हुआ है और आप इस सुन्दरी की मुखाकृति को देखकर कुछ तो अनुमान लगा ही सकते हो।'

जयशेखर ने मंजुला के मुख को ध्यानपूर्वक देखा तो उसे महसूस हुआ कि अब उस चेहरे पर रोष तनिक मात्र में भी मौजूद नहीं था जो उसे हमेशा दिखाई देता था, बल्कि प्रसन्नता की हल्की–हल्की लहरें तैर रही थीं। राजा अभिभूत सा मंजुला के मुख को देखता रहा।

वह ऐसा समय था जब वहां उपस्थित तीनों प्राणी– योगीराज, मंजुला और जयशेखर अपने–अपने ढंग से सभी परम प्रसन्न थे। जयशेखर को पूरा विश्वास हो गया था कि अब मंजुला सदा–सदा के लिए उसकी हो जायगी।

राजा ने अपना आभार प्रकट करने के लिये बहुविध भेंटें मंगाई और योगीराज के चरणों में रखीं। फिर उसने निवेदन किया– ''योगीराज, आपके मंत्र जाप का परिश्रम आशाजनक लग रहा है और इसके लिए मैं आपका सदा आभारी रहूंगा। ये कुछ भेटें हैं जिन्हें स्वीकार करके मुझे अवश्य कृतार्थ करें।''

तब क्रोध दिखाते हुए योगीराज ने पूछा–''मैं इन बहुमूल्य भेंटों का क्या करूंगा, राजा ? हम तो सन्यासी हैं, हमें क्या माया से कोई मोह है ? हम तो लोभ छोड़ चुके हैं। जाओ, इन्हें किसी परोपकार में लगा देना।''

जयशेखर योगीराज की निर्लोभ वृत्ति से और अधिक प्रभावित हो गया और लज्जित भी हुआ कि उसने उन्हें भेटें देने की चेष्टा क्यों की ? भाववेश में उसने योगीराज के चरण पकड़ लिए। पैरों को झटका देकर वे जाने लगे तो गिड़गिड़ाकर राजा ने कहा–'' आप मुझे क्षमा कर दीजिये।'' योगीराज तो झल्ला उठे–'राजा आपका काम हो गया, अब और क्या चाहिये ?'' कहते हुए अकेले ही राजभवन से बाहर निकल पड़े और तेजी से चलने लगे।

राजा ने कहा–''योगीराज, आप गलत दिशा में जा रहे हैं– आप वाला उद्यान तो दूसरी तरफ है।' राजा को उनकी नाराजगी का दुःख हो रहा था।

''मुझे अब यहां पल भर भी नहीं ठहरना है। मैं दूर–बहुत दूर चला जा रहा हूं'' और योगीराज चलते ही चले गये।

राजा भी अव्यक्त हर्ष के साथ राजभवन में मंजुला के कक्ष की ओर बढ़ चला।

❑❑❑

# २०
# वासना के अपने ही जाल में फंसी मकड़ी

संसार में आत्माओं को बांधे रखने वाला मुख्य बन्धन मोह का होता है और मोह को पूरी तरह मेट देने का नाम ही मोक्ष है। मोह–बंध में भी मुख्य कारण काम को माना गया है। कामवासना की प्रबलता ने आगे बड़े–बड़े ऋषि–मुनि भी पराजित होते बताये गये हैं। यही कारण है कि काम–जय को आत्म–जय का रूप दिया गया है। जो काम को जीत लेता है, वह सब कुछ जीत लेता है और आत्म विजेता बन जाता है।

परन्तु जो अपने मन को वश में नहीं कर पाता और कामवासना के अंधड़ में अपने आप को अनियंत्रित छोड़ देता है, वह संसार की नुकीली चट्टानों से टकरा–टकरा कर कितना आत्म हत हो जाता है, उसका स्वयं को भी भान नहीं रहता। काम–मोह से उत्पन्न राग और द्वेष के बहाव में वह इस संसार सागर में गोते खाते ही रहता है। सच पूछें तो काम–मोहित आत्मा की दशा उस मकड़ी की तरह हो जाती है जो खुद ही जाला बुनती है और खुद ही उसमें फंस कर तड़पती रहती है।

राजा जयशेखर की दशा भी जब वह योगीराज को छोड़कर मंजुला के कक्ष की ओर आगे बढ़ रहा था तो वैसी ही हो रही थी जैसी कि अपने ही जाले में फंसी मकड़ी की होती है। जयशेखर का यह जाला अपनी ही अनियंत्रित वासना का जाला था। वह मन ही मन खुश होता हुआ सोचा रहा था कि योगीराज वास्तव में बड़े चमत्कारिक थे और उनकी तंत्र साधना का मंजुला पर बड़ा ही अनुकूल असर हुआ होगा। एक प्रकार से उसे अपनी सफलता का पक्का अनुमान हो रहा था। उसके विचारों में उस समय काम–मोह उसके सम्पूर्ण मन मस्तिष्क पर घना होकर छाया हुआ था।

मंजुला के कक्ष में प्रवेश करते ही जब राजा ने मंजुला के प्रसन्न बदन को देखा तब तो उसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। एक बार तो उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु उसने इसे

योगीराज की सफलता के रूप में ही स्वीकार की। तब भाव–विभोर होकर राजा ने मधुर मुस्कुराहट के साथ पूछा–

''सुन्दरी, आज तो तुम बहुत प्रसन्न हो न ?''

मंजुला ने भी सुर में सुर मिलाकर निर्दोष भाव दिखाते हुए उत्तर दिया– ''हां राजन्, आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। आपकी कृपा से भला मेरी प्रसन्नता में कोई कमी रह सकती है ?''

'' यदि तुम इसी तरह पहले ही प्रसन्न हो जाती देवी, तो आज तक कितना आनन्द बढ़ा हुआ रहता ? आज तक तो हम दोनों आनन्द सागर में निमग्न हुए होते।''

''बीती बातों को छोड़िये महाराज और अब वर्तमान को सोचिये कि क्या करना है और क्या नहीं करना है। इतने समय तक मेरा मन भ्रान्ति के वशीभूत था और भय से भीत भी था अतः मैं अपना कर्त्तव्य निर्धारित नहीं कर पाई तथा वैचारिक उलझनों में उलझी हुई रही। भला हो इस महात्मा का, जिसने मेरे विचारों को सही मोड़ दे दिया और अब मेरे सामने किसी तरह की अनिश्चिता नहीं है''– मंजुला ने जैसे खुलकर कहा।

''सच ! क्या उन योगीराज की बदौलत ही तुम्हें सही रास्ता दिखाई दिया ?''–राजा को अपने प्रयत्न पर सचमुच बड़ी खुशी हुई।

''हां राजन्, पहले मैं बराबर सोच रही थी किन्तु कौनसा रास्ता लेना चाहिये– यही तय नहीं कर पा रही थी। परन्तु जब महात्माजी ने मंत्र–जाप किया तो मेरे मन के ऊपर जो भय का पर्दा फैला हुआ था वह हट गया और अब मैं आनन्द का अनुभव कर रही हूं''–मंजुला ने कहा तो राजा योगीराज के चमत्कार को फिर से वाह वाह कर उठा।

मंजुला कहती रही–''मैं इस संसार की विचित्र दशाओं में उलझ गई थी और संसार का सुहानापन भूल गई लेकिन अब मैं संसार की इन परिस्थितियों में सुहावना स्वप्न देखने लगी हूं और चाहने लगी हूं कि आनन्द का रसपान करूं।'

आनन्द के रसपान की बात और वह भी मंजुला के मुंह से सुनकर जयशेखर का दिल बड़ी तेजी से धड़कने लगा। भावावेश में वह कहने लगा–

''क्या सचमुच तुम सुहावना स्वप्न देखने लगी हो और आनन्द का रसपान करने के लिए उत्सुक हो रही हो ? मैं तो निहाल हो जाऊंगा सुन्दरी !''

''मुझे इसका दुःख है राजन् कि पहले मैं बात–बात पर आपका तिरस्कार कर दिया करती थी और भला–बुरा सुना देती थी क्योंकि उस समय मुझे यथार्थ स्थिति का बोध नहीं था किन्तु अब मुझे सही ज्ञान हो गया है कि मुझे किसी भी आत्मा को कष्ट नहीं पहुंचाना है, दुःख नहीं देना है।''

''काश, तुम मेरी इच्छा को पहले ही समझ लेती तो मुझे इतना कष्ट नहीं भोगना पड़ता।'

''आप सही कह रहे हैं किन्तु काम भी समय आने पर ही बनता है। दूसरे, पुरुष का एक बहुत बड़ा दुर्गुण भी होता है कि वह जल्दी–जल्दी धैर्य खो देता है। वह अपनी इच्छापूर्ति तो चाहता है, लेकिन नारी की इच्छापूर्ति का कोई खयाल नहीं रखता। आपमें भी राजन्, यही बड़ा दुर्गुण था कि मेरा मन आपके विरुद्ध भड़कता रहा। आपने मेरी इच्छाओं की ओर न ध्यान दिया और न उनका मान किया। इस कारण दोनों छोर मिल नहीं सके।''

यही स्पष्टीकरण सुनकर राजा विचार करने लगा और उसे समझ में आने लगा कि मंजुला सही कह रही है। वह तो अपनी ही स्वार्थपूर्ति में अन्धा हो रहा था। फिर भी प्रकट रूप में बोला–

''सुन्दरी, मैंने तुम्हारी कौनसी बात से इनकार किया था ? मैं तो तुम्हारी हर बात मानने को तैयार था। यह जरूर है अपनी जल्दबाजी में मैं तुम्हारे मन को भलीभांति टटोल नहीं पाया और यह नहीं जान पाया कि हकीकत में तुम क्या चाहती थी ?''

''यही बात तो मैं आपको समझाना चाहती हूं महाराज कि आपने बिना सोचे समझे मेरी सारी साधना में बहुत विघ्न डाले। मेरी साधना के उद्देश्य की तरफ ध्यान दिये बिना ही सिर्फ अपनी इच्छापूर्ति पर ही आप अड़े रहे।''

''हां, यह मैं मानता हूं। मुझे तुम्हारी साधना की बातें अच्छी नहीं लगती थी और न मैं उसका उद्देश्य ही समझ पाया। मैंने तो यही समझा कि तुम उस बहाने मुझे टालती जा रही हो।''

''यही तो पुरुष जाति की खराबी है कि वह नारी से उसकी बात नहीं, अपने ही मतलब की बात सुनना चाहता है। क्या यह नारी जाति का अपमान नहीं है ? पुरुषों ने नारी को मात्र अपने मनोरंजन की गुड़िया समझ रखा है। आप खुद अपनी पिछली हरकतों पर ध्यान दीजिये और सोचिये कि आपने

खुश होकर कब मेरी कौनसी इच्छा समझी और उसे पूरी करने की कोशिश की ?''

मंजुला की बातों ने राजा के मन को झकझोर कर हिला दिया। उसने भीतर ही भीतर सोचा तो उसे महसूस हुआ कि दोष उसका ही रहा है। अपने पिछले कुकृत्यों पर लज्जित से होते हुए उसने कहा–

''सुन्दरी, मैं अपने पिछले दोष पर लज्जित हूं। अब जो भी कहो, मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा को पूरी करने के लिए तैयार हूं।

''तो क्या आप इतना भी नहीं समझते कि मेरी क्या इच्छा हो सकती है ?''

''मैं समझा नहीं, देखें ?''

''क्या किसी को अपनी कैद में बन्द करके उसके दिल को अपनी तरफ मोड़ सकते हैं ? आपने कभी सोचा कि मुझे बन्दी बनाकर रखने से क्या मैं आपकी तरफ आकर्षित हो सकती थी ? परतन्त्रता में अविश्वास की भावना होती है और विश्वास के बिना कभी प्रेम का जन्म नहीं होता।''

''तुमने मेरी आंखें खोल दी है देवी, सचमुच बन्दीजन तो विद्रोही हो जाते हैं और जब मैं तुम्हें वर्षों से कैद में डाले हुए हूं तो भला तुम अपने को समर्पित कर देने को तैयार ही कैसे होती ? अब मैं तुम्हारी इच्छा को भली प्रकार समझ गया हूं। तुम अब तो बन्दीपने की बात अपने दिल से निकाल फेंको। मैं तुम्हे प्रकृति की गोद में ले जाकर तुम्हारे मन को आश्वस्त कर देना चाहता हूं कि तुम अब पूरी तरह से स्वतन्त्र हो। बोलो, ठीक है न ?'' राजा ने स्वीकृति चाही।

मंजुला ने जयशेखर की अनुभूति को पुष्ट करते हुए कहा– ''राजन् पशु–पक्षी तक भी प्रकृति की गोद में जब मोद मनाते हैं तो अपने को कितना आनन्दित और स्वतंत्र महसूस करते हैं, फिर मैं तो नारी हूं। नारी के मन को मनाने के लिए ही कितना प्रयास अपेक्षित होता है तो उसके आनन्द और उसकी स्वतन्त्रता के लिये तो काफी गहराई से सोचना चाहिये।''

''बस सुन्दरी, अब कुछ न कहो। मैं सब समझ गया हूं। तुमने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से मेरी विवेक विकलता जान ली है। किन्तु यह तो बताओ कि यह तीक्ष्ण बुद्धि तुम्हें योगीराज के मंत्र–जाप से मिली अथवा अन्य किसी स्रोत से मिली है ?''

''महात्मा का संसर्ग तो दो घड़ी का ही अच्छा होता है महाराज। यह तीक्ष्ण बुद्धि मुझे अपने माता–पिता से संस्कारों में मिली है कि मैं कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धैर्य को संजोये रखूं और धैर्य का फल हमेशा मीठा होता है राजन, तभी तो अब बसन्त ऋतु की बयार बहने लगी है।''

राजा मंजुला का संकेत समझ गया और तब मुदित होकर स्वयं ही कहने लगा–

''आज तुम आराम करो और अपने तन–मन को स्वस्थ बनाओ सुन्दरी, कल हम दोनों अपने उद्यान की प्राकृतिक रमणीयता में स्वतन्त्र विचरण करेंगे ताकि तुम्हारा मन स्वाभाविक हर्ष से भर उठे। वैसे मैं तुम्हे अपना उद्यान भी अच्छी तरह से दिखाऊंगा, जहां भांति–भांति के रंगों व गंधों के फूलों की शोभा, सुन्दर–सुन्दर पक्षियों का कलरव और झरनों से बहता हुआ शीतल जल तुम्हारे तन–मन को बहुत की शान्ति पहुंचायेगा।''

तब मंजुला ने सोचा कि अब राजा को अधिक कुछ कहने की जरूरत नहीं है क्योंकि वैसे ही स्वाभाविक ढंग से उसकी योजना पूर्ति हो रही है। उसका हृदय प्रसन्नता से नाच रहा था कि उसके इष्ट कार्य के पूर्ण होने की सम्भावना स्पष्ट हो गई है और मंजुला की प्रसन्न्ता को निरख कर राजा को अपार प्रसन्नता हो रही थी कि उसके भी इष्ट कार्य के पूर्ण होने की सम्भावना स्पष्ट हो गई है।

उस दुतरफी प्रसन्नता के वातावरण में और अधिक रस घोलते हुए मंजुला ने हंसते हुए कहा–

''राजन्, आपको अब नारी के मन पर विजय प्राप्त करने की कला आ गई है।''

मंजुला के मुंह से ये शब्द सुनते ही तो काम–मोह में अंधा बना राजा फूल कर कुप्पा हो गया कि मंजुला के मन पर अब उसे सम्पूर्ण विजय प्राप्त हो गई है।

X X X

भाग्य की विडम्बना देखिये कि मंजुला और जयशेखर दोनों के मन मयूर तब हर्षातिरेक से नाच रहे थे और दोनों को अपनी–अपनी विचारणा के अनुसार अपने हर्ष में वास्तविकता की अनुभूति भी हो रही थी। अपनी–अपनी इच्छा की पूर्ति होने में किसी के मन में शंका का कहीं कोई स्थान नहीं था।

वासना के अपने ही जाले में जयशेखर बुरी तरह फंस गया था। काम मोह में हिताहित का बोध रहता नहीं और गहरी चाल भी समझ में आती नहीं सिर्फ सतही स्थिति ही उसे दिखाई देती है तथा जयशेखर की सतही स्थिति परम आनन्दमय उसे स्पष्ट नजर आ रही थी। चहेती नारी अपने पूरे मन में समर्पित हो जाय– इससे बड़ी खुशी एक काम मोहित को और क्या हो सकती है ? अब तो सिर्फ एक रात ही बीच में है– उसके कामी मन ने सन्तोष लिया और कल से मंजुला हर समय हमेशा के लिये उसकी अपनी बन जाने वाली है। मंजुला उसके रनिवास की शोभा होगी और पटरानी के रूप में उसके हृदय पर शासन करेगी। कितना सुखद अनुभव होगा वह ? वर्षों से उसके दिल में जो कामना पल रही थी– वह कल प्रस्फुटित होगी और दिन–दिन पल्लवित तथा पुष्पित बनती हुई उसके जीवन को सुख सागर में निमज्जित कर देगी। रात भर राजा रंगीन कल्पनाओं के हिंडोले में झूलता रहा।

और रात भर मंजुला के मन का हिंडोला भी बराबर चलता रहा। आंखों में नींद आई ही नहीं आ रही थी पुरानी यादें और छा रही थी अपने पतिदेव से मिलने की खुशी। जयशेखर के पंजे से छूटते ही श्रीकान्त जब उसे दूर बहुत दूर ले चलेगा तो वे दोनों घंटों अपनी आपबीती सुनेंगे–सुनायेंगे और भावी जीवन के सुख का मार्ग खोजेंगे तथा खोज निकालेंगे अपने लाल को–यह पहिचान कर कि उसके मुंह से बेशकीमती लाल नीचे गिरेगी। तीनों फिर श्रीपुर जायेंगे और पूरा परिवार आनन्द की धारा में बह चलेगा।

अपने–अपने खयालों में डूबे मंजुला और जयशेखर दोनों कल को आज बदल देने के लिए रात भर संघर्ष करते रहे कि कब सुबह की पहली किरण फूटे और उनकी खुशियों का दिन उगे ?

❑❑❑

# २१
# श्रीकान्त और मंजुला घोड़े की पीठ पर

''सुन्दरी, मैंने अपने राजभवन के पीछे वाले उद्यान में सभी आवश्यक प्रबंध करवा दिये हैं कि हम दो के अलावा वहां कोई नहीं रहेगा और दिन भर उस सुखद एवं मनोहर वातावरण में दोनों विचरण करते रहेंगे तथा रंगीन सपनों में खोये–खोये से एक दूसरे को प्रेम के बंधन बांधते रहेंगे।'

राजा जयशेखर ने आकर मंजुला को जल्दी तैयार हो जाने का अनुरोध किया। आज उसका मन बुरी तरह से अवश हो रहा था। उसे लग रहा था, जैसे आज ही उसका पहली बार विवाह हो रहा है।

''इतने वर्षों में आज आप पहली बार मुझे कृतार्थ करेंगे, राजन्।'' और मंजुला हौले से राजा की ओर देखकर मुस्करा दी।

''अब मुझे और शर्मिन्दा न करो देवी ! मुझे अपनी ही भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है और इसका मैं उचित प्रायश्चित्त भी करूंगा। मेरे प्रायश्चित से तुम्हें अवश्य सन्तोष हो जाएगा। बस, आज तो खुले दिल से मुझे माफ कर दो और मुझे आनन्द–रस का पान करा दो।''

मंजुला कुछ बोली नहीं। अपने मुंह पर हंसी बिखेर कर तैयार होती रही।

X X X

प्रातः कालीन सूर्य की सुखदायी किरणें उस रमणीय उद्यान के लहराते फूलों पर, थिरकते–बहते जल पर और हरियाली से पटे मैदानों पर चमचमाती हुई नाच रही थी। जब मंजुला को साथ लेकर जयशेखर उस उद्यान में गया तब उसकी छवि निराली ही लग रही थी और जयशेखर तो जैसे उस वातावरण में खो–सा गया।

जयशेखर मंजुला को उद्यान का प्रत्येक हिस्सा दिखाता रहा और घंटों इधर–उधर घूमता रहा। जब थक कर चूर हो गया तो बोला–

''मैं तुम्हारे रूप सौन्दर्य की किससे तुलना करूं ? मेरे लिये तुम अद्वितीय हो– अतुलनीय हो, सुन्दरी ! मन चाहता है कि अब मैं तुम से एक पल के लिये भी दूर न रहूं।'' –अपनी काम वासना के दल–दल के राजा आकंठ डूबता जा रहा था।

''राजन, आप हकीकत में बहुत थक गये हैं। आइये, इस समीप के लता कुंज में विश्राम करें।'' मंजुला ने सुझाया।

''मैं भी विश्राम की ही सोच रहा था ताकि अपने मन की बात तुम्हें सुनाऊं और तुम्हारे मन की बात मैं सुनूं– आखिर आज इन दोनों मनों को मिलकर एक जो हो जाना है।'' और राजा तथा मंजुला लताकुंज में लगे आसनों पर जा बैठे।

'' आप बहुत थके हुए हैं, कुछ पेय ले लीजिये। मैं खुद जाकर ले आती हूं और अपने ही हाथों आपको पिलाती हूं।'' मंजुला ने मनुहार के साथ कहा।

'अभी बस शीतल जल ही पीऊंगा और अवश्य तुम्हारे हाथों से ही पीऊंगा किन्तु पहले तुम्हारी सुख देने वाली बातचीत से अपने तन–मन की तपन तो मिटालू।'' यह कह कर राजा ने मंजुला की मुस्कराती हुई मुखाकृति को जी भर कर देखा और धीरे–धीरे फिर कहना शुरू किया– ''सच मानो देवी, मैं आज अपना नया जन्म लूंगा– मेरे सुखों का नया अध्याय शुरू होगा– तुम मेरी पटरानी बनोगी और सारे राज्य पर ही नहीं, मेरे हृदय पर भी तुम ही राज करोगी, मेरी हृदयेश्वरी ! मैंने निर्णय लिया है कि आज से सातवें रोज तुम्हें पटरानी पद पर आरूढ़ कराने का मैं एक महोत्सव आयोजित कर रहा हूं, जो अभूतपूर्व होगा। उस दिन राजमुकुट धारण करके हम दोनों राजसिंहासन पर बैठकर राज्य परिषद् का समारोह करेंगे और सारा जन समुदाय हमारा हृदय से अभिनन्दन करेगा। मैं उसे अपने जीवन का एक स्वर्णिम दिवस मानूंगा। क्यों ठीक रहेगा, न सुन्दरी ?''

''आपकी कृपा से ही मेरा जीवन मुक्त हो रहा है तो सभी तरह से सुखों से वह अभिसिक्त भी होगा, राजन ! आपकी कृपा के मैं सदा ही गुण गाती रहूंगी।''

''नहीं देवी, तुम नहीं, मैं ही तुम्हारे प्रति सदा आभारी रहूंगा।'' राजा ने उसके गुण गाने की बात को टालने के लिये कहा।

''मैं शीतल जल ले आऊं महाराज और अपने हाथों से आपके तन–मन को शीतल बना दूं ? जाऊं न ?'' मंजुला ने पास के झरने से जल की छोटी सी झारी भरी और चुपके से अपनी साड़ी के पल्लू पर बंधी चूर्ण की पुड़िया उसमें मिलादी। फिर सावधानी से झारी लेकर राजा के समीप चली आई और जल पिलाने लगी।

चोरों के सरदार द्वारा श्रीकान्त को दिया हुआ वह चूर्ण बड़ा असरदारी था। ज्यों–ज्यों जल की घूंटें राजा के गले से नीचे उतरती गई, वह मीठी नींद के झौंकों में डूबता गया। उस झारी का जल पी लेने के बाद तो वह पूरी तरह से अपनी सारी सुध–बुध खो बैठा। मंजुला ने उसे वहां एक पत्थर पीठिका पर लिटा कर वस्त्र ओढ़ा दिया। तब वह दूर राजभवन के भीतरी प्रवेश पर इन्तजार करती दासियों के पास दौड़ी गई और उन्हें निर्देश दिया–''देखो, थक कर महाराज अभी–अभी सोये हैं। उनकी निद्रा में किसी तरह का विघ्न न हो इस कारण किसी को तीन–चार घंटे तक उद्यान में प्रविष्ठ न होने दिया जाय। पूरी तरह सावधानी रखें।''

दासियां अपनी 'सती' को अचंभे की निगाहों से देख रही थी उनके देखते–देखते यह कैसा बदलाव आ गया है ? जो इतने वर्षों तक अपने शील धर्म की रक्षा पर मजबूती से डटी रही, वही इस तरह इस दुष्ट राजा के पंजों की पकड़ में कैसे आ रही है ? वे यह हकीकत अपनी आंखों के सामने देख रही थीं, फिर भी न जाने क्यों उन्हें यह महसूस हो रहा था कि यह हकीकत नहीं है।

फिर भी अपनी होने वाली स्वामिनी मानकर ही पट्ट दासी ने कहा–''आपकी आज्ञा का कठोरता से पालन किया जाएगा, महादेवी ! आप निश्चित रहें।''

तब मंजुला तेज कदमों से उद्यान में दक्षिणी द्वार की ओर बढ़ चली।

X X X

श्रीकान्त द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जाकर जब मंजुला खड़ी हो गई और वहां उसे श्रीकान्त नहीं दिखाई दिया तो वह भय के मारे सिहर उठी। उसने बनाई गई योजना के अपने हिस्से को पूरी चतुराई से पूरा कर लिया था और अब यदि श्रीकान्त ही यहां नहीं पहुंचा तो सारा किया कराया तो चौपट होगा ही, लेकिन जयशेखर के हाथों उसके लिए भीषण दुःख, अपमान और यंत्रणा का सिलसिला शुरू हो जायगा जिसका अब वह शारीरिक रूप से कितना

सफल प्रतिरोध कर पायेगी ? यह तो दिल दहला देने वाला संकट सामने आ गया लगता है।

फिर उसके मन में दूसरी आशंका जागी। कहीं उसके पतिदेव किसी अनसोचे संकट से तो नहीं घिर गये हैं ? यह परदेश है और कोई भी आपत्ति खड़ी हो सकती है। क्या उनके मिलन के बीच फिर कोई व्यवधान आने वाला है ?

मंजुला भयभीत नेत्रों से इधर–उधर देखने लगी कि कहीं किसी ओर से आता हुआ श्रीकान्त उसे दिखाई दे जाय।

''मंजुले, घबराओ नहीं, मैं यहां वृक्ष की शाखा के ऊपर हूं ताकि कहीं कोई बाधा हो तो ताड़ सकूं।''

श्रीकान्त की आवाज सुनकर पल भर में वह स्वस्थ हो गई और उसने इशारे से घोड़े के लिये पूछा। श्रीकान्त तुरन्त नीचे कूदा और पास ही में सुरक्षित स्थान पर छिपाये हुए घोड़े को दक्षिणी द्वार के बाहर ले आया। मंजुला को शीघ्र ऊपर बिठाकर वह घोड़े पर कूद कर बैठ गया और उसने तेज ठोकर से एड़ लगा दी। घोड़ा हवा से बातें करने लगा।

X X X

नीति के मानदंड सामाजिक धारणाओं के धरातल पर तैयार होते हैं। इन्हीं मानदंडों के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि किसी व्यक्ति का कौनसा कार्य नैतिक है और कौनसा कार्य अनैतिक ? मूल रूप से नैतिकता और अनैतिकता की मीमांसा जन्म लेती है अन्तःकरण के गर्भ गृह में और अन्तर्चेतना ही उसकी कसौटी होती है। यही धार्मिकता या आध्यात्मिकता कहलाती है।

समाज हित के संदर्भ में व्यक्ति की निजात्मा की कसौटी पर कसा जाकर जो संस्कार, विचार या कार्य बाहर प्रकट होता है, उसे मोटे तौर पर धर्म कह सकते हैं– नैतिक कह सकते हैं या कि सदाशयी कह सकते हैं। इसके विपरीत जहां न समाजहित का ध्यान होता है और न ही निज अनुभूति का भान–वैसे व्यक्ति का संस्कार, विचार या कार्य विकारमुक्त होने के कारण पाप रूप कहा जाता है।

मंजुला को केन्द्रित कर श्रीकान्त एवं जयशेखर की स्थिति पर विचार करें तो धर्म एवं पाप के दोनों रूप स्पष्ट हो जाते हैं। श्रीकान्त का सामाजिक

मान्यता के अनुसार मंजुला के साथ विवाह होने से उस पर उसका नैतिक अधिकार था तो जयशेखर का कार्य इसलिये पापपूर्ण था कि उसने मंजुला का अपहरण करके अपने मन को अनधिकारी की अवस्था में विकारयुक्त बनाया इस कारण श्रीकान्त के हाथों जयशेखर की कैद से मंजुला की मुक्ति एक सराहनीय कर्त्तव्य कहा जाएगा।

श्रीकान्त और मंजुला एक घोड़े की पीठ पर साथ–साथ बैठे उड़े जा रहे थे और कर्त्तव्य पूर्ति का सुख लिये जा रहे थे।

श्रीकान्त से एक छोटी–सी भूल हुई थी कि वह हंसवाहन से जब एक रात के लिये उड़कर श्रीपुर पहुंचा था तो लौटते समय मां से मिल नहीं पाया। बस वही भूल समझ या नासमझ से इतनी बड़ी बन गई कि उसने एक गंभीर दुर्घटना का रूप ले लिया– एक ऐसी दुर्घटना जिसकी चपेट में आकर परिवार का एक–एक सदस्य बिखर गया और बिछुड़ गया। श्रीकानत ने उस बिखराव की एक कड़ी आज हस्तगत कर ली थी और उस रूप में उसे अपने कर्त्तव्य के अंश के पूरे होने का इस समय सन्तोष था। कहां–कहां की ठोकरें खाकर कम से कम वह मंजुला को खोज लाया ? उसके सौभाग्य का श्रीगणेश हो गया है तो उसके मन को विश्वास हुआ कि वह अपने लाल को भी खोज लेगा और अपनी मां तथा बहिन से मिलकर परिवार के अखंडित स्वरूप का पुनर्निर्माण भी कर लेगा।

लांछना, प्रताड़ना और यन्त्रणा के कष्टों को भुगतने तथा लम्बे समय से बिछोह का दुःख सहने के बाद अपने पतिदेव का सुखद मिलन मंजुला के लिये भी कम रोमांचकारी नहीं था। जहां धर्म, विवेक और धैर्य जीवन का मार्ग दिखाते हैं, वहां पति–पत्नी भी धर्म और नीति के ही रूप होते हैं। श्रीकान्त और मंजुला इस दृष्टि से एक ही घोड़े की पीठ पर बैठकर उड़े क्या जा रहे थे कि जैसे धर्म और नीति आपस में जुड़कर किसी कल्याण–अभियान पर चल पड़े हों।

एक प्रहर तक लगातार चलते रहकर जब वे दोनों चन्द्रनगर से काफी दूर निकल गये तो उनकी जयशेखर के सैनिकों द्वारा पीछा करने की चिन्ता कुछ कम हुई। चिन्ता कम हुई तो थकान महसूस होने लगी। दोनों को भूख–प्यास भी सताने लगी।

''अब तो हम खतरे से बाहर निकल गये हैं प्रियतम ?' मंजुला ने ही घोड़े की तेज चाल के वेग में बात शुरू की।

''हां मंजु, हम काफी दूर निकल आये हैं, फिर कुछ और आगे बढ़ जायं तो अधिक सुरक्षित हो जायेंगे।'' श्रीकान्त ने आश्वस्त किया।

''आप तो बहुत थक गये होंगे। मैं भी इतनी थक गई हूं कि गिरी जा रही हूं।''

'' न तो अब मैं थकता हूं मंजुले और न अब तुम थकने लायक हो। कितनी विपदाओं को हम दोनों ने झेला है– अब थकान कहां रह गई है हमारे भीतर ?'– श्रीकान्त ने मंजुला की पीठ पर हल्की सी थपकी लगाते हुए कहा।

मंजुला का मुंह आरक्त हो उठा– जलाते हुए वह बोली– ''इतने लम्बे अन्तराल के बाद आज आपका आश्रय जो पा गई हूं– तभी तो मेरी थकान भी उभर आई है।'

''मंजू, मैं तो यों ही विनोद कर रहा था। देखो सामने ही पर्वत की तलहटी में फलों के वृक्ष भी दिखाई दे रहे हैं तो नदी भी बह रही। वहां चलकर भूख प्यास भी मिटायेंगे तो भरपूर विश्राम भी करेंगे। और ये काम तो गौण हैं–मुख्य है कि आप बीती सुनेंगे–सुनायेंगे और आगे का कर्त्तव्य निश्चित करेंगे।''

❑❑❑

# २२
# अपनी-अपनी कहानी : दोनों की जुबानी

श्रीकान्त और मंजुला दोनों जब घोड़े की पीठ पर से नीचे उतर कर नदी किनारे वृक्षों के झुरमुट में विश्राम करने बैठे तो वे क्षण उन्हें इतने अमोल लगे कि वैसा अनुभव उन्हें पहले कभी नहीं मिला था। प्रकृति की विशाल गोद में दोनों निश्चिन्त होकर बैठे थे और एक दूसरे की आप बीती कहानी सुनने सुनाने को उत्सुक हो रहे थे।

किन्तु पहले श्रीकान्त उठा और पलाश कुछ पत्ते तोड़ लाया जिनसे मंजुला ने पत्तल और दोने बनाये। श्रीकान्त पके–पके कुछ फल तोड़ लाया तो मंजुला स्वच्छ जल के दोने भर लाई। दोनों ने सन्तोष तृप्ति से पहली बार साथ–साथ फलाकर और जलपान किया। फिर कुछ तरोताजा होकर दोनों आमने–सामने बैठे तो बोले बिना न रहे सके।

मंजुला ने ही बात शुरू की–''स्वामी, जिस रात आप हंस वाहन से उड़कर पधारे थे, उस वक्त माताजी से मिलने का मेरा आग्रह मान जाते तो शायद यह सारी परिस्थिति पैदा नहीं होती। उसके कारण मेरे साथ जो बीता और बीतता गया, उसकी कहानी लम्बी भी है तो दर्दनाक भी.....।

''मंजु जिस–जिस आत्मा के जिस–जिस प्रकार के कर्मों का बंध होता है, उनके उदय में आने पर उनका अच्छा या बुरा जो–जो फल होता है, वह उस–उस आत्मा को भोगना ही पड़ता है। हम दोनों के कुछ ऐसे ही निकाचित कर्मों का बंध रहा होगा कि घटना चक्र ने इस तरह मोड़ लिया। उस समय मुझे मेरी जिम्मेदारी समय पर पूरी करने की चिन्ता थी इसलिये मां से बिना मिले ही चला गया। लेकिन मैं उसके बाद श्रीपुर जा आया हूं और घर से तुम्हारे निष्कासन की सारी वार्ता जान चुका हूं। वास्तव में बड़ा ही अन्याय हुआ तुम्हारे साथ ! लेकिन मेरी उत्सुकता एक दूसरी बात जानने की बड़ी तीव्र हो रही है सो तुम बताओ कि हमारे सौभाग्यशाली पुत्र रत्न का

जन्म कहां और कैसे हुआ और कैसे वह तुमसे बिछुड़ गया ?'' –यह पूछते समय श्रीकान्त बहुत ही भावुक हो गया तथा उसकी आंखों से अपने अनदेखे लाड़ले की याद में टप–टप आंसू झरने लगे।

मंजुला ने अपने दिल को कड़ा करके संक्षेप में बताया– ''नाथ घर से निकल कर मैं कांटो–पत्थरों से पैदल जूझती हुई बियावान जंगल में पहुंच गई जहां एक नर राक्षस से मेरा सामना हुआ किन्तु धर्म का प्रसाद मानिये कि मेरे उदबोधन से उसने अपना हिंसक जीवन बदल लिया तो मुझे भी बहिन बनाकर आश्रय दिया.....और वहीं मैंने आपके उत्तराधिकारी को जन्म दिया. .....'' कहते–कहते वह अपने उमड़ते हुए आंसुओं को रोक नहीं पाई।

''फिर यह राजा जयशेखर का संकट कहां से पैदा हो गया ?'' श्रीकान्त हठात् पूछ बैठा।

मंजुला ने नवजात को पेड़ की डाली से झोली में बांधकर लटकाने से लेकर पागल हाथी द्वारा सरोवर में फैंक देने तथा वहां जयशेखर द्वारा अपने राज भवन में पहुंचा देने की सारा कहानी श्रीकान्त को सुना दी।

''तो इसका यह मतलब हुआ कि उस नवजात का क्या हुआ होगा– इसका कोई सूत्र तुम्हारे पास नहीं है। किन्तु मेरा मन कहता है कि अवश्य जीवित है और हमें अवश्य मिलेगा।'' श्रीकानत ने जोर देकर कहा।

'मेरा भी आत्मविश्वास यही कहता है पतिदेव ! जब वह भाग्य का धनी है तो दीर्घ आयु का भी धनी होगा ही । और जब अपन दोनों का मिलन हो गया है तो देर सबेर हमारा लाल भी हमें अवश्य मिलेगा।' मंजुला का मन भीतर ही भीतर आशान्वित हो उठा।

''अब हमारा मुख्य काम है अपने लाल को खोज निकालना। तुमने उस बियावान जंगल का जो विवरण दिया है, उसके हिसाब से उस मार्ग से किन नगरों के काफिले किस तरफ जाते हैं इसका मैंने अनुमान लगा लिया है और इस अनुमान के आधार पर ही अब हम अपने खोज कार्य का निर्धारण करेंगे।'

''अब आप साथ हैं तो यह खोज कार्य कई गुने वेग से कर सकेंगे। किन्तु आपने यह नहीं बताया स्वामी कि आपने मुझे चन्द्रनगर में कैसे खोज लिया और वैसा असरकारी चूर्ण आप कहां से प्राप्त कर लाये ?''–मंजुला उन तथ्यों को जान लेने के लिये उतावली हो उठी।

श्रीकान्त ने चोरपल्ली की सारी कहानी कह सुनाई और यह भी बता दिया कि धर्म के प्रभाव से कैसे वह चोरपल्ली को प्रेमपल्ली में बदल सका। प्रेमपल्ली से विदा लेकर वह अनायास ही चन्द्रनगर के बाहर पनघट पर पहुंचा था कि पहले दो पनिहारिनों के और बाद में उद्यान में दो मालियों के वार्तालाप से उसके जयशेखर की कैद में बन्दी होने का पक्का पता चल गया। फिर उसने मंजुला की आंखों की गहराई में अपनी स्नेहिल दृष्टि फैलाते हुए अनुरागपूर्वक कहा–

''उसके बाद ही तो हमारा दृष्टि मिलन हुआ था, मंजुले ! तुम गवाक्ष में खड़ी थी और मैं वृक्ष के नीचे। फिर मिला था तुम्हारा खून से लिखा सन्देश..... ।''

''अब तो मानना चाहिये स्वामी कि कठिनाइयों का दौर समाप्त होने को है और लाडले को खोज लेने के बाद अपना पूरा परिवार पुनः सुख के सूत्र में बंध जायगा।'' मंजुला ने जब भविष्य की अपनी यह कामना प्रकट की तो श्रीकान्त केवल हल्के से मुस्करा दिया, बोला कुछ नहीं–यह सोचकर कि पूर्व संचित कर्मों का कितना खेल हो चुका है और कितना खेल बाकी है, कौन जानता है ?

फिर श्रीकान्त ने मंजुला को सावधान करते हुए कहा– ''प्रिये, कुछ देर विश्राम करके अब हमें यहां से चल देना चाहिए। कारण, जयशेखर के सैनिक हमारा पीछा करते हुए यहां तक पहुंच सकते हैं। मैंने देखा था कि तुम्हारे प्रति उसका आकर्षण बहुत जटिल था अतः अपनी मूर्च्छा हटते ही वह तुम्हें न पाकर चुप नहीं बैठा होगा।'

यह सुनकर मंजुला हकीकत में कांप उठी कि जरा सी असावधानी कहीं उसे और उसके पतिदेव को फिर कष्टों की भट्टी में न झोंक दे। आश्वस्त करते हुए श्रीकान्त फिर बोला–

''ऐसी बात नहीं है कि उन्हें हमारा पता लग ही जाय। फिर भी हमें असावधानी और देरी से दूर रहकर अपने लाल को खोज निकालने के लिए अब पूरी तत्परता से ही भागना–दौड़ना चाहिए। इसलिए थोड़ी सी देर सुस्ताकर अपन चल ही पड़ते हैं।''

और दोनों अपने तन–बदन को हल्का करने के लिए आंखें मन्द करके नदी की ठंडी बालू रेत पर लेट गये।

दिन ढलने लगा था और सूर्य की ढीली–पीली पड़ी किरणें नदी के जल पर प्रतिबिम्बित होकर जीवन की क्षणभंगुरता का परिचय दे रही थी। सूर्य भी तो मानव जीवन की तरह बाल, युवा और वृद्ध की तीनों सीढ़ियां प्रतिदिन चढ़ता उतरता है। सुबह की लाल किरणें दोपहर में तपते हुए शोलों की तरह तेजस्वी बन जाती है, किन्तु वे ही किरणें शाम ढलते–ढलते अपना तेज खोती पीली होती चली जाती है। किस प्रकार की किरणों का कब कैसा उपयोग किया जाना चाहिए यही आत्म चिन्तन का विषय होता है।

लेटे–लेटे श्रीकान्त यही सोच रहा था कि आज का उसका वह तेजस्वी यौवन व्यर्थ नहीं चला जाना चाहिये। परिवार को पुनः एक रूपता में ढाल कर उसे आत्म कल्याण एवं लोकोपकार का मार्ग पकड़ लेना है। मंजुला को जैसे जयशेखर की कैद से मुक्ति दिलाई है, उसी प्रकार कर्मों से बंधी हुई अपनी इस आत्मा को भी मुक्ति दिलानी है। मानव जीवन का यह प्रयास ही सर्वोपरि है।

सोचते–सोचते सूर्य का अन्तिम भाग भी अस्ताचल में ढक गया तो फुर्ती से श्रीकान्त उठा, मंजुला को उठाया और घोड़े पर सवार होकर दोनों वहां से चल पड़े।

❑❑❑

# २३
# कठिनाइयों का अन्त कहां ?

अब श्रीकान्त और मंजुला अपने घोड़े पर बैठे तेजी से नहीं भाग रहे थे, बल्कि सामान्य चाल से सावधानीपूर्वक आगे बढ़ते जा रहे थे। श्रीकान्त यह ध्यान रख रहा था कि कहीं आसपास निरापद स्थान दिखाई दे, तो वही रात व्यतीत की जाय। मन में उतना भय भी नहीं था तथा मौसम भी बहुत सुहावना था सो दोनों भूतकाल की यादें उभारते–उभारते और भविष्य की योजनाएं गढ़ते–गढ़ते धीमे–धीमे चले जा रहे थे।

तभी आगे बैठी मंजुला को पीछे बहुत दूर घोड़ों की टापों की हल्की–हल्की आवाज सुनाई दी। लगा कि कई घोड़े दौड़ते हुए उनकी तरफ ही तेजी आ रहे हैं। बिना श्रीकान्त को बताए वैसे ही उसने पीछे की ओर देखा तो श्रीकान्त चौंकते हुए बोल पड़ा–''क्या बात है ?''

मंजुला ने तब तक पीछे देखकर यह देख लिया था कि उड़ती हुई धूल का गुबार उनके काफी नजदीक आता जा रहा है तथा घोड़ों की टापों की आवाज भी पहले से ज्यादा तेज होती जा रही है, यद्यपि धूल उड़ने के कारण घोड़े दिखाई नहीं दे रहे थे। वह बोली–

''स्वामी, कोई न कोई संकट हमारे पीछे नजदीक तक पहुंच रहा है और ज्यादा संभावना यही लगती है कि राजा जयशेखर के सैनिक ही हमारा पीछा कर रहे हों तथा शायद राजा भी साथ हो, इसलिये तुरन्त बचाव कर उपाय कीजिये।''

तब तो श्रीकान्त एकदम चौंका। जिस संकट की तब तक बहुत हल्की सी आशंका रह गई थी, वही संकट भयानक रूप लेकर उसके मस्तिष्क पर छा गया। किन्तु श्रीकान्त का विवेक और साहस भी सदा सजग रहता था, चौंक कर वह तुरन्त स्थिर हो गया। एक भरपूर नजर से उसने पीछे के दृश्य को देखा और सारी स्थिति का तुरन्त अनुमान लगा लिया। उसे महसूस हो गया कि पीछा करने वाले ज्यादा दूर नहीं है किन्तु अभी धूल उड़ने के कारण न वे उसे देख पाये होंगे और न ही उसे वे दिखाई दे रहे हैं अतः दृश्य साफ

हो उसके पहले–पहले अपने को बचाने का रास्ता खोज लेना चाहिये।

हल्का–हल्का अन्धेरा घिरने लगा था और वह जंगल भी गहरा ही था। नजदीक–नजदीक पेड़ों के घने झुरमुट और झाड़ियों के झुंड फैले हुए थे। उस वातावरण को अनुकूल मानकर श्रीकान्त ने धीरे से घोड़े को मुख्य मार्ग से नीचे उतार लिया और कुछ ही दूरी तक वन प्रदेश के भीतर जाकर दोनों नीचे उतर गये। घोड़े को एक घने वृक्ष के पीछे छिपा कर बांध दिया और दोनों वृक्ष की ऊपर की शाखा पर छिप कर बैठ गये।

X X X

कामवासना का जिसके मन पर आक्रमण होता है, वह वासना पूर्ति जब तक नहीं होती है, उसके लिये पागल बन जाता है, फिर किस्मत से अगर उसकी वासनापूर्ति हो जाती है तो वह मदान्ध हो जाता है। किन्तु यदि उसकी वासनापूर्ति नहीं हो पाती है और उसमें वह छला जाता है तब तो उसकी हिंसा उभर आती है तथा वह अतीव क्रूर बन जाता है। ज्योंही राजा जयशेखर की मूर्छा हटी और उसने सूनी–सूनी आंखों से देखा कि वहां कहीं भी मंजुला नहीं दिखाई दे रही है तो वह सकते में आगया। यह क्या ? जो चीज सोलहों आने उसकी मुट्ठी में आ चुकी थी, क्या वही उसकी हाथों से गधे के सींग की तरह अलोप हो गई ? यह कैसे हो गया ? वह जानने के लिये उतावला हो उठा। उसका शरीर अशक्ति के दौर में था इस कारण वह पत्थर की पीठिका पर से तुरन्त उठ कर खड़ा नहीं हो सकता तो जोर–जोर से एक–एक दासी का नाम पुकार–पुकार कर चिल्लाने लगा।

घबराई–डरती इन्तजार करती हुई सारी दासियां उद्यान में दौड़ी आई और राजा के मुंह को टुकुर–टुकुर देखने लगी।

''मुझे क्या देख रही हो ? मंजुला कहां है ?''

किसी की हिम्मत नहीं हुई कि राजा के उस क्रोध के सामने कुछ बोल सके। राजा फिर गरजा–

''तुम कहां जाकर सो गई थी ? बोलती क्यों नहीं कि मंजुला कहां चली गई है ?''

किसी तरह पट्ट दासी ने हिम्मत की और बोली–

''महाराज, उन्होंने ही हमें आज्ञा दी थी कि चूंकि आपको नींद आ गई है इसलिये किसी को भी इधर नहीं आने दिया जाय। इस निगहदारी के लिये

हम तो उधर ही खड़ी रही थीं। हमें आज्ञा देकर वे आपकी ओर ही आई थीं।''

राजा कुछ नहीं बोला। उसे यह भी समझ में नहीं आया कि वर्षों से उसकी कैद में पड़ी हुई मंजुला क्या भाग निकलने का उतना साहसपूर्ण कार्य कर सकती है ? और अकेली भी भागने की वह क्या हिम्मत कर सकी होगी ? तो फिर क्या हुआ है ? उसने तुरन्त कुछ सैनिकों को भेजने की आज्ञा दी। तत्काल सैनिक उपस्थित हुए तो राजा ने उन्हें आदेश दिया कि वे सारे उद्यान में घूमकर पैरों के निशानों से या दूसरी तरफ से बारीक खोज करके मंजुला का तुरन्त पता लगावें और उसे वहीं आकर सूचना दें। सैनिक जल्दी–जल्दी सारे उद्यान में फैलकर खोज करने लगे।

राजा हतप्रभ सा वहीं कठोर पत्थर पर बैठा रहा और अपने भाग्य को ठोकता रहा। उसे कितनी इन्तजार करनी पड़ी, कितनी उसने कोशिशें कीं और ऐसी सुन्दरी कोमलांगी मुश्किल से मिली भी तो यों हाथों से जाती रही।

तभी एक सैनिक दौड़ता–दौड़ता हुआ आया और बोला– ''महाराज, आपकी इस पत्थर की पीठिका से किसी महिला के पैरों के निशान शुरू होकर उद्यान के दक्षिणी द्वार तक लगातार पहुंच रहे हैं और वहां उनके साथ किसी पुरुष के पैरों के निशान तथा घोड़े के खुर एक साथ मिल रहे हैं।'

पागल की तरह राजा जयशेखर मन ही मन यह सुनकर जोरों से चीख पड़ा–''इसका मतलब यह हुआ कि मंजुला किसी के साथ भाग गई है और वह पुरुष योगीराज ही हो सकता है। बाकी तो किसी के साथ मैंने उसका सम्पर्क ही नहीं होने दिया था। बहुत बड़ा धोखा हो गया है मेरे साथ ! मैं खुद ताज्जुब में था कि मेरे साथ घोर नफरत करने वाली मंजुला योगीराज के मंत्र जाप के बाद में ही एक दम मेरे प्रति इतनी नरम कैसे हो गई ? मुझसे प्रेम जताने का उसने मेरे साथ नाटक ही किया– मुझे मूर्ख बना दिया। बदहवास की तरह राजा वहीं खड़ा होकर गरजा–''कम से कम सौ सैनिक मेरे साथ चलें। मेरा अश्व तुरन्त दक्षिणी द्वार पर लेकर आओ। मंजुला का पीछा करना होगा''– कहते–कहते राजा दक्षिणी द्वार की ओर उसी हालत में दौड़ पड़ा।

भयंकर क्रोध की ज्वाला से जयशेखर काला पड़ रहा था और सोच रहा था कि वह मंजुला को पकड़ते ही उसके साथ निर्दयतापूर्ण दुर्व्यवहार करेगा और उसे भगाकर ले जाने वाले का सिर धड़ से उड़ा देगा।

श्रीकान्त और मंजुला ने हल्के–हल्के अन्धेरे में देखा कि करीब सौ घोड़े तेजी से दौड़ते हुए मुख्य मार्ग पर बढ़े जा रहे हैं। उन पर शस्त्र लिये सैनिक बैठे हुए हैं। जिनके मुंह धूल से सने हुए हैं। बीच में खुद राजा जयशेखर पागल की तरह दिखाई दे रहा है–उसने न तो ठीक से कपड़े पहने हुए हैं और न ठीक हौश–हवास है। सभी भागे जा रहे हैं।

श्रीकान्त ने मंजुला का हाथ दबा कर धीरे से कहा–''मंजुले, अगर हमने थोड़ा सा भी विलम्ब कर दिया होता तो न जाने क्या–क्या घटित हो जाता ? कुए से निकल कर बावड़ी में गिर जाते !''

मंजुला तब तक कुछ नहीं बोली जब तक कि पूरा घोड़ों का दल उनकी आंखों के आगे से दूर तक नहीं बढ़ गया। तब राहत की सांस लेकर वह बोली– ''प्राणनाथ हम ! बाल बाल बचे हैं।

''हां प्रिये, तुमने देखा नहीं, राजा जयशेखर का क्या हाल हो रहा था ? कदाचित वह हमें पा जाता तो कितनी क्रूरता का बर्ताव करता– क्या तुम कल्पना कर सकती हो ?''

''ऐसी कल्पना मैं नहीं करूंगी श्रीकान्त– मैं तो वह दृश्य देखकर इतनी आतंकित हो रही हूं कि मेरा रोम–रोम सिरह उठा है।' श्रीकांत ने ढाढ़स बंधाया। वह खुद सोच में पड़ गया था कि अभी तो सैनिकों का दल मुख्य मार्ग पर ही आगे बढ़ गया था किन्तु वह रात भर शान्त थोड़े ही रहने वाला है। सब लोग जंगल का चप्पा–चप्पा छानते रहेंगे और उन्हें ढूंढते रहेंगे। इसलिये बहुत सोच समझ कर उसे आगे चलने का निश्चय करना चाहिये। उसने मंजुला से सलाह लेते हुए पूछा–

''अब क्या करें, मंजुले, यहीं ठहरे रहें या आगे बढ़े और आगे बढ़ें तो किस तरफ ?''

मंजुला विवेकशील थी तो बुद्धिशाली भी। उसने गहराई से सोच कर अपनी राय बताई गई।

''कुछ समय तक हमें यही ठहर कर इन सैनिकों के वापसी लौटने की प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि वे आसपास तलाश करके वापिस लौट आते हैं, तो हम मुख्य मार्ग से आगे बढ़ चलेंगे और सुरक्षित स्थान पर रात्रि व्यतीत कर लेंगे। किन्तु यदि तब तक सैनिक वापिस नहीं लौटते हैं तो हमें मानना होगा कि वे पूरे जंगल में बारीकी से खोज कर रहे होंगे। वैसी दशा में हमें मुख्य

मार्ग छोड़ देना चाहिये और उल्टी दिशा में बिना मार्ग उबड़–खाबड़ निकल जाना चाहिये ताकि उन्हें किसी भी हालत में हमारा सुराग नहीं मिले।'

यह राय सुन श्रीकान्त स्तम्भित रह गया कि मंजुला इस मामले में भी इतनी महत्त्वपूर्ण राय देने की योग्यता रखती है। उसे शत प्रतिशत वह राय पसन्द आ गई। उस वक्त अपनी सुरक्षा करने हेतु उससे अधिक कारगर राय दूसरी हो ही नहीं सकती थी। उसने मंजुला की पीठ ठोंकी और कहा–

''मंजु, अभी इस तुम्हारी राय से मुझे समझ में आया है कि अगर तुम्हारे लिये किसी लड़ाई का मोर्चा जमाना हो तो वह काम भी तुम बड़ी कुशलता से कर सकती हो।''

''यह आपही की कृपा है नाथ, मुझे जो विवेक, धैर्य और साहस अपने पैतृक संस्कारों में मिला था वही आपके विवेक, धैर्य और साहस का सम्बल पाकर कई गुना बढ़ गया है। हम दोनों मिल कर दो नहीं, एक और एक ग्यारह हो गये हैं।''

''तुम सच कह रही हो मंजुले ! पति और पत्नी मिल कर जीवन के पथ पर एक दूसरे के सुदृढ़ सम्बल हो जाते हैं और मैं तो पत्नी का महत्त्व अधिक मानता हूं। वही सच्ची धर्मपत्नी हाती है जो अपने पति को धर्म के मार्ग पर आगे ओर आगे लिये ही चली जाती है। हम भी जल्दी ही अपने ये सांसारिक कर्त्तव्य पूरे करके धर्म मार्ग पर साथ–साथ आगे बढ़ चलेंगे क्यों मंजु, तुम ठेठ तक मेरा हाथ थामे रहोगी न ?''

मंजुला ने जैसे धन्य होते हुए कहा–''मेरे श्रीकान्त, हम दोनों क्या अलग–अलग हैं ? हम तो एक हैं और एक बने रहकर ही जीवन को उन्नति के ऊंचे शिखर तक ले जायेंगे।''

तब दोनों उस शाखा पर बैठे–बैठे ही धर्म भावनाओं में निमग्न हो गये तथा महामंत्र का जाप करने लगे। उन्होंने इस मनोरथ का चिन्तन किया कि कब वे इस संसार का त्याग करके मुनि धर्म ग्रहण करेंगे और अपने कर्मों को नष्ट करके मुक्ति की ओर अपने पगलिये आगे धरेंगे।

जब जयशेखर के सैनिक एक की बजाय दो घंटे तक भी उधर से लौटकर नहीं आये तो श्रीकान्त और मंजुला ने यही उचित समझा कि उन्हें अब उस दिशा में आगे नहीं बढ़ कर उल्टी दिशा में ऊबड़–खाबड़ ही धीरे–धीरे आगे चलना चाहिये।

कई बार देखा जाता है कि कठिनाइयों का दौर जो एक बार शुरू हो जाता है तो वह जैसे खत्म होना नहीं जानता। एक के बाद एक करके कठिनाइयां आती–जाती हैं और अनसोचे कष्ट बिखेर कर चली जाती है। बहुधा ऐसा भी होता है कि ये कठिनाइयां सज्जन और सच्चे व्यक्तियों को ही ज्यादा सताती है। किन्तु उस परिस्थिति का दूसरा पहलू भी सामने रखा जाना चाहिये कि कठिनाइयां ही व्यक्तियों को सुदृढ़, सक्षम और सुयोग्य बनाती है। कायर व्यक्ति तो कठिनाई को सहेगा ही क्या ? आग में इसी कारण कोई और धातु नहीं सोना ही डाला जाता है जो निखर कर कुन्दन बनता है। वैसे ही साहसी और विवेकी व्यक्तियों पर जितनी अधिक कठिनाइयां आती है, उतना ही उनका व्यक्त्वि निखर कर प्रभावशाली बनता जाता है। प्रकृति के आंकड़े में अभी तक श्रीकान्त और मंजुला की कठिनाइयों का हिसाब बाकी था। उन्हें और तपना था। अभी उनकी कठिनाइयों का अन्त कहां था ?

घोड़े पा सवार श्रीकान्त और मंजुला धीरे–धीरे चल रहे थे कि अचानक घोड़ा जोर से उछला। दोनों मजबूती से बैठे हुए थे लेकिन उन्हें यह समझ में नहीं आया कि घोड़ा इस तरह उछला और भागा क्यों ? अन्धेरे में उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया।

घोड़ा न जाने किस कारण से एक बार जो भागना शरू हुआ तो झाड़ झंखाड़ों में फंसता अटकता भागता ही चला गया। काफी कोशिशों के बाद भी वह काबू में नहीं आया लेकिन तभी एक आश्चर्यकारी घटना गुजर गई तथा मंजुला इतनी स्तंभित और अवश हो गई कि वह कुछ भी नहीं कर सकी।

यकायक श्रीकान्त जोर से चीखा और धड़धड़ा कर नीचे गिर पड़ा। घोड़ा तो और ज्यादा भड़क गया अकेली मंजुला को ही अपनी पीठ पर लादे तेजी से भागता ही गया। न मंजुला को मालूम हो सका कि श्रीकान्त क्यों चीखा और क्यों गिर पड़ा तथा न श्रीकान्त को जानने की शक्ति रही थी कि घोड़ा मंजुला को लेकर कहां पहुंच गया होगा ?

असल में हुआ यह था कि घोड़े कि टांग से दब कर एक सर्प क्रोध से ऊपर उछला और उसने श्रीकान्त के पैर में तेजी से काट खाया। उस पीड़ा से श्रीकान्त उछल कर गिरा तो सर्प से डर कर घोड़ा भी भागता ही गया तथा कई कोस भागते रह कर गिर पड़ा। मंजुला तो श्रीकान्त की चीख सुनकर ही होश खो बैठी थी और जहां घोड़ा गिर गया वहां मंजुला भी बीच जंगल बेहोश पड़ी रह गई। ❑❑❑

# २४
# अरण्य से सार्थवाह भाई के घर

कर्मफल विपाक में कभी–कभी इतनी विचित्रता दिखाई देती है जिसका पहले से अनुमान तक नहीं लगता और बाद में उस फलाफल को देखकर दांतों तले अंगुली दबा देनी पड़ती है। और जब अशुभ कर्मों का उदय होता है और उनका अशुभ फल भोगते हुए किसी सच्चरित्र आत्मा को देखते हैं तो देखने वालों के दिल में भी एक टीस सी पैदा होती है कि ऐसे सज्जनतापूर्ण जीवन पर ही बार–बार कष्टों का दौर क्यों आता है ? इस प्रकार के कष्टों को सहन करने का एक उजाला बिंदु भी है। यह तो ध्रुव सत्य है कि यदि किसी आत्मा ने पहले अशुभ कर्मों का बंध किया है तो उसे उन कर्मों के उदय में आने पर उनका अशुभ फल भोगना ही पड़ेगा। परन्तु यदि फल भोग के समय वह आत्मा स्वस्थ आचार–विचार वाली और विवेकशील होती तो वह उन कष्टों को शांतिपूर्वक सहन करके तथा साथ में धर्म और शुक्ल ध्यान में रमण करते हुए उन कर्मों को क्षय कर देती है। इसके विपरीत यदि अशुभ फल भोग लेने वाली आत्मा उन कष्टों को हाय विलाप के साथ भोगती है एवं आर्त व रौद्र ध्यानों में भकटती है तो पहले से भी अधिक अशुभ कर्मों का बन्ध कर लेती है। मंजुला की आत्मा पहली श्रेणी की आत्मा थी जिसको पहले बन्धे हुए अशुभ कर्मों का फल भोगना पड़ रहा था किन्तु भोगते समय अतीव शांति और विवेक बनाए रखने के कारण वह अपने अशुभ कर्मों का क्षय कर रही थी।

उस अंधेरी रात्रि में बावले बने घोड़े ने बेहाश मंजुला को अपनी पीठ पर लादे–लादे उस सुनसान अरण्य में कहां–कहां चक्कर लगाये कोई नहीं जानता। लेकिन जब घोड़ा थक कर चूर हो गया तो उस अरण्य में एक मार्ग के पास गिर पड़ा और उसने वहीं दम तोड़ दिया। घोड़े के साथ ही मंजुला का बेहोश शरीर भी पास ही में एक बालू के ढेर पर गिर पड़ा जिससे उसे कोई खास चोट नहीं लगी। ज्यों–ज्यों रात बीतती रही और प्रातःकालीन शीतल वायुवेग चलने लगा तो धीरे–धीरे मंजुला की संज्ञाहीनता भी टूटने लगी।

मंजुला की आंखें जब धीरे–धीरे खुली तो वह अपने चारों ओर का दृश्य देखकर आश्चर्य चकित भी हुई तो चिन्तित भी बीती रात की घटना में उसे सिर्फ इतना ही याद था कि न जाने किस कारण से श्रीकान्त जोर से चीखा था और घोड़े से नीचे गिर पड़ा था। परन्तु उसके साथ ही उसने जो होश खोया और अब जो होश आया है उसके बीच उसे कोई याद नहीं थी। उसे यह भी मालूम नहीं था कि श्रीकान्त कहां गिरा था और उससे कितनी दूर वह यहां पड़ी हुई है ?

उसे यकायक विचार आया कि पूर्व संचित कर्म उसके जीवन के साथ कैसा–कैसा खेल कर चुके हैं और अभी भी कैसा–कैसा खेल करते रहेंगे ? पर मंजुला तो सहनशील एवं धीरज वाली महिला थी, धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझती थी अतः उसने अपनी वर्तमान परिस्थतियों पर शांति के साथ गौर करना शुरू किया।

मंजुला ने उठ कर चारों तरफ कुछ घूम कर आने की चेष्टा की लेकिन उसे कुछ अधिक अशक्ति महसूस हो रही थी। इस कारण लेटे–लेटे ही वह चारों ओर अपनी दृष्टि घुमाने लगी। उसने देखा कि सूरज उग गया है और चारों और घने वृक्ष फैले हुए हैं। उन वृक्षों के बीच में एक संकड़ा सा मार्ग चला जा रहा है जिससे उसे अनुमान लगा कि यदा–कदा इस मार्ग से व्यापारी सार्थवाहों के काफिले आतेजाते रहते होंगे। उसके मन में कल्पना जागी कि काश, अभी भी कोई काफिला निकले और वह उसे समुचित आश्रय दे तो वह श्रीकांत की खोज कर सकें।

कर्मफल विपाक में यह आवश्यक नहीं है कि कर्मों का अशुभ फल ही लगातार चलता रहे। अशुभ फल के बीच में भी कई बार शुभ फल चमक उठता है तो शुभ फल का आनन्द लेने के दरमियान भी अशुभ फल के धक्के लगाते रहते हैं। तो इधर मंजुला की कल्पना जागी और उधर हकीकत में एक काफिले के आने की हल्की हल–चल उसे महसूस हुई। मार्ग की उस दिशा में जब उसने अपनी नजर फैलायी तो उसने देखा कि बहुत दूर धूल का एक बादल सा उठा है और बैलगाड़ियों के चलने की आवाजें आ रही हैं। उसके मन में हल्की सी यह आशंका भी जागी कि कहीं वह राजा जायशेखर के सैनिकों का दल न हो जो पिछली रात से उसकी तलाश में निकला हुआ था। किन्तु उसे ध्यान आया कि उस दल में तो सिर्फ घोड़े ही थे और इस समय उसे बैलगाड़ियों के चलने की आवाज आ रही है। एक आशंका हटी तो दूसरी आशंका ने जन्म लिया कि यदि यह काफिला किन्हीं लुटेरों या क्रूर लोगों का

हुआ तो उसके सिर पर नये संकटों का पहाड़ गिर सकता है। अब जो भी हो उसने सोचा कि सब कुछ उसे धैर्य पूर्वक ही सहना है।

काफिला धीमी गति से बढ़ता हुआ मंजुला की तरफ ही चला आ रहा था और उसे देखते–देखते मंजुला के मन में तरह–तरह विचार उठ रहे थे।

X X X

यह सुशील सार्थवाह का काफिला था जो परदेश से भांति–भांति की व्यापारिक वस्तुएं संचित करके अपने नगर की ओर लौट रहा था। सुशील सेठ बहुत ही नीतिज्ञ और सच्चरित्र व्यक्ति था। उसके साथ कई गाड़ियों में माल भरा था और उसके लिए कई रक्षक घुड़सवार भी थे। आगे–आगे चलने वाले रक्षक घुड़सवार ने जब दूर से बालू के ढेर पर किसी स्त्री को लेटे हुए देखा तो वह चकित रह गया कि इस सुनसान अरण्य में यह सुन्दरता की अनोखी देवी अकेली कैसी लेटी हुई हैं ? उसने संकेत से सुशील सेठ को आगे बुलाया और संकेत से ही उसने उसे मंजुला को दिखाया। सेठ भी उसे देखकर आश्चर्य में डूबा कि वास्तव में यह कोई मानवी है अथवा वनदेवी ? इतनी रूपवान और तेजस्वी आकृति तो वनदेवी की ही हो सकती है। सेठ ने निश्चय किया कि जो भी हो उसे निकट जाकर अवश्य पता लगना चाहिए कि वह कौन है ? हो सकता है कि वह कोई विपदा ग्रस्त नारी हो और उसे मानवता के नाते उसकी शुभ सहायता करने का सौभाग्य मिले।

सुशील सेठ बहुत धीमे कदमों से बालू के ढेर के पास पहुंचा और बहुत ही मीठी आवाज में बोला।

''बहिन, तुम कौन हो और कहां जा रही हो ? क्या मैं तुम्हारी कोई सहायता कर सकता हूं ?

अब तक मंजुला की देह में कुछ–कुछ शक्ति का संचार होने लगा था अतः वह धीरे–धीरे बैठी और सम्बोधन करने वाले पुरुष की मुखाकृति को ध्यान पूर्वक देखने लगी। उसे लगा कि वह व्यक्ति न चोर या लुटेरा हो सकता है और न ही कोई क्रूर या दुर्जन। मनुष्य के मन का स्वरूप अधिकांशतः उसकी आकृति पर झलक उठता है और फिर उस की भाषा भी उसके मन का पट खोल देती है। सुशील सेठ की आकृति और भाषा से मंजुला आश्वस्त हो गयी कि यह व्यक्ति निश्चय ही सज्जन पुरुष है और उसके मुंह से निकला बहिन का सम्बोधन उसके लिए आश्रय का भी विश्वास दिला रहा है। उसके मन में इस कारण शांति पैदा हुई और उसने स्थिर भाव

से उत्तर दिया–

''भाई साहब, मेरे लिए तो बस इतना ही समझ लीजिये कि मैं एक दुखियारी हूं और किसी भी दुखियारी को कोई निरापद आश्रय स्थान मिल जाए यही उसकी चाह होती है। लेकिन क्या मैं पूछ सकती हूं कि आप कौन हैं और किस प्रकार से सहायता करने के इच्छुक है ?

''कोई बात नहीं बहन तुम कोई भी हो किन्तु इस समय तुम दुर्बल दिखाई दे रही हो इसलिए पहले तुम कुछ स्वस्थ हो जाओ'' यह कहकर सुशील सेठ ने अपने साथ चल रहे वैद्यराज को बुलाया और उसे तुरंत लाभकारी औषधि देने का निर्देश दिया।

जब औषधि प्रयोग के बाद मंजुला स्वस्थ सी हो गयी तब सुशील सेठ ने जानकारी पाने के लिहाजा से पूछा–

''पहली बात तो यह है बहन कि तुम मुझे अपना भाई समझो और निशंक हो जाओ। अब बताओ कि तुम इस सुनसान अरण्य में कैसे पहुंची ? तुम अकेली थी या तुम्हारे पति भी साथ में थे ? तुम कहां की निवासी हो और तुम्हारा पूरा परिवार कहां रहता है ?''

प्रश्नों की एक साथ इतनी झड़ी सुनकर मंजुला कुछ सहम सी गई और सोचने लगी कि अपने कर्मों का रहस्य हरेक के सामने प्रकट करते रहने में क्या शोभा है ? इसलिये उसने संक्षेप में इतना ही उत्तर दिया–

''भाई साहब, मैं और मेरे पति चन्द्रनगर से चले थे किन्तु ऐसी दुर्घटना घटी कि पतिदेव घोड़े से गिर गये मैं घोड़े पर ही बेहोश हो गयी। फिर घोड़ा रात भर न जाने कहां–कहां कितना दौड़ता रहा और अभी–अभी जब मेरी चेतना लौटी तो मैंने आपके काफिले के आने की आहट पायी।''

सुशील सेठ ने देखा कि थोड़ी सी दूरी पर ही घोड़े का मृत शरीर भी पड़ा था। उसे विश्वास हो गया कि इस समय तो यह स्त्री अवश्य ही दुखियारी हो गयी है क्योंकि चन्द्रनगर वहां से कई कोसों दूर था और फिर दुर्घटना में उसके पति का जाने क्या हुआ होगा। अब तो यह निराश्रिता है और यदि वह मान जाय तो वह उसे बहन के रूप में आश्रय देने को तैयार है। यह सोच कर अब उसने अधिक स्नेहमय मनुहार के साथ कहा–

''चन्द्रनगर बहुत दूर है तुम्हारे कहे अनुसार तुम्हारे पतिदेव का पता लग पाना भी कठिन ही दीखता है। इसलिए अगर तुम्हें कोई आपत्ति न हो

तो मेरे काफिले के साथ चलो। मैं घर ही जा रहा हूं और तुम्हें अपने घर में बहन के मान के साथ रखने को तैयार हूं।''

मंजुला की आंखों में यकायक चमक आ गई कि इस समय उसे कोई योग्य शरणदाता मिल जाय यही बहुत है। सार्थवाह के अनुसार वह अकेली पति की खोज करने में समर्थ नहीं थी, इसलिए उसने कहा–

''भाई साहब, इस दुखियारी को आप जैसे दयावान भाई का आश्रय मिल जाय यह मैं अपना भाग्य मानूंगी।''

मंजुला की स्वीकृति मिल जाने पर सुशील सेठ ने प्रसन्नता जाहिर की।

काफिला भी रात भर से चल रहा था इसलिए सेठ ने विश्राम के लिए वहीं पड़ाव डालने का आदेश दिया। सभी लोग नित्य कर्म की निवृत्ति में लग गये।

इस बीच मंजुला का निरभ्र स्थान पर आसन लगा कर समभाव में बैठ गयी और महामंत्र का जाप करने लगी। उस समय उसके मुख मण्डल पर शांति की जो आभा फूट रही थी उससे सभी लोग अत्यन्त प्रभावित हुए। जब मंजुला ने नेत्र खोले तो सभी लोग वहां एकत्रित हो गये थे–

''आप इतनी संकटग्रस्त हैं फिर भी इतनी शांति धारण कर लेती हैं– यह आप कैसे करती हैं ? हम लोग इतना धन कमाते हैं फिर भी हमको शान्ति नहीं है। आप तो बहुत बड़ी साधिका लगती हैं। हमको भी आपके ध्यान की कुछ धारा तो बताइये।''

''आप सब लोग गुणग्राही हैं, इसीलिए पूछ रहे हैं। जो आत्मा को समभाव का भोजन बराबर खिलाता रहता है उसके शरीर को भले ही भोजन न मिले, वह भूखा नहीं होता और जो आत्मगुणों से सदा तृप्त रहता है वह अपनी शान्ति को भी बराबर बनाए रखता है.....।'

मंजुला का उद्‌बोधन सुनकर सबने शांति लाभ किया तो सबका मन मंजुला के प्रति गहरी श्रद्धा से भर उठा। जब सब भोजनादि की तैयारी के लिए चलने लगे तो मंजुला ने कहा–

''मैं भी अब आपके इस परिवार की सदस्या हो गयी हूं इसलिए मैं भी आपके साथ काम करूंगी और सबके साथ ही भोजन करूंगी।''

इस प्रकार मंजुला ने अपनी शालीनता, सौजन्यता एवं पवित्रता की छाप सभी पर डाल दी। सुशील सार्थवाह तो मन ही मन धन्य हो उठा कि उसके घर में इस सती जैसा चिंतामणि रत्न प्रकाशित होता रहेगा।

''अरी भागवान, जरा देखो तो सही इस बार मैं तुम्हारे लिए धर्म–बहन लेकर आया हूं। हरबार जब भी काफिला लेकर आता हूं तब धन और विविध प्रकार के पदार्थ तो लाता ही हूं। वे तो इस बार भी लाया हूं किन्तु यह सती रूपी चिंतामणि रत्न ऊपर से है। यह गुणवती और धर्मपरायण दुखित अवस्था में अरण्य में मिली है जिसको मैंने धर्म बहन बना कर इस घर में आश्रय देने का वचन दिया है। इसकी आत्मा शांति से काफिले के सारे लोग इससे श्रद्धा करने लगे हैं और तुम भी जब इसके साथ रहोगी तो अवश्य ही आत्मा की शांति व आत्मा का आनन्द प्राप्त कर सकोगी।''

सुशील सेठ ने अपनी धर्म बहन बनायी मंजुला का अपनी धर्मपत्नी से परिचय कराया।

यह मनोविज्ञान सही लगता है कि कोई भी सामान्य स्त्री दूसरी अपरिचित स्त्री के प्रति निशंक भाव नहीं रखती है। सुशील सेठ की पत्नी ने मंजुला को एड़ी से लगाकर चोटी से देखा और मन ही मन शंका उठायी कि पति देव इतनी सुन्दर स्त्री को धर्म बहन बना कर लाये हैं और घर में साथ–साथ रहना चाहते हैं इसमें जरूर दाल में काला मालूम होता है। यह स्त्री दुबले शरीर और बिना श्रृंगार के भी इतनी सुन्दर दीखती है कि मैं तो इसके अंगूठे के नाखून के बराबर भी नहीं। इस कारण पतिदेव का मन कभी भी डगमगा सकता है और मेरे लिए इसी घर में दुःख का पहाड़ टूट सकता है।

पत्नी ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया तो सुशील सेठ उसके मन के भाव पढ़ता रहा फिर उन्हें समझ कर वह पुनः बोला–

''प्रिये, यदि तुम अन्यथा विचार कर रही हो तो मैं स्पष्ट कर दूं कि मैं इसके रूपलावण्य पर मुग्ध नहीं हूं। मुझे तो इसकी आत्म शक्ति पर श्रद्धा हुई हैं और चूंकि यह निराश्रिता थी अतः धर्म बहन बना कर ही घर में आश्रय देने का निश्चय किया है।'

इतना कहने के बाद पत्नी ने कुछ भी विपरीत कहना उचित नहीं समझा और यही कहा–

''आपने यदि इसे अपनी धर्म बहन बनाया है तो मेरी भी ननद होकर बहन ही हो गयी है और मैं इसे इसी मान से घर में रखूंगी।''

कहने को तो सुशील सेठ की पत्नी ने यह बात कह दी और पति के सामने मंजुला की पीठ थपथपा कर आशीर्वाद भी दे दिया, लेकिन उसके मन में संशय का जो कांटा गड़ा था वह गड़ा ही रहा। ❑❑❑

# २५
# सेठानी ने पूरा षड़यंत्र रचा

मंजुला तो सरल वृत्ति एवं सादी प्रवृत्ति वाली महिला थी। उसने अपने आप को उपकृत माना कि सुशील सेठ ने उसको अपने घर में आश्रय दिया तथा सेठानी ने भी उसे बहन के समान मान कर अपना आशीर्वाद दिया। इस दृष्टि से मंजुला ने उस घर को अपना दूसरा पितृगृह मान लिया।

मंजुला ने देखा कि घर में नौकर चाकर बिना सही समझ बूझ के काम करते हैं और उसकी वजह से घर में चारों तरफ अस्त–व्यस्तता सी फैली हुई है। घर के विभिन्न कार्यों के संचालन में भी उसे सुव्यवस्था का अभाव दिखाई दिया। यह देखकर उसने सारी व्यवस्था का सूत्र स्वयं संभाल लेने का मन ही मन निश्चय कर लिया– यह सोच कर कि वह अपने आश्रयदाता की स्वयं कुछ सेवा कर सके और दूसरे, यदि वह अपने शरीर श्रम के कार्यों में भी लगी रहेगी और साथ–साथ में आध्यात्मिक साधना भी करती रहेगी तो उसका समय शान्तिपूर्वक गुजरता रहेगा।

जब मंजुला ने नौकरों–चाकरों के हाथों में काम खुद लेना शुरू किया तो पहले–पहले सेठानी ने उसे दिखावे के रूप में ऐसा करने से रोका किन्तु मंजुला के समझाने पर वह जल्दी ही मान गई। उसने सन्तोष की सांस ली कि नौकरों–चाकरों का खर्चा कम होगा, उसे भी पूरा आराम मिलेगा तथा घर की खटखट में रात–दिन लगी रहने के कारण इसका मन भी उलझा हुआ रहेगा और सेठजी की तरफ आकर्षण–विकर्षण का प्रयास नहीं चलेगा।

ज्यों–ज्यों मंजुला के साथ रहते हुए सेठानी के दिन व्यतीत होने लगे उसे समझ में आने लगा कि यह वास्तव में गुणशीला एवं उज्ज्वल चरित्र सम्पन्ना महिला है। मंजुला ने अपना सुचारू दैनिक कार्यक्रम बना लिया था जिसमें वह घर के प्रत्येक कार्य की सुव्यवस्था भी करती तो अपनी धार्मिक साधना में भी पूरा समय बिताती। यही नहीं, उसने पास पड़ौस से मिलने आने वाली स्त्रियों के साथ में भी धर्म चर्चा आरम्भ की और उन्हें प्रतिदिन धर्माचरण के क्षेत्र में आगे बढ़ाने लगी। धीरे–धीरे मंजुला के आदर्श व्यक्तित्व की तरफ

पास पड़ौस के लोग भी श्रद्धापूर्वक प्रभावित हो गये।

यद्यपि मंजुला के आचार–विचार में सेठानी को कहीं भी कोई दोष नहीं दिखाई देता था फिर भी मन ही मन वह जलती रहती थी कि यह महिला उसके पति को तो वश में किये हुए है ही लेकिन पास पड़ौस के सभी लोगों को भी अपने वश में किये जा रही है। यह आज नहीं तो कल उसके लिए खतरे की बात हो सकती है। सच बात तो यह थी कि सेठानी मंजुला के प्रति अपने दिल में गड़े हुए कांटे को निकाल नहीं पायी थी और उसकी पीड़ा से हर वक्त छटपटाती रहती थी बल्कि वह अवसर ढूंढ़ती रहती थी कि मौका आने पर वह इस कांटे को निकाल फेंके। वह अपने मन में आशंका को बराबर पाले हुए चल रही थी।

सुज्ञानी व्यक्ति अपनी किसी भी भूल को सहज भाव से स्वीकार कर लेते हैं और कभी किसी को अपने साथ विवाद करने का अवसर नहीं देते हैं। इस कारण उनका स्वयं का हृदय स्वच्छ रहता है तो सामने वाले को प्रहार करने का मौका नहीं मिलता है किन्तु कुज्ञानी व्यक्ति अपनी दुष्टता को भी मन ही मन पालते रहते हैं; उसे तनिक भी बाहर प्रकट नहीं होने देते और जब समय आता है तो अपना बदला क्रूरतम भावों के साथ ले लेते हैं। उस में मंजुला सुज्ञानी की तरह बरताव कर रही थी तो सेठानी की तरह चल रही थी।

इस बीच सुशील सेठ पुनः काफिला लेकर परदेश गया और वहां से काफी धन सम्पदा लेकर वापिस लौटा। जिस समय वह अपने घर पर पहुंचा सेठानी कहीं बाहर मिलने जुलने गयी हुई थी तथा घर में मंजुला अकेली ही थी। सुशील सेठ ने आवाज लगायी तो निश्छल भाव से मंजुला बाहर निकल आयी। आखिर जब वे भाई–बहन ही थे तो संकोच की कौन सी बात थी ?

सुशील सेठ ने स्नेहपूर्वक कुशलक्षेम पूछा और पूछा कि उसकी भाभी कहां है ? मंजुला ने बताया कि वह कहीं मिलने–जुलने गई है तो सुशील सेठ ने मंजुला को ही बहुमूल्य पदार्थों को भीतर व्यस्थित रखने में उसका हाथ बंटाने को कहा। इस तरह सुशील सेठ और मंजुला दोनों सामान बाहर से भीतर रखने लगे।

तभी सेठानी अपने घर लौट आयी। द्वार पर दृष्टि पड़ते ही वह चौंक कर जल भुन गई। उसने देखा कि उसके पति और मंजुला घर के भीतर से बाहर चले आ रहे हैं और दोनों के चेहरों पर खुशी तैर रही है। उसके मन

में कलुष तो पहले से ही फैला हुआ था और अब यह दृश्य देखकर सांप ही लौट गया। वह अपने पति के रुख को जान चुकी थी इसलिए उसने उस समय किसी भी प्रकार से विरोध करना उचित नहीं समझा। बस मन ही मन उसने पक्की गांठ बांध ली की अब चाहे जैसे हो, इस कंटक से अपने घर को मुक्त करा ही लेना चाहिये।

सुशील सेठ ने सेठानी को देखते ही प्रेम पूर्वक कहा–''भद्रे ! तुम इस समय कहां चली गई थी ? कुछ बहुमूल्य सामान था सो तुम्हारे यहां न होने के कारण मंजुला से मैं रखवा रहा था। संध्या का समय हो गया है इसलिए इस सामान को बाहर पड़ा रखना ठीक नहीं था।''

''हां–हां, क्यों नहीं ? बहन से मदद लेने में हर्ज ही क्या है ?' –सेठानी ने ऐसी मासूमियत से कहा कि मंजुला तो कुछ गलत समझी नहीं किन्तु सुशील सेठ अवश्य ही उसके कहने के ढंग में छिपे हुए व्यंग्य के पुट को समझ गया।

सुशील सेठ हमेशा की तरह कुछ दिन घर पर ठहरा और अपने व्यापार कार्यों में लगा रहा। फिर समय आने पर वह अपना काफिला लेकर परदेश को चल दिया।

X X X

सुशील सेठ के परदेश चले जाने बाद घर का वातावरण यथावत् ही चलने लगा। मंजुला के मन में किसी प्रकार की कोई दुविधा या आशंका थी नहीं और सेठानी अपने मन में जो दुविधा पाल रही थी। उसे वह किसी भी रूप में बाहर प्रकट नहीं होने देती थी। वह मंजुला के साथ पहले जैसे स्नेह भाव से ही रह रही थी। लेकिन इस बार सेठानी ने पक्का निश्चय कर लिया था कि सेठ अपना काफिला लेकर लौंटे उससे पहले–पहले वह मंजुला को ठिकाने लगा देगी। उसके मन में प्रतिशोध की चिनगारी धीरे–धीरे जलती हुई ज्वाला बनती जा रही थी। वह इस ख्याल में थी कि कोई ऐसा षड़यंत्र रचा जाय जिससे मंजुला को एहसास तक न हो कि उसके साथ क्या घटित हो गया है ?

कुटिल व्यक्ति हमेशा बड़ा चौकन्ना रहता है कि वह अपने बुरे इरादे को पूरा करने के किसी मौके को चूक न जाय। सेठानी भी पूरी तरह सावधान थी। तभी उसे जानकारी मिली कि पास के शहर की एक वेश्या उसके गांव आयी हुई है और गांव के बाहर ठहरी हुई है। उसके मन में

तत्काल कल्पना जागी कि क्यों न वह उस वेश्या से मिलकर मंजुला को उसके चंगुल में फंसा दे ? मंजुला जैसी सुन्दर स्त्री को पार कर वेश्या का धंधा चमक उठेगा और इस कारण वेश्या से मंजुला को देने के बदल में अच्छी धनराशि भी प्राप्त कर सकती है।

किसी और काम का बहाना करके सेठानी उस वेश्या के पास पहुंची। वेश्या घबरा कर असमंजस में घिर गई कि एक संभ्रांत महिला उसके पास किस कारण से आयी है, क्योंकि उसने कभी किसी संभ्रांत महिला से भेंट नहीं की थी। उसने सेठानी को आदरपूर्वक बिठाया और पूछा–

''आपका इस नगण्य महिला के यहां कैसे पधारना हुआ है''

''वैसे ही आ गई थी। मैंने सोचा कि आप इतनी सुन्दर और इतनी चतुर हैं तो क्या आपने ऐसी ही अपनी उत्तराधिकारणी भी खोज ली है ?''

''मैं आपके कहने का मतलब समझी नहीं।''

'मेरे कहने का मतलब यह है कि यदि आपकी ऐसी कोई उत्तराधिकारिणी नहीं हो तो मेरे ध्यान में एक ऐसी ही स्त्री है जो आपके धंधे को चमका सकती है।'

यह सुनकर वेश्या को बड़ा ताज्जुब हुआ कि सामने बैठी हुई स्त्री सेठानी है या दलालन ? जरूर इसके कहने में कोई रहस्य भरी बात है फिर भी उसके लिए अगर लाभकारी बात है तो वह बात क्यों न करे ? उसने सेठानी से कहा–

''अगर आपके ध्यान में ऐसी कोई स्त्री हो तो मुझे जरूर दिखाइये और अगर वह मुझे पसंद आ गयी तो मैं उसे खरीद लूंगी।'

उस समय सेठानी की नजर खिड़की से बाहर गई तो उसने देखा कि कुछ दूरी पर मंजुला जा रही थी– शायद निवृत्ति हेतु आई होगी। ठीक मौका देखकर उसने इशारे से वेश्या को मंजुला की तरफ देखने को कहा और बताया–''यही वह स्त्री है जिसके लिए मैं बात कर रही हूं।''

वैश्या ने अपनी पारखी आंखों से मंजुला को घूर कर देखा तो खुशी से झूम उठी। इतनी सुन्दर स्त्री अगर उसे मिल जाती है तो वह लाखों का वारा न्यारा कर देगी। वह उत्साह से भर उठी और उसने अधीर होकर सेठानी से कहा–

''मैं एकदम तैयार हूं आप मेरा यह सौदा पक्का करा दो। मैं इसके पचास हजार तक देने को तैयार हूं।'

तब सेठानी ने समझाते हुए कहा–

''यह काम बहुत नाजुक है इसलिए इसे बड़ी तरकीब से पूरा करना पड़ेगा। हमें इस तरह से योजना बनानी चाहिये कि इस स्त्री को भनक तक न पड़े कि वह किसी वेश्या द्वारा खरीदी जा रही है।''

''सेठानीजी, आप इसकी तनिक भी फिक्र न करे। वेश्याएं वैसे भी विशेष बुद्धि रखती है और मैं अपने आप को उनमें भी विशिष्ट समझती हूं। मैं आपको बता देती हूं कि मैं किस तरह से आपके यहां आकर नाटक रचूंगी और किस तरह आप उसे मेरे साथ रवाना कर देंगे।''

सेठानी यह सुनकर बहुत खुश हुई। फिर दोनों कुटिल महिलाओं ने सारे षड़यंत्र का निर्धारण किया। सारा कार्यक्रम निश्चित कराकर सेठानी अपने घर लौट गयी।

X X X

''आओ–आओ मौसीजी, आज आप किधर से रास्ता भटक गई है ? इतने दिनों तक क्या आपको अपनी भाणेज की याद ही नहीं आयी ? पधारो, ऊपर बिराजो।'' सेठानी ने जोरदार आवभगत दिखाई और तेज आवाज में मंजुला को पुकारा–

''बहिन जल्दी इधर आओ। देखो बहुत दिनों बाद मेरी मौसीजी आई है, इनकी जोरदार खातिरदारी करो। जल्दी से विविध व्यंजन सजाकर तो लाओ।''

मंजुला यह समझकर कि भाभी की मौसी आई है खातिरदारी के काम में उत्साह पूर्वक जुट गयी। मौसीजी को खिला–पिला कर सेठानी ने मंजुला को भी अपने पास बिठा ली और मौसीजी को उसका परिचय कराने लगी–

'' मौसीजी, इसे मेरे पतिदेव धर्म बहन बना कर लाये हैं तब से यह हमारे साथ ही रह रही है। यह ऐसी धर्मपरायणा है कि सारे पास पड़ौसी इससे बहुत प्रभावित हैं। गुणवती भी ऐसी है जैसी सामान्यतया मिलना मुश्किल है। इसकी मैं जितनी प्रशंसा करूं उतनी थोड़ी है। इसके आने से मेरा घर में मन लगने लगा है वरना पतिदेव जब परदेश चले जाते थे तब बिल्कुल सुहाता ही नहीं था। आप भी बहुत वर्षों बाद आयी हैं, इसका क्या

कारण है ?''

''बेटी क्या करती ? मेरा भी बाहर निकलना बहुत कठिन हो गया है क्योंकि घर में मैं अकेली रह गयी हूं और ढलती उम्र में घर का सारा काम मुझे खुद ही करना पड़ता है। तुम भाग्यशालिनी हो जो तुम्हें ऐसी सुशील स्त्री मिली है।''

''हां मौसीजी आप ठीक कहती हैं। यह वास्तव में इतनी सुशील है कि मुझे किसी काम को हाथ लगाने ही नहीं देती। आने के बाद से घर की सारी व्यवस्था भी यही सम्भाल रही है। यह भोली भी इतनी है कि सबको खाना खिलाने के बाद ही स्वयं खाती है। सच पूछें तो इसकी सेवा से मुझे बहुत सुख मिल रहा है। शायद अपनी पैदा की हुई संतान से भी इतना सुख न मिले।''

सेठानी के मुंह से यह सब सुनते–सुनते मौसीजी अपना माथा ठोकने लगी और गमगीन बनकर आंसू गिराने लगी। चौंकने का नाटक करती हुई सेठानी पूछ बैठी–

''यह क्या मौसीजी, आप इतनी दुःखी कैसे हो रही है और इस तरह आंसू क्यों बहा रही है ? आपके पास धन सम्पत्ति की कोई कमी नहीं है, फिर आपका मन पीड़ा से इतना क्यों भर गया है ?''

मौसीजी ने रोते–रोते ही कहना शुरू किया–

''क्या बताऊं बेटी मुझे घर में कोई शांति देने वाला नहीं है। धन सम्पत्ति बहुत है, नौकर–चाकर भी बहुत हैं मगर दिल से सेवा करने वाला कोई नहीं है। क्योंकि मेरे कोई सन्तान नहीं है। तुम तो अभी कम आयु की हो तथा पतिदेव का संग भी है तो सन्तान भी हो सकती है लेकिन मुझ विधवा को यों ही खटखट कर मरना पड़ता दीखता है।''

''मौसीजी, आप इतना दुःख न करें और मेरे से कोई सेवा बन पड़ती हो तो मुझे आज्ञा दें। यथासाध्य आपकी सेवा करूंगी।'

''बेटी तेरा सुख छीन कर मैं अपना सुख मांगूं– यह न तो अच्छा लगेगा और न तुम पसंद करोगी''– कह कर मौसी कुछ क्षणों के लिए मौन हो गयी।

''फिर भी कहिये तो सही, आप मुझ से क्या मांगना चाहती हैं ? मैं आपको वह चीज अवश्य दूंगी।''

''बेटी कहना सरल है, लेकिन करना मुश्किल होता है। जब तुम पूछ ही रही हो तो बता दूं कि तुम्हारी इस बहन को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे अपनी बेटी बना कर रखूंगी।''

इस बार सेठानी ने जोरों से चौंकने का नाटक किया और घबराती हुई बोली–

''मौसी जी, आपने तो मेरे कलेजे पर ही हाथ रख दिया है। आप कोई भी दूसरी चीज मांग लीजिये, मैं देते हुए नहीं हिचकिचाऊंगी लेकिन मौसीजी, इसको आपके साथ भेजने का काम तो मुझे से नहीं हो सकेगा।''

''बेटी तुमने बार–बार जब मांगने के लिए कहा तभी मैंने यह मांग रखी है। वरना मेरे पास धनसम्पत्ति की तो कमी है नहीं जो कोई दूसरी चीज तुमसे मैं मांगती। हां अगर इसके बदले में तुम्हें मुझसे कुछ लेना हो तो मैं देने के लिए तैयार हूं।''

मंजुला अब तक चुपचाप बैठी इस सारे वार्तालाप को सुन रही थी। कोई भी सरल व्यक्ति हमेशा सबको सरलता की दृष्टि से ही देखता है। उसने तनिक भी संशय नहीं किया कि दोनों महिलाएं जो बातें कर रही हैं उनमें झूठ भी हो सकता है। उसने सोचा कि मेरे लिए जो जैसी भाणेज वैसी मौसी। अगर मेरी वजह से यह वृद्धा मौसी सुखी बन सकती है तो मुझे इसकी सेवा करने में कोई आपत्ति नहीं है। कहीं भी हो उसे तो निरापद आश्रय चाहिये था। फिर भी वह अपनी तरफ से कुछ भी बोली नहीं।

सेठानी ने ही उत्तर दिया–

'' मौसीजी, इसको मेरे पति देव लाये हैं और इस कारण मैं उनकी आज्ञा के बिना आपके साथ इसको कैसे भेज दूं ?''

''बेटी, यह तो नहीं भेजने का बहाना है। जितना पति का अधिकार है उतना ही तुम्हारा भी ? बल्कि उनकी अनुपस्थिति में तो तुम्हारा ही पूरा अधिकार है।' फिर मंजुला की तरफ मुड़ कर सीधा प्रश्न किया–''बोल बेटी, चलोगी मेरे साथ ?''

''वाह भाई सा. क्या तुम्हें सगे–सम्बन्धियों के यहां जाने से मना करेंगे ? ऐसा ही है तो भाई सा. आवे तो मिलने चली आना और फिर अपना नगर यहां से बहुत दूर तो है नहीं।''

सेठानी ने भी निर्दोष बनते हुए उसकी बात की पुष्टि की–

''बेटी जब, मौसीजी इतना आग्रह कर रही है तो इनको नाराज मत करो–इन के साथ चली ही जाओ। तुम्हें वहां कोई कष्ट नहीं होगा।''

मौसी ने भी हाथ नचा कर कहा–

''कष्ट ? कैसी बात करती हो ? मेरे घर में किस बात की कमी है ? तुम्हें मैं बेटी समान रखूंगी।''

अब मंजुला क्या बोलती ? मन में वह दुविधा में पड़ी हुई थी कि भाई सा. की आज्ञा बिना जाना क्या उचित होगा ? किन्तु इस समय स्थिति ऐसी पैदा हो गयी थी कि वह ना या हां कुछ भी नहीं कह पा रही थी इसलिए वह मौन ही बैठी रही। दोनों कुटिल महिलाएं तो मिली हुई थीं इसलिए उन्होंने इस मौन को मंजूदरी घोषित कर दी। तब सेठानी ही बोली–

''मौसीजी, जब यह बहन मान गई है तो आप इसको खुशी–खुशी ले जा सकते हैं। आप अपने वहां इसको आराम से रखें और जब इसके भाई सा. आ जायेंगे तो मैं इसको लेने के लिए भेजूंगी सो इसको मिलने के लिए जरूर भेज देवें।''

फिर तो मौसी जल्दी से मंजुला का हाथ पकड़ कर उठ खड़ी हुई और चलने को तैयार हो गई। विवश मंजुला ने सेठानी के प्रति इतने दिन रखने के लिये आभार प्रकट किया तो सेठानी भी दिखाने की विदाई के दुःख से रो पड़ी। दूसरे ही दिन सेठानी की मौसी बनाम वेश्या अपने नगर कंचनपुर के लिये प्रस्थान कर गयी।

❑❑❑

# २६
# भाग्य की टेढ़ी मेढ़ी कहानियां

भाग्य कोई थोपा हुआ विधान नहीं होता, बल्कि स्वयं के किए हुए कृत्यों का ही फलाफल होता है। फर्क इतना ही होता है कि क्या कुछ पहले किया था उसकी तो आज जानकारी नहीं होती किन्तु जो आज भुगतान में आता है और उसकी जो महसूस होती है, उसी को भाग्य की संज्ञा दे दी जाती है। ऐसा भाग्य जब पुण्य का उदय होता है, तो सपाट सड़क पर दौड़ता है और कहीं कोई कठिनाई दिखाई नहीं देती, लेकिन जब पाप का उदय सामने आता है तो वही भाग्य ऐसी टेढ़ी मेढ़ी गलियों में बेतहाशा भटकने लगता है कि कहीं दीवार से सिर टकराकर खून बह निकला है तो कहीं नाली में टांग फंसकर अपनी हड्डी तोड़ बैठता है। श्रीकान्त का भाग्य उस समय ऐसी ही टेढ़ी मेढ़ी गलियों से गुजर रहा था।

जिस समय उसका घोड़ा ऊबड़ खाबड़ जमीन पर चल रहा था, घोड़े का पैर एक काल–सर्प पर लग गया– लगते ही वह क्रूद्ध होकर ऊपर उछला तथा श्रीकान्त के पैर से टकरा गया। उस सर्प ने क्रोध की ज्वाला तब उस पैर पर निकाली। उसका दंश इतना तीव्र था कि श्रीकान्त जैसा सहनशील युवक भी उस पीड़ा को बर्दाश्त नहीं कर सका। वह जोर से चीखा और अचेत होकर नीचे गिर पड़ा।

उसी अवस्था में श्रीकान्त सारी रात वहीं पड़ा रहा। सर्प का जहर चढ़ता रहा जिससे उसका सारा शरीर नीला पड़ गया। भाग्य की विडम्बना देखिये कि बहुत कष्टपूर्ण खोज के बाद अपनी धर्मपत्नी से मिलन भी हुआ तो वह पति के संकटग्रस्त हो जाने के बावजूद भी उसके साथ नहीं रह सकी– सेवा करने का तो प्रश्न ही सामने नहीं आया। परन्तु इसमें न तो पति का दोष है और न पत्नी का ही–या यों कहिये कि जो कुछ भी दोष है उन दोनों के भाग्य–चक्र का ही दोष है।

प्रातःकाल की सुनहली किरणें श्री श्रीकान्त को जगा नहीं पाई। उसका विषग्रस्त शरीर वैसा ही निष्चेष्ट पड़ा रहा।

तभी उधर से सन्यासियों का एक दल गुजरा। उनमें से किसी की दृष्टि श्रीकान्त पर पड़ी तो वह सबको लेकर वहां पहुंचा। उनके गुरु ने श्रीकान्त को भलीभांति देखा तो उन्हें ज्ञात हो गया कि इस युवक को किसी अति विषैले सर्प ने दंश किया है। वे सर्प का विष उतारने में सिद्धहस्त थे अतः शीघ्र ही उन्होंने विष झाड़ने का अपना विधि विधान आरंभ कर दिया। धीरे–धीरे सर्प का विष जब झड़ने लगा तो श्रीकान्त की चेतना लौटने लगी। उसने शनैः–शनैः अपने नेत्र खोले तो अपने सामने सन्यसियों के दल को देखकर वह आश्चर्यान्वित हो गया। वह टुकुर–टुकुर सन्यासियों के गुरु के चेहरे को देखने लगा, जो अभी भी मंत्रोच्चार करते हुए उसके सर्पदंश के स्थान को झाड़ रहे थे। युवक को जागृत होते देख गुरु को बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनके ठीक समय पर पहुंच जाने के कारण इसकी जान बच गई है।

श्रीकान्त के मस्तिष्क में सबसे पहला सवाल यह उठा कि उसकी मंजुला कहां है ? घोड़ा भी कहीं आस–पास दिखाई नहीं दे रहा था। उसके मन में तरह–तरह की आशंकाएं उठ रही थी कि क्या मंजुला को ढूंढते–ढूंढते जयशेखर के सैनिक ही वापिस तो उठा नहीं ले गये अथवा क्या किसी अन्य संकट ने मंजुला को दबोच लिया ? उसे इस तरह सोच में पड़ा हुआ समझकर गुरु ही बोले–

''बच्चा अब फिक्र करने की कोई बात नहीं है। तुम्हें एक काल–सर्प ने काट लिया था और अगर हम समय पर यहां पहुंच कर अपनी मंत्र शक्ति से तुम्हारे विष को झाड़ न लेते तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित थी, किन्तु अब तुम बच गये। अब थोड़ी ही देर में तुम पूर्णतया स्वस्थ भी हो जाओगे।''

''मैं आपका बहुत ही आभारी रहूंगा, योगीराज''–श्रीकान्त ने आभार प्रकट करते हुए कहा किन्तु उसका मन–मस्तिष्क आशंकाओं तथा चिन्ताओं से घिरा हुआ ही रहा।

सन्यासियों के गुरु को श्रीकान्त एक अतीव तेजस्वी युवक लगा और उनकी इच्छा हुई कि वह यदि उनके दल में सम्मिलित हो जाय तो उन्हें बहुत वर्ष होगा। उन्होंने उस युवक का परिचय पाने दृष्टि से पूछा–

''युवक तुम कौन हो और यहां किस प्रयोजन से पहुंचे थे ?''

श्रीकान्त उनके प्रश्न का उत्तर देता, उस से पहिले सैनिकों का एक दल सामने आकर खड़ा हो गया और कड़कड़ाती आवाज में सन्सासियों के गुरु को पूछने लगा–

''ओ बाबा, क्या आपने इधर एक सुन्दर स्त्री को निकलते हुए देखा है ?''

बाबा को उनकी अपमान भरी पूछताछ बुरी लगी, इसलिए उन्होंने भी कड़क कर ही जबाव दिया–

''हमें स्त्री से क्या मतलब ? हम तो सन्यासी हैं। स्त्री की तरफ देखते भी नहीं। तुम्हें हमें ही स्त्री के बारे में पूछते हुए शर्म नहीं लगती ?'' बाबा के क्रोध से सैनिक घबरा गया और माफी मांगते हुए बोला–''बाबाजी मुझे माफ करें। हम सारी रात सारा जंगल छानते–छानते थक गये हैं। इसी कारण आपके साथ अशिष्टता हो गई तो हम क्षमा चाहते हैं।''

गुरु ने भी तब शान्तिपूर्वक सैनिक से पूछा–

''भाई, तुम किस स्त्री की बात कर रहे हो और वह कहां से क्यों भाग गई थी सो तुम उसे सारी रात जंगल में छानते फिर रहे हो ?''

''क्या बतावें बाबाजी, हम चन्द्रनगर के राजा जयशेचर के सैनिक हैं। हमारा राजा दुष्ट इच्छा से मंजुला नामकी एक सुन्दर महिला को अपने राजभवन उठा लाया था और उसे अपनी पटरानी बनाना चाहता था। वह महिला सती स्त्री थी–अपनी शील रक्षा पर डटी रही। फिर एक योगीराज आये और वह उनके साथ भाग निकली। हमारा तो पक्का अनुमान है कि वह सती स्त्री किसी पर पुरुष के साथ भाग ही नहीं सकती थी। अवश्य वह उसका पति ही होगा, तो उसे ढूंढते–ढूंढ़ते वहां पहुंचा होगा राजा के हाथ से चूंकि उस का तोता उड़ गया है इसलिए हम उसके कठोर आदेश से दौड़ते फिर रहे हैं।''

''भाई, जब तुम्हारी उस सती स्त्री के साथ सहानुभूति है तो फिर तुम इतना कठिन प्रयास क्यों कर रहे हो ?''

''महाराज, राजा के कठोर दंड का भी तो डर है। राजा भी तो पूरे सैनिक दल के साथ है और दल के कुछ–कुछ सदस्य चारों ओर बिखर कर उस स्त्री की तलाश कर रहे हैं।''

''कोई बात नहीं बच्चा, हम कहते हैं कि तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा और जब वह सती स्त्री है तो भगवान भी उसकी रक्षा करेगा, वह राजा को वापिस नहीं मिल सकेगी। लेकिन एक बात मेरी ध्यान में रख लेना कि राजा के पाप में खुद को तुम कभी शरीक मत करना। अपना–अपना पाप सबको

खुद भुगतना पड़ता है मगर जो दूसरे के पाप को खुद ढोने की मूर्खता करता है, वह पूरी तरह से पाप पंक में डूबता है।''

''आपकी नेक सीख अवश्य ध्यान में रखेंगे, गुरुदेव ।'' – इतना कहकर वह सैनिक जाने को मुड़ा तो बाकी सब सैनिक भी उसके साथ आगे बढ़ गये।

X X X

श्रीकान्त की आंखों के आगे अभी–अभी जो दृश्य गुजरा, उससे यह तथ्य तो साफ हो गया कि मंजुला जयशेखर के सैनिकों के हाथ तो नहीं लगी है। उसने सोचा कि अगर मेरे नीचे गिर जाने के बाद वह भी नीचे गिर पड़ी होती तो आस–पास में इन सन्यासियों को ही अथवा सैनिकों को दिखाई पड़ जाती। इसका मतलब यही निकलता है कि घोड़े पर से कूद नहीं सकी अथवा गिरी नहीं और घोड़ा उसे उठाये–उठाये ऊबड़ खाबड़ में कहीं बहुत दूर निकल गया है।

अपने प्रियजन के बारे में बुरी शंका जल्दी से उभरती है किन्तु अज्ञात परिस्थितियों के बावजूद भी श्रीकान्त के मन में यह शंका नहीं उठी कि मंजुला इस संसार से ही विदा हो गई हो। उसका मन अब भी आशा से भर पूरा था। उसके मन में चोट थी तो यही कि उसको सफलता पूर्वक ढूंढ़ कर साथ ले लेने के बाद भी वह वापिस बिछुड़ गई है। और उसको फिर से ढूंढ़ निकालने का कठिन कार्य उसके कंधों पर आ पड़ा है। उसकी मनोदशा पुनः वैसी ही हो गई है, जैसी कि पहले पहल श्रीपुर से घर छोड़कर निकलते हुए बनी थी।

श्रीकांत ने मन ही मन निश्चय किया कि अपना पूरा परिचय देने से कोई लाभ नहीं है लेकिन यदि यह सन्यासियों का दिल उसे अपने साथ रखने को राजी हो जाय तो उसे उनके साथ हो जाना चाहिये ताकि ग्राम–ग्राम नगर–नगर उनके साथ घूमते हुए मंजुला की और उनके लाड़ले की खोज निर्बाध रूप से होती रहेगी।

इसलिये जब गुरु ने सैनिकों के जाने के बाद श्रीकान्त को अपने पहले वाला प्रश्न दोहराया तो उसने संक्षिप्त सा इतना ही उत्तर दिया–

''गुरु महाराज, मैं तो देश दर्शन की इच्छा रखने वाला घुमन्त प्रवृत्ति का युवक हूं और इधर–उधर भ्रमण करता रहता हूं। कल इधर से निकल रहा

था और जैसा आपने बताया कि सांप ने काट लिया जिससे मैं अचेत हो गया। मुझे तो इतना ही याद है कि मुझे कुछ तीव्र दंश हुआ, मैं चीखा और उसके बाद जब आंखें खुली तो मैंने जीवन रक्षक के रूप में आपके दर्शन किये हैं।'

गुरु की जिज्ञासा बढ़ी और उनके मन में आशा जगी कि यह युवक उनके साथ हा सकता है, अतः विवरण जानने की दृष्टि से उन्होंने फिर पूछा–

''तो क्या युवक, तुम्हारे परिवार में भी कोई नहीं है और तुम एकांकी ही हो ?''

''हां महाराज, यही समझ लीजिये कि इस समय मैं एकाकी ही हूं और यदि आप मुझे अपने दल में सम्मिलित होने की आज्ञा दें तो उसके लिये भी मैं उद्यत हूं।''

श्रीकान्त के इस कथन से गुरु हर्षित हो उठे क्योंकि जो प्रस्ताव वे रखना चाहते थे, मानों उसकी स्वीकृति उस युवक ने अग्रिम रूप में ही दे दी थी। उन्होंने अपना हर्ष प्रकट करते हुए कहा–

''युवक, हम तुम्हें अपने दल में सम्मिलित करके बहुत खुश होंगे। तुम एक प्रतिभाशाली युवक दिखाई देते हो इसलिये हम तुम्हें अपनी विद्या सिखायंगे और अपनी मंत्र शक्ति भी देंगे। हम सर्व वगैरा कई जहरीले जानवरों का जहर झाड़ने के मंत्र जानते हैं–वे भी तुम्हें बतायेंगे ताकि तुम भी हमारी तरह विषग्रस्त लोगों को नया जीवन देकर लोकोपकार कर सको।'

श्रीकान्त ने उठ कर गुरु के चरण छू लिये और गुरु ने उसे छाती से लगाकर स्नेह पूर्वक इस तरह भींचा कि जैसे उसे दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया हो।

❑❑❑

# २७

# धोखे से कंचनपुर के कोठे में

कंचनपुर की वह वेश्या अव्वल नम्बर की धूर्त थी। मंजुला जैसा सुन्दर नारी रत्न प्राप्त करके उसको सहेज कर रखने की उसकी बुद्धि अधिक सतर्क हो गई। सेठानी के यहां से मंजुला को लेकर वह सीधी कंचनपुर के लिये रवाना हो गई और काफी रात बीतें जब वह अपने कोठे पर पहुंची तो मंजुला को तनिक भी भनक नहीं पड़ने दी कि वह किसी सभ्रान्त महिला का निवास स्थान न होकर किसी वेश्या का कोठा है। वह मंजुला को मकान के भीतरी कक्षों या दालानों में न ले जाकर नाल से सीधी ऊपर की तीसरी मंजिल में ले गई और वहीं पर एक एकान्त कमरे में उसने मंजुला को ठहरा दिया।

दासियों को बुलाकर उसने उस कमरे में सादगी से सारे सामान को व्यवस्थित करवाया तथा मंजुला को सम्बोधित करके उसने कहा–

''बेटी, यहां तुम्हारी वृत्तियों के अनुरूप सारी व्यवस्था सादगीपूर्ण है। तुम यहां निश्चिन्त होकर विश्राम करो। यहां तुम्हारी धार्मिक साधना के लिये भी एकान्त और शान्ति है। किसी चीज की जरूरत हो तो इस दासी को बता देना, यह तत्काल ले आयगी। तुम किसी भी तरह से कष्ट मत देखना।''

''मंजुला ने यह सब आश्चर्य के साथ सुना और बाद में आश्चर्य के साथ ही पूछा–

''माता जी, आप मुझे यहां पर अपनी सेवा कराने के लिये लाये हैं, तब फिर मुझे एकदम ऊपर अलग–थलग क्यों ठहरा रहे हैं ? मुझे तो आप जहां रहते हैं, वहीं अपने साथ रखिये ताकि हर वक्त मैं आपके सुख का ध्यान रख सकूं। यहां तो आप उल्टी मेरी सेवा का सारा प्रबंध कर रही है–यह मुझे समझ में नहीं आ रहा है।''

''अरी मंजुले ! मैं तो तुम्हें अपनी सेवा करवाने के लिये ही लाई हूं– इसमें कोई सन्देह थोड़े ही है। मगर अभी तुम बाहर से आई हो सो अपनी

थकान मिटालो, स्वस्थ हो जाओ फिर जब तुम्हारे दिल जम जायगा जब जिन्दगी भर मेरी सेवा ही तो तुम्हें करनी है।''–उस वेश्या ने बड़ा ममत्व छांटते हुए मंजुला की पीठ थपथापाई।

मंजुला आश्वस्त होकर बोली''–ठीक है माताजी, जैसी आप आज्ञा दें, लेकिन आप यह मानकर चलें कि मैं सारा काम अपने ही हाथ से करना और वृद्धों की सेवा सुश्रूषा करना पसन्द करती हूं, न कि रानी की तरह बैठकर दासियों पर हुकुम चलाना।''

''तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हारी वृत्ति को पूरी तरह समझ गई हूं। तुम तो प्रसन्न रहो, जैसा तुम पसन्द करोगी, वैसा ही किया जायगा।''

इस प्रकार विश्वास दिलाकर वह वैष्या नीचे उतर गई और मंजुला के कमरे के बाहर नियुक्त दासी को भी अपने साथ नीचे ले गई। वहां उसे एकान्त में ले जाकर धीरे–धीरे समझाने लगी–

''अरी नन्दू, यह मैं नया माल लेकर आई हूं। बहुत बड़ी कीमत चुका कर लाई हूं– पूरे पचास हजार। एक मुश्त रकम सेठानी को पकड़ाई है। इस कारण सारा काम बहुत सावचेती से जमाना है। नाया खूबसूरत पंछी हाथ लगा है जो जरा भी भूल से कहीं फड़ फड़ाकर उड़ गया तो पछताते रह जायेंगे और उसका मन मनाकर अगर धंधे में जमा दिया तो लाखों की कमाई कर लेंगे।.....देख, तुझे सारा मामला समझा दूं। मैं इस को इसकी सम्बन्धी बनकर अपनी सेवा कराने का झांसा देकर लाई हूं। यह बहुत ही सच्चरित्र तथा सद्गुणी है इसलिये आसानी से अपने धंधे में घुसेगी नहीं, इस वास्ते धीरे–धीरे चक्कर इसको चक्कर में फांसना पड़ेगा।.....फिलहाल तो तू ऊपर ही ठहर कर उसकी बराबर निगाह रखना कि वह यह घर वेश्या का कोठा है–ऐसा न जान पाए और दूसरे वह चोरी छिपे इस मकान से निकल कर न चली जाए। बाकी इन्तजाम मैं ध्यान में रख लूंगी।'

वेश्या ने दासी को सारी भलावण देकर वापिस ऊपर भेज दी।

X X X

मंजुला को अभी तक रंच मात्र भी सन्देह नहीं हुआ था कि वह कंचनपुर में एक वेश्या के कोठे में धोखे से ले आई गई है। सोने से पहले उसने प्रार्थना की तथा महामंत्र का जाप किया। फिर सोते–सोते वह तरह–तरह के विचारों में खो गई–ऐसे विचार जिनसे वह पिछले कई वर्षों से

घिरी रहती आई थी। पतिदेव को क्या हुआ होगा ? अब वे फिर से कहां–कहां भटकने लगे होंगे ? (क्योंकि उसके मन में यह कुविचार कभी नहीं आया कि वे इस संसार में न रहे होंगे ) अब फिर उनका मिलन कहां, कब और किस तरह हो सकेगा ? अब तो उसका लाडला भी यौवन की देहरी पर चढ़ चुका होगा– क्या वह भी अपनी मां से कभी मिलेगा ? एक बार बिछुड़े हुए सभी मिल जायं तो एक सांसारिक कर्त्तव्य की पूर्ति हो जाय।

तभी उसकी विचारधारा ने मोड़ लिया। यह सांसारिकता तो क्षणिक है। शाश्वत है अपनी आत्मा–अपनी ही चेतना, जो कभी मूर्छा–ग्रस्त नहीं होनी चाहिये। धर्म साधना द्वारा यदि इसे सतत जागृत रखी जा सके तो वैसा प्राणी कभी भी आत्म विस्मृत नहीं बनता है और उस प्रकार की जागृत अवस्था में अपने सांसारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह भी समभाव के साथ कर सकता है। आध्यात्मिकता प्रधान है और भौतिकता गौण, फिर भी संसार में रहते हुए दोनों का सुन्दर तालमेल बैठाये रखना चाहिये।

मंजुला की विचारधारा की एक विशेषता थी कि वह चाहे जैसे विचारों के प्रवाह में बहती रहती, किन्तु सारे प्रवाह का उपसंहार सदा अपनी आत्मा को केन्द्र में रखकर ही किया करती थी और यही एक जागृत आत्मा का सुलक्षण होता है। ऐसी आत्मा कैसी विकट परिस्थितियों में कभी अंधेरे में भटकती नहीं है। अपनी ही आत्मशक्ति का प्रकाश उसे सदा मार्ग दिखाता रहता है। यही कारण था कि परिस्थितियों के अंधेरे में भी प्रकाश की रेखाएं देखती रहती थी और अपनी विचारधारा को विवेकशील बनाये रखती थी।

विचारों में गोते लगाती हुई थकी मांदी मंजुला जल्दी ही नींद में खो गई।

बड़े सबेरे जब हमेशा की तरह जगी तो वहां उसे बड़ी शान्ति महसूस हुई। वह अपनी साधना में बैठी और ध्यानास्थ हुई तब भी उसे न तो कोई बाधा महसूस हुई और न ही किसी प्रकार की अशान्ति। तब तक भी उसे उस समय स्थान के बारे में कोई शंका उत्पन्न नहीं हुई थी।

मंजुला ने कई बार आग्रह किया कि उसे गृहस्थी के सारे कामों में भाग लेने दिया जाय और जिस उद्देश्य से उसे यहां लाया गया है, उसे पूरा होने दिया जाय, किन्तु जब उसकी बात नहीं मानी गई तो उसने भी सन्तोष कर लिया कि ऊपर की मंजिल में उसकी धर्म साधना तो शान्तिपूर्वक चल रही है।

उस वेश्या ने सारा प्रबन्ध इतनी कुशलता से किया था कि कई दिनों तक मंजुला को वहां की कोई खबर नहीं लगने दी। नन्दू दासी ने मंजुला को बराबर भरमाए रखा। इस बीच वेश्या ने अपनी दूतियों द्वारा नगर के बड़े–छोटे रसिकों तक तरकीब–तरकीब से यह खबर पहुंचा दी कि वह ऐसी अद्‌भुत सुन्दरी अपने यहां लाई है जिसके रूप लावण्य को देखकर अच्छे से अच्छा स्वरूपवान युवक भी मुग्ध हो जायगा। वेश्या ने योजना बनाई थी कि पहले ऊंचा मोल देने वाले ग्राहकों को तैयार कर लिया जाय, फिर सर्वप्रथम किसी ऐसे मनोहारी नवयुवक को धूर्ततापूर्ण तरीके से मंजुला के पास भेजा जाय कि कुछ युवक उसको फसलावें और कुछ वह खुद फिसले और इस तरह उसके लाभकारी कार्य की शुरूआत हो जाय। उसके ध्यान में एक ऐसा नवयुवक था भी सही और उसने परोक्ष रूप से उसको ऐसी रूपसी के सम्बन्ध में सन्देश पहुंचा भी दिया था। अब तो वह घटना क्रम के सफलतापूर्वक गुजरने की इन्तजार में थी।

X X X

त.....त्.....थै....या.....

छुम्.....छनन्.....छुम्.....छनन

आज अचानक ही वेश्या का कोठा तबलों की थाप और घुंघरुओं की आवाज से गूंज उठा। साजिन्दे साज बजा रहे थे, युवतियां एक ताल और लय पर नाच रही थी तथा वह वृद्धा वेश्या सज धज कर घमंड से अपने ऊंचे आसन पर बैठी हुई थी। वह मन ही मन घमंड से भरी हुई थी कि अब उसका मान दूसरी सभी वेश्याओं से ऊपर है क्योंकि अब उसके पास ऐसी बहुमूल्य सम्पत्ति है जिसका कहीं भी कोई जोड़ मिलना मुश्किल है।

काफी अर्से बाद महफिल जमाई गई थी और चूंकि इस अर्से में वेश्या ने अपनी नई उपलब्धि की जानकारी अपने रसिक ग्राहकों को करा दी थी इसलिये महफिल जमते ही उन लोगों का आना भी शुरू हो गया था। लोग आते–जाते, कोठे की मालकिन को आदाब बजाते और दूध सी धुली चादरों से ढके गद्दों पर बैठ जाते। वह भी बड़े गरूर से एक–एक ग्राहक से बतियाती और सैन ही सैन में आगे का नक्शा समझाती।

नाच का एक दौर खत्म हुआ तो एक रसिक ने पूछ लिया– ''क्या आप अपनी रूपसी को दिखायेंगी भी नहीं ?''

''वाह–वाह, दिखाई क्या मुफ्त में होगी। अभी जरा सब्र रखो–दिखाई भी होगी, मिलाई भी होगी, मगर वक्त को आने दो। तब तक अपनी थैलियों को मुद्राओं से पूरी भर लो'–मालिकन ने हाथ घुमाते और आंखें नचाते हुए कहा।

''तुम मुद्राओं की चिन्ता न करो, काकी, हम तुम्हारी झोली ही नहीं, तुम्हारा सारा कोठा मुद्राओं से भर देंगे, मगर उस रूप के एक बार दर्शन तो करा दो.....'और कई ग्राहकों ने एक साथ अपना ऐसा आग्रह प्रकट किया। वह सुनती रही और मन ही मन भटकती रही कि उसकी गरज करने वाले कई रसिये आयेंगे, अब उसे इन लोगों की परवाह थोड़े ही है। और इन्तजार जितनी लम्बी कराई जायगी, मुद्राएं भी उतनी ही ज्यादा निकलवाई जा सकेंगी।

बड़ी देर रात तक महफिल चलती रही। नाच गानों और कहकहों की आवाज उस कोठे पर गूंजती रही।

X X X

और आश्चर्य में डूबती हुई मंजुला इन सारी आवाजों को सुनकर सोचती रही और गहरे आश्चर्य में डूबती रही।

उसके सामने सारा घटना चक्र कांच की तरह साफ हो गया था कि सुशील सेठ की अनुपस्थिति में सेठानी ने यह षड़यंत्र रचा था और उसे धोखे से इस वेश्या से मौसी का नाटक करवा कर बेच दिया था। वह जो समझ रही थी कि उसका समय किसी गृहस्थिन के निवास स्थान में शान्ति से बीत रहा है–वह एक भ्रम था। वही भ्रम अब खतरे का बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह बनकर उसके सामने लटक गया था।

मंजुला को इस तथ्य का विशेष खेद महसूस हुआ कि जहां सुशील सेठ जैसे स्वरूपवान पुरुष ने अपनी कामनाओं को संयम में बांधकर उसे अपनी बहिन बनाकर घर में स्नेहपूर्वक आश्रय दिया, वहीं उसकी धर्मपत्नी नारी होकर भी एक नारी की वेदना को नहीं समझ सकी और व्यर्थ की ईर्ष्या में जलकर इतना कड़ा प्रतिशोध ले बैठी। नारी जाति की क्या यह क्षुद्र मनोवृत्ति नहीं है ? पुरुष के अत्याचार से नारी, नारी को न बचा सके–यह तो दूसरी बात है, और नारी के प्रति पुरुष की सच्ची सहानुभूति एवं सच्चे सहयोग को भी नारी ही सहन न कर सके–वह भी ठीक, लेकिन नारी ही

किसी दुखिया परन्तु धर्मपरायणा एवं शीलवती नारी के जीवन से घिनौना खेल–खेले उसे कितना जघन्य कहा जायगा ?

वह अपने विचारों की धुन में ही अचानक चौंकी कि अब तो नंगा तथ्य सामने हैं। यह वेश्या पहले उसे फुसलाना चाहेगी और फिर जोरजबरदस्ती करने से भी बाज नहीं आयेगी। वह कामान्धों की भीड़ के बीच में फंसा दी जायगी। क्या होगा उसका ? कैसे करेगी इन भेड़ियों का वह अकेली मुकाबला ? एक कामान्ध से ही इतनी कठिनाई से वह छुटकारा पा सकी है तो अब उसकी समस्या कितनी जटिल है ? और फिर अब श्रीकान्त का सम्बल भी कहां है ? किसी का सम्बल नहीं। काश, उसके लाल का ही पता लग गया होता तो वह भी अब पूरा युवक बन चुका होगा और उसकी सुरक्षा करने का सामर्थ्य पा चुका होगा। किन्तु कहां है वे ? कहां है वह ? और कहां होगा उनका लाल ?

❑❑❑

# २८
# एक तरुण और मंजुला आमने-सामने

यह मनुष्य तन दुर्लभ माना गया है, क्योंकि यह तन इतनी समर्थताओं एवं योग्यताओं से भरा पूरा होता है कि जिनके बल से आत्मा की सर्वोच्च उन्नति साधी जा सकती है। किन्तु कोई इसी शक्तिशाली तन का दुरुपयोग करने पर उतारू हो जाय तो वह पतन की गहराइयों तक गिरता हुआ चला जा सकता है। इस तन से इस दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य चाहे तो पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जित कर सकता है और अपने हाथों अपना दुर्भाग्य रचे तो पापानुबंधी पाप के दलदल में फंस सकता है। कंचनपुर की वह वेश्या अपने जीवन को तो नर्कमय बना ही चुकी थी किन्तु दूसरी भोली–भाली नवयुवतियों के जीवन को भी पाप पंक में डूबो रही थी। उसकी नीचता की ताजा शिकार मंजुला बन गई थी।

जब मंजुला इन सब आशंकाओं के बारे में सोचते–सोचते थक गई तो अपने पलंग पर गिर कर रोने लगी।

''मंजुला बाई, अब तो तुम समझ गई होगी कि तुम किस ठिकाने पहुंची हो, इसलिए यह रोना–धोना बंद करो और अपने मन को नये काम–काज के लिये तैयार कर लो। अभी तक तुमने अपने जीवन में कठिन दुखों के अलावा देखा ही क्या है ? यहां जब तरह–तरह के सम्पन्न और सुन्दर मनचले नौजवानों से मिलोगी और वे जब तुम्हें अपनी हथेलियों पर उठाये–उठाये फिरेंगे तब उस आनन्द का क्या कहना ? एक बार बस अपने निश्चय को बना लो।''

इतना सुनते ही मंजुला तो बिफर कर खड़ी हो गयी और गरजती हुई सी बोली–

''तुम्हें शर्म नहीं आ रही है कि तुमने एक तो मेरे साथ धोखा किया और मुझे दुराचार में डूबने की निर्लज्ज बात कह रही हो। एक नारी होकर

भी नारी के अन्तःकरण को समझने की चेष्टा नहीं करती हो।.....लेकिन मैं भूल रही हूं कि तुम तो एक वेश्या हो। जब सुशील सेठ की सेठानी जैसी नारी ही नारीत्व को नहीं समझ पायी तो भला तुम क्या समझोगी ? लेकिन मैं तुमको सावधान कर देना चाहती हूं कि अगर तुमने मेरे साथ कोई कुचेष्टा करने की कोशिश की तो उसका परिणाम भयंकर होगा।

वह वेश्या मंजुला के उस सिंहनी जैसे रूप को देखकर कांप उठी। वह अच्छी तरह से समझ गई कि यह वैसी स्त्री नहीं है जिसके साथ जोर जबरदस्ती की जा सकेगी। इसके सामने तो ऐसे–ऐसे आकर्षक प्रलोभनों का ही जाल बिछा देना होगा ताकि यह मन मरजी से ही उसमें फंस जाय। यह सोचकर वह एकदम ठंडी हो गयी और ठंडी आवाज में ही मंजुला से बोली–

''बाईजी, आप गुस्सा मत करो। मैं आपकी मरजी के खिलाफ कोई जबरदस्ती नहीं करूंगी। आपका मन मानें तभी मुझे कृतार्थ करना। तब तक आप चैन से यहां अब तक जिस तरह की शांति से रही हो उसकी तरह से रहो और किसी तरह का अन्यथा विचार मत करो।'' इस तरह की चिकनी चुपड़ी बातें करके वह उस समय मंजुला के मन का गुस्सा दूर कर गई।

मंजुला भले थोड़ी सी आश्वस्त हो गई हो किन्तु इतना वह भली–भांति समझ गई कि अब यहां पर धर्म ही एकमात्र शरण है– सहारा है।

X X X

काकी, ओ काकी, देखो, तुमने संकेत कराया और मैं तुरन्त आ गया हूं।''

एक ओजस्वी तरुण धड़धड़ाता हुआ उस वेश्या के कोठे में अन्दर तक घुस आया था। उसकी मुखाकृति अत्यन्त स्परूपवान और भव्य थी। उसके रोम–रोम से यौवन की चपलता और बिजली की शक्ति फूटी पड़ रही थी। कोई भी उसको देखते ही उस पर मुग्ध होकर अपना सर्वस्व निछावर कर देने की उद्यत हो सकता था।

उस तरुण को देखते ही वेश्या का मन मयूर नाच उठा। अगर मंजुला अपने को एक दुर्लभ नारी रत्न मानती है तो यह तरुण भी अपनी दुर्लभता में उससे किसी कदर कम नहीं है। उसे अपनी भूल महसूस हुई कि बिना कुछ जोड़ कि चीज बताए ही वह खाली हाथ मंजुला को मनाने चली गई। किसी के मन को मोड़ना है तो उसको मोड़ने काबिल चीज भी तो सामने दिखानी

चाहिये। उसके मन में आशा की जोत जल उठी कि जब वह इस तरुण और मंजुला को आमने–सामने कर देगी तो फिर क्या मंजुला का मन बहक जाने से रुक सकेगा ? मंजुला चाहे कितनी ही धर्मपरायणा या शीलवती हो किन्तु है तो एक नारी ही ? नारी है तो उसका नारीतन है, उसकी जवानी है, उसका रूप है तो उसकी वासना भी उसमें जरूर होगी। उसकी उस वासना को उत्तेजित करने वाला इससे बढ़कर अछूता तरुण और कहां मिलेगा ?

अपने दिल को खुशियों की बौछार से नहलाते हुए वह वेश्या आगे बढ़ आयी और उसने उस तरुण का भावभीना स्वागत किया। एक ऊंचे आसन पर उसे बिठा कर वह शिष्टता के साथ बोली–

''आज्ञा दीजिये युवक महाशय, मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूं ?''

''सेवा की कोई बात नहीं है। मुझे एक हीरे की जरूरत है। और तुमने संकेत कराया है कि तुम्हारे यहां एक हीरा आया है तो उसे देखने, परखने एवं लेने के लिये चला आया हूं। शायद तुम्हें तो मालूम नहीं होगा कि मैं अभी तक ब्रह्मचारी हूं अतः योग्य जोड़ी हो तो मैं उसे अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहता हूं।'

''बाबू, आपका विचार बहुत सुन्दर है और यह भी सही है कि आपके लायक हीरा अभी मेरे पास आया है लेकिन हीरा दिखाने की कीमत देनी पड़ेगी।''

''काकी, तुमने यह चिंता क्योंकि कि मैं कीमत नहीं दूंगा ? दिखाने की भी कीमत लो और पसंद आ गया तो हीरे की पूरी–पूरी कीमत दूंगा।'' यह कह कर उस तरुण ने एक हजार मुद्राओं की थैली उस वेश्या के हाथों में थमा दी।

तरुण, मैं तो यों ही विनोद कर रही थी, लेकिन हीरा मेरी परख का है और तुम्हारे योग्य है। एक बात जरूर है कि हीरा बड़ा अमूल्य हैं और उसे तराश कर तैयार करने में तुम्हें अपनी पूरी चतुराई का प्रयोग करना पड़ेगा। कहीं जरा सी भी भूल कर बैठे तो ध्यान रख लेना कि हीरा हाथ में नहीं आयेगा।''

''इस बारे में तुम निश्चिंत रहो काकी, अब मैं तरुण हुआ हूं तो मेरे विवाहित दोस्तों ने तरुणाई की सारी कलाएं भी सिखला दी है। मैं तुम्हारे हीरे को अवश्य वश में कर लूंगा।''

''लेकिन यह तो बता दो कि उस हीरे की मुझे कितनी कीमत दे पाओगे ?''

''यह तो तुम्हीं बताओ कि तुम मुझसे कितनी कीमत लेना चाहोगी ?'

''मैं बता दूं कि मैंने उसकी पचास हजार मुद्राएं दी है तो मुझे उसका भरपूर लाभ तो मिलना चाहिये। हां, एक सुझाव मैं आपको देना चाहती हूं कि आप शादी के चक्कर में क्यों पड़ रहे हो। हमेशा मेरे यहां ही आ जाया करो और उसके साथ अपने मन को बहला लिया करो। तब आप प्रतिदिन की एक हजार मुद्राएं देते रहोगे तो भी मेरा काम चल जायगा।''

वेश्या की यह बात सुनकर तरुण ने अपने मन में सोचा कि इसको अपने हीरे पर ज्यादा लोभ आ गया है, इसलिये पहले एक बार हीरे को देख लेना ठीक रहेगा ताकि पसंद आ गया तो इसको मुंहमांगी कीमत भी दे दी जायगी। प्रकट रूप में उसने वेश्या से कहा–''काकी, हीरे की कीमत मैं मुंहमांगी दे दूंगा मगर जो गलत बात तुमने मुंह से निकाली है उसे वापिस मत निकालना। मैं एक सच्चरित्र तरुण हूं, दुराचारी नहीं। हीरे को हीरा समझ कर अपने माथे चढ़ाने के लिए लेना चाहता हूं, मैं कंकर लेने के लिए नहीं आया हूं। इसलिए मेरे से सोच समझकर ही बात करो।''

''मुझे माफ कर देना बाबू, मैं तुम्हें सही नहीं समझी थी। जैसे तुम हो वैसा ही हीरा भी है, इसलिए मैं मोल पूरा ही लूंगी और वह मोल होगा पांच लाख मुद्राएं।'

''चिन्ता न करो अगर हीरा पसंद आ गया तो पांच लाख मुद्राएं भी दूंगा। अब तुम मुझे हीरे से भेंट करवा दो।''

वेश्या तब उस तरुण के समीप आकर कान में फुसफुसा कर बोली–''इस सामने वाली नाल से चढ़कर आप सीधे तीसरी मंजिल पर चढ़ जाओ और वहां दाहिने हाथ पर एक कक्ष है उसमें प्रवेश कर जाना। भीतर आपको हीरा दिखाई दे जायगा।''

X X X

प्रकृति के राज्य में पूर्ण अनुशासन होता है जो विधान और नियम होते हैं उनका सर्वत्र यथावत पालन होता है विभिन्न ऋतुएं यथासमय आती है और अपना एकसा असर दिखाती है। उनके जलवायु का जैसा शरीर और मन पर असर पड़ना चाहिये वैसा ही असर हमेशा पड़ता हुआ दिखाई देता है। छोटे बड़े सभी जीव–जन्तु प्रकृति के नियमों का बराबर पालन करते हैं। वे चाहकर

भी कभी उनकी अवहेलना नहीं करते। प्रकृति के साम्राज्य में अगर कोई अनुशासन तोड़ना है तो वह मनुष्य ही होता है। उसे अपनी बुद्धि का गुमान होता है और इस कारण वह प्राकृतिक नियमों के प्रति बेपरवाही का रुख अपना लेता है। मनुष्य की उच्छृखंलता के बावजूद वह प्रकृति के प्रभाव को मेट नहीं सकता है। लेकिन जहां मनुष्य अपने सहज भाव से चलता है वहां तो प्रकृति का पूरा–पूरा प्रभाव प्रतिबिंबित हो जाता है।

जब वह तरुण अपनी मस्ती भरी चाल के साथ मंजुला के कक्ष में प्रविष्ठ हुआ और ज्यों ही दोनों आमने–सामने हुए कि दोनों के नेत्र मिल गये। दोनों एक दूसरे को देखने क्या लगे कि देखते ही रहे। कोई भी अपनी दृष्टि दूसरे पर से हटाने की मनोदशा में नहीं था।

मंजुला उस तरुण को देखते हुए अपने जीवन का अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कर रही थी उसे अनुभूति होने लगी कि यह युवक तो ऐसा लग रहा है जैसे हुबहू उसके पतिदेव की प्रतिमूर्ति हो। फिर भी क्या कहा जा सकता है ? एक आकृति के इस संसार में कई पुरुष हो सकते हैं। किन्तु मैं जहां किसी पर–पुरुष की तरफ दृष्टि तक उठाना नहीं चाहती हूं वहां इसके चेहरे पर से मेरी नजर हटना ही क्यों नहीं चाहती है ? अवश्य ही यह कोई रहस्यपूर्ण स्थिति है। ज्यों–ज्यों मैं इसे देखती जा रही हूं। इसे और ज्यादा देखने की इच्छा जगती जा रही है।

उधर उस तरुण की मनोदशा भी विचित्र बनी हुई थी। वह जब एकटक मंजुला की मुखाकृति को देख रहा था तो उसके हृदय में किसी तरह का विकार भाव नहीं जागा बल्कि प्रशान्त भाव पैदा हुआ। वह मंजुला को देखते जाता और उसे अधिकाधिक शान्ति की अनुभूति होती जाती थी। उसे परम आश्चर्य का अनुभव हो रहा था कि वह तो वहां अपनी जीवन संगिनी पसंद करने आया है लेकिन यह महिला तो मातृमूर्ति जैसी लग रही है। भीतर ही भीतर उसका मन मचलने सा लगा कि वह सामने वाली महिला की गोद में मुंह ढककर सो जाए।

यकायक मंजुला चौंक पड़ी। यह क्या ? उसके स्तनों में दूध कहां से भर आया है ? चुपचाप मन ममता की उछालें क्यों भर रहा है ? क्या सामने खड़ा यह तरुण मेरा ही लाल तो नहीं है ? लेकिन एकदम तो यह बात इसे कैसे कह दूं ? लेकिन उसे विश्वास हो गया कि असमय ही स्तनों में दूध का भर जाना ममता के उमड़ने का ही लक्षण है और ऐसी ममता मां का ही धन

होती है। अपने थन को परख कर पा लेने की साध मंजुला के मन में जोरों से जाग उठी। इसलिए उसने ही वार्तालाप का श्रीगणेश किया–

''तरुण क्या मैं पूछ सकती हूं कि तुम कौन हो और यहां क्यों आए हों ?''

तरुण ने जरा तल्खी से जवाब दिया–

''क्या आप यह नहीं जानती हैं कि आप किसी वेश्या के घर में बैठी हुई हैं और वेश्या के घर में बैठ कर आपने ये दोनों प्रश्न गलत पूछे हैं।''

''कोई बात नहीं, गलत समझ कर ही प्रश्नों के उत्तर दे दो क्योंकि जितनी गलत मैं यहां पर हूं, उतने ही गलत तुम भी यहां पर हो।''

''हां, आपकी यह बात तो सही है। मैं यहां के एक बनजारे का पुत्र हूं और मेरा नाम कुसुमकुमार है। मुझे इस वेश्या ने बताया था कि मेरे विवाह योग्य कोई तरुणी उसके यहां पर है इसलिए मैं देखने चला आया था। किन्तु मैं देख रहा हूं कि आप तो मेरी माता समान हैं और ऐसा ही श्रद्धा भाव मेरे मन में इस समय जाग्रत हो रहा है। कैसी हंसी की बात हो गई है मेरे लिए ?''– यह कहते–कहते वह तरुण स्वयं भी जोरों से हंस पड़ा।

अरे यह क्या ? इधर उस तरुण के मुंह से हंसी फूटी और उधर उसके साथ ही उसके मुंह से एक बेशकीमती लाल भी गिरी। उस लाल रत्न को गिरते हुए देखकर मंजुला को निश्चय हो गया कि यह उसी का लाड़ला लाल हे। अब तो वह क्षण भर के लिए भी स्थिर नहीं रह सकी और आतुरता पूर्वक उस तरुण के गले लग गयी। मां और बेटे का मधुर मिलन हो गया।

मंजुला ने तब अपने भाग्यशाली पुत्र को छाती से लगा कर अपने हृदय की अखूट ममता बरसायी और कहा–

''मेरे कुसुम तुम मेरे ही फूल हो, किसी बनजारे के बेटे नहीं। तुम्हारा जन्म होते ही मुझसे बिछुड़ गये थे और शायद है जिसे तुम अपना पिता मानते हो उस बनजारे ने तुम्हारा लालन–पालन किया है। वर्षों से मैं तुम्हें खोज रही हूं और तुम जब दिखाई दिये तो मेरे स्तनों में दूध भर आने से मुझे अनुमान हुआ कि तुम मेरे ही पुत्र हो। लेकिन हंसते हुए तुम्हारे मुंह से जब यह लाल रत्न गिरा तब पक्का विश्वास हो गया। तुम्हारे पिताजी को विद्याधर ने पहले ही बता दिया था कि हमारे ऐसा भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा जो जब हंसेगा तो उसके मुंह से लाल रत्न गिरा करेगा।'' इतना कहते हुए मंजुला ने आदि

से अन्त तक सारा विवरण और परिवार का परिचय अपने हृदय के टुकड़े को बता दिया। घण्टों मां और बेटे बातें करते रहे और अपने मन की शांति में विचरण करते।

कुसुमकुमार का हृदय मां की ममता से ओतप्रोत हो गया था। जिसे इतने वर्षों बाद ममतामयी मां के दर्शन हुए हों, उसका हृदय भला परमानन्द से क्यों न भर उठेगा ? किन्तु तभी उसके मस्तक पर चिन्ता की रेखाएं उभरी और वह अपनी मां से बोला–''मां अब यहां से तुम्हारे उद्धार का प्रश्न है। यह वेश्या बहुत धूर्त है किन्तु मैं सारे मामले को ठीक से बिठा कर तुम्हें अपने साथ ले जाऊंगा।''

''हां बेटे, फिर हम तुम दोनों मिलकर तुम्हारे पिताजी को खोजने निकल पड़ेंगे। इसलिए मुझे यहां से हटाने के काम में जल्दी ही करना।''

''बस मैं अब जा ही रहा हूं और अधिक से अधिक एक प्रहर में ही वापिस लौटकर आ रहा हूं मां, तुम चिन्ता मत करना।'' कहकर कुसुमकुमार जल्दी–जल्दी नीचे उतर गया।

वेश्या तो उसकी इन्तजार में आंखें बिछाएं खड़ी थी, कुटिल सी हंसी हंसते हुए उसने तरुण से पूछा–

''कहो, तरुण, मेरा हीरा तुम्हें पसन्द नहीं आया बल्कि अधिक भा गया लगता है। तभी तो घण्टों बीत गये हैं और तुमने नीचे उतरने का नाम ही नहीं लिया।'

तरुण ने बनावटी हंसी हंसते हुए बनावटी ही जवाब दिया–

''हां काकी, तुम्हारी परख बड़े गजब की है। तुम तो यह बताओ कि हीरे का मोल तुम्हें कब तक दे दूं ?''

''कब तक क्या ? अभी लाओ पांच लाख और ले जाओ अपने हीरे को।''

''तुम्हारे मुंह में घी–शक्कर काकी। अभी एक प्रहर के भीतर–भीतर मैं मुद्राएं लेकर आ रहा हूं और अपने हीरे को लेकर चला जाऊंगा''–कहता हुआ कुसुमकुमार तेज कदमों से कोठे के बाहर निकल गया।

❑❑❑

# २६
# नदी की उफनती धारा में कूदना पड़ा

जब कुसुमकुमार चला गया तब उस वेश्या की धारणा ने पलटा खाया। उसने सोचा, इस तरह तो पांच लाख में सारा खेल खतम हो जायेगा लेकिन अब अगर मंजुला को धंधा करने पर ही मजबूर कर दूं तो धीरे–धीरे ही सही–कई पांच लाख प्राप्त कर सकूंगी। आखिर जैसा माल ही वैसी कीमत चुकाने के लिए रसिक ग्राहक पांत बांध कर जो खड़े हुए हैं। मुझे तो इस तरुण से जो काम कराना था वह कामयाब हो गया है।

वेश्या ने अपनी धूर्तता पर खुद ही अपनी पीठ ठोकी कि उसने किस चालाकी से मंजुला के सतीत्व की धज्जियां उड़ा दी हैं ? जो अपने आप को परम गुणशीला और धर्मपरायणा बताते हुए थकती नहीं, वह अपने शील को नौजवान के चरणों में खो बैठी है। परपुरुष का मुंह तक न देखने वाली भ्रद महिला घंटों तक उस नौजवान के साथ अठखेलियां करती रही। अब जब उसने अपने सतीत्व का मुखौटा उतार कर फेंक ही दिया है तो धंधे में घुसने में दिक्कत ही क्या है ? एक पर–पुरुष के साथ सहवास करो या सैकड़ों पुरुषों के साथ, उसमें फर्क ही कितना होता है ? यही सब सोच कर उस वेश्या ने मंजुला के साथ जोर–जबरदस्ती करने की ठान ली। उसका डर इसी कारण दूर हो गया था।

कुसुमकुमार जब तक प्रहर तक भी राशि लेकर नहीं लौटा तब तो वह वेश्या और भी अधिक निश्चिंत हो गई। अब वह उसके दावे को भी इसी बहाने अमान्य कर देगी। फिर वह अपने मन को रोक नहीं पायी, धड़धड़ करती ऊपर चढ़ी और सीधी मंजुला के कक्ष में चली गई। वह आखिर धूर्त थ इसलिए उसने धूर्तता से ही बात की–

''वह तरुण जो आया था तुम्हें अपने साथ ले जाने की बात तय करके गया है। क्या तुम उसके साथ जाने के लिए तैयार हो ?'

मंजुला ने सोचा कि इस धूर्त वेश्या को सही बात बताने से कोई फायदा नहीं है। शायद उसका बेटा इसे सामान्य तौर से इतनी ही बात बता कर गया होगा। चूंकि वह प्रहर बाद वापिस आने को कहा गया था उसका यही अभिप्राय रहा होगा कि मुझे वह निश्चित राशि इस वेश्या को चुका कर ले जाने वाला होगा। इस कारण उसने वेश्या की बात का सीधा उत्तर दे दिया–

''हां मैं उसके साथ जाने को तैयार हूं। इतना सुनना था कि वेश्या जैसे आग–बबूला हो गई और कठोर शब्दों में उसे डांटती हुई सी बोली–

''जान गई बाई, मैं तुमको जान गई। बड़ा सतीत्व का ठेका लगा रखा था और एक नौजवान के साथ ही फिसल पड़ी। वह तो सुशील सेठ की सेठानी शायद है तुम्हें पहचान गई थी इसलिए उसने तुम्हें मेरे माथे मंड दी। अब जब तुम्हारे चरित्र का राज खुल गया है तो अब मैं तुम्हें बख्शूंगी नही।'

मंजुला ने भी तुनक कर कहा–

''जब आप पूरी बात जानती नहीं है तो यह सब बकवास करने की क्या जरूरत है ? सीधी सी बात है कि कुसुमकुमार जो बात आपसे तय कर गया हो उसके मुताबिक काम पूरा कर लेना। इससे ज्यादा आपको जबान नहीं लड़ानी चाहिये।''

''तू कल की छोकरी, मुझे जबान लड़ाने की बात कहती है ? समझ ले कि कुसुमकुमार का सौदा खत्म हो गया है। उसने एक पहर के भीतर–भीतर पांच लाख की राशि लाकर देने का वादा किया था लेकिन पहर बीत गया है और वह अभी तक नहीं अया है। इसलिए कान खोल कर सुन ले कि अब तुझे मेरे ही कब्जे में रहना है। जब एक पुरुष के मन को प्रसन्न कर सकी है तो पचासों पुरुषों के मन को आकर्षित करने में क्या कष्ट है ? अब तो मैं तेरे से डटकर धन्धा कराऊंगी और लाखों मुद्राएं कमाऊंगी।''

वेश्या का यह कथन सुनकर मंजुला को मन में विश्वास हो गया कि कुसुमकुमार ने असली बात वेश्या को बतायी नहीं है इसलिए वह यही समझ रही है कि मैंने अपना शील धर्म खण्डित कर दिया है। इसके साथ ही यह विडम्बना भी सामने आ गयी लगती है कि वह राशि प्राप्त करके कहे हुए समय पर नहीं आ पाया है। किसी भी कारण वे वह पांच लाख की राशि इकट्ठी नहीं कर सका और यहां नहीं आ सका तो यह धूर्त वेश्या अवश्य ही उसे उसके शीलधर्म के संकट में पटक देगी। फिर भी जो स्थिति सामने है

उसका उसे साहस के साथ ही सामना करना होगा। यह सोचकर उसने वेश्या की बात का दृढ़ता से जवाब दिया–

''खबरदार जो आपने ऐसे अभद्र शब्द फिर अपने मुंह से निकाले। आप अपनी नैतिकता बेच सकती हो, मानवता छोड़ सकती हो और पैसे के पीछे पागल बनकर दौड़ सकती हो। लेकिन ख्याल रखो, मैं ऐसी स्त्री नहीं हूं। उस तरुण के साथ मेरा किस प्रकार का सम्पर्क रहा है इसका भी तुम्हें ज्ञान नहीं है अपनी झूठी कल्पनाओं के पीछे जो तुम मेरे बारे में सोच रही हो वह सब गलत है। तुम्हारी धमकियों से मेरे पर कोई असर नहीं होने वाला है। मैंने अपने शीलधर्म को सदा अखण्ड रखा है और वह सदा अखण्ड रहेगा।''

मंजुला की ओजस्वी आवाज का वेश्या के दिल पर भारी असर हुआ लेकिन वह अपनी कमाई के स्रोत को यों आसानी से कैसे छोड़ दे ? वह भी फिर त्यौरियां चढ़ा कर बोली–

''मैं अब तुम्हारी लाग लपेट की बातों में आने वाली नहीं हूं। मेरे कोठे पर तुमको मेरी ही आज्ञा में चलना पड़ेगा। अगर तुम इस कोठे से भाग जाने का ख्याल करो तो पहले दस बार सोच लेना। मेरा कोठा एक किले की तरह है जिसमें से एक चींटी भी बाहर नहीं निकल सकती है। अगर तुमने अब भी मेरी आज्ञा नहीं मानने का दुस्साहस किया तो उसका बुरा फल भुगतना पड़ेगा और वह फल इस कदर बुरा हो सकता है कि मैं चार–चार लठैतों तुम्हारे रंग एक साथ बलात्कार करने को कहूं।''

ऐसी भयंकर बात उस दुष्ट औरत के मुंह से सुनकर मंजुला अवाक् रह गयी। वह भय से सिहर उठी कि ऐसी निर्दयी और निर्लज्ज औरत क्या अकृत्य नहीं कर सकती है ? जो औरत शील और संयम का महत्त्व नहीं समझती, उसमें लज्जा भी नहीं रह जाती और जहां लज्जा नहीं वहां दया भी नहीं। ऐसी स्थिति में मंजुला ने आगे कुछ भी बोलना उचित नहीं समझा और अपनी चुप्पी साध ली।

तब वेश्या भी यह कहती हुई– ''यह आज की रात तेरी है। भलीभांति सोच लेना वरना कल का सूरज मेरा उगेगा और मैं चाहूंगी जैसा बर्ताव तेरे साथ करूंगी'' और पैर पटकती हुई नीचे चली गयी।

वेश्या मंजुला को धमकी देकर चली गई और मंजुला भीषण दुविधा में पड़ गई है। अनायास ही उसे अपने पुत्र का संबल मिला और उसकी मुक्ति की संभावना पैदा हुई लेकिन न जाने क्या हुआ कि वह अभी लौटकर नहीं

आ सका है। शायद है राशि का प्रबन्ध न हो पाया हो या और कोई कारण हो गया हो और वह अब आ ही न पावे तो उसका क्या होगा ?

फिर उसकी विचारधारा ने नया मोड़ लिया। वह सोचने लगी, जब उसे श्रीपुर के घर से बाहर निकाला गया था तब उसके पास किसका संबल था ? उस समय भी उसने अपने आत्मबल पर ही विश्वास किया था और आज भी उसे वही करना चाहिये।

लेकिन उसे अभी तक निर्णय लेना है कि उसे क्या करना चाहिये। विकट परिस्थितियों में वह अपना मार्ग खोजने के लिए समभाव धारण करके ध्यान में बैठ गई एवं अपनी अंतरात्मा को टटोलने लगी।

उस समय उसके मन में दो विकल्प आ रहे थे। उन को विकल्पों के बीच में एक निर्णय उसे लेना था जैसे न्यायाधीश के सामने दो वकील खड़े होते हैं और एक वकील एक बात कहता है तो दूसरा उसके विरोध में बोलता है। परन्तु न्यायाधीश दोनों की बात सुनकर न्याय करता है–अपना फैसला सुनाता है। इसी तरह मनुष्य के मन में भी प्रत्येक विचार के पहलू उभरते हैं। दोनों पहलू मानों अपने–अपने गुण ही बताते हैं और अपना ही कार्यान्वयन कराना चाहते हैं। इस टकराहट में यदि मनुष्य की आत्मा जागरूक होती है तो वह न्यायाधीश की तरह दोनों पहलुओं का मनन करके निर्णायक बुद्धि से न्याय कर देती है। जिस मनुष्य की आत्मा जागृत नहीं होती उसका जीवन मन की इस टकराहट में उल्टे सीधे थपेड़े खाता रहता है। मंजुला तो विकसित निर्णायक बुद्धि वाली महिला थी। पहले उसने परिस्थिति के दोनों पहलुओं को अपने सामने रखा। पहला तो यह कि कुसुमकुमार के हाथों अपना उद्धार किये जाने की प्रतीक्षा करे। दूसरा यह कि अपना शीलधर्म सुरक्षित रखने के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दे।

रात गहरी होती जा रही थी और उसके विचारों के अन्धेरों को भी अभी तक प्रकाश नहीं मिल पाया था। एक प्रहर की जगह तीन प्रहर बीत चुके थे किन्तु कुसुमकुमार का कोई अता पता नहीं था तब उसकी प्रबुद्ध आत्मा ने निर्णय लिया कि अब और अधिक प्रतीक्षा खतरनाक सिद्ध हो सकती है प्राण चले जाएं–उसकी कोई परवाह नहीं लेकिन शीलधर्म को तनिक भी आंच नहीं आनी चाहिये। तब मंजुला ने अपना मार्ग निश्चित कर लिया।

X X X

मंजुला उस काली नीरव रात्रि में अपने कक्ष से बाहर निकली यह जानने के लिए कि क्या वास्तव में उस कोठे से बाहर निकलने का कोई मार्ग है भी या नहीं ? तब उसने देखा कि कोठे से बाहर निकल पाना तो दूर उसकी अपनी तीसरी मंजिल से नीचे उतरने का नाल का द्वार भी बन्द था। वह छत पर यह देखने के लिए इधर–उधर घूमने लगी कि कहीं किसी तरह नीचे उतरने का कोई साधन उसे दिखाई दे जाय, पर वह भी उसे नहीं दीखा।

तब उसने तीसरी मंजिल से ठेठ नीचे झांका। नीचे हमेशा की तरह नदी की उफनती हुई जल धारा बह रही थी। वेश्या का यह कोठा नगर के बाहर नदी के किनारे बना हुआ था। नदी उससे सट कर बह रही थी। मंजुला को यही समझ में आया कि इस नदी की गोद के सिवाय उसका अन्य कोई शरण स्थल नहीं हो सकता है। उसने निर्णय ले लिया कि वह नदी की उफनती हुई धारा में कूद कर अपने शील धर्म की रक्षा करेगी।

इस निर्णय के बाद मंजुला के मन में उसके जीवन के बच पाने की क्षीण सी आशा ही रह गयी थी। इस कारण उसने अपनी आत्मशुद्धि का विचार किया। अब तक मन, वचन और कर्म से जाने या अनजाने हुए अपने दोषों की उसने आलोचना की और सागारी संथारा किया कि यदि वह मरण को प्राप्त हुई तो उसके लिए सबका त्याग है और यदि जीवित रह गई तो अपने शीलधर्म का अधिक दृढ़ता पूर्वक पालन करेगी। फिर वह प्रभु का नाम स्मरण करती हुई तीसरी मंजिल से नीचे बह रही नदी की उफनती जलधारा में कूद पड़ी।

❑❑❑

# ३०
# मां यो मिली और यों खो गयी !

वेश्या के कोठे से निकलते ही कुसुमकुमार सीधा अपने घर पहुंचा। उस समय घर पर उसके बनजारा पिता तो थे परन्तु बनजारिन मां कहीं इधर–उधर गई हुई थी।

पिता से प्रार्थना सी करते हुए उसने कहा–''पिताजी, मुझे पांच लाख मुद्राओं की तत्काल आवश्यकता है, आप मुझे इसी वक्त दे दीजिये।''

''एकदम पांच लाख ? यह किसलिए चाहिये कुसुम ?''

''इस समय पिताजी, कारण मत पूछिये बस समझ लीजिये कि आपका बेटा मांग रहा है और यह राशि उसे प्यार से सौंप दे।''

''ऐसा कैसे हो सकता है बेटा ? तुम जवान हो और जवानी दीवानी होती है। इतनी बड़ी राशि अगर मैं तुम्हें यों ही दे दूं तो तुम न जाने किस अनीति में कदम रख दोगे ? जवानी के पागलपन में तुम्हारे हाथ से कोई भी अनर्थ हो सकता है।''

''आप मुझे बचपन से देख रहे हैं पिताजी क्या कभी मेरे से कोई छोटा–मोटा भी गलत काम हुआ है ?''

यद्यपि बनजारा जानता था कि जिस दिन से वह जंगल में मिले उस नवजात शिशु को अपने घर में लाया है, तबसे उसको अपने व्यवसाय में बराबर लाभ ही होता रहा है। वह यह भी जानता था कि उसक पाला पोषा हुआ यह बेटा इतना सुयोग्य सच्चरित्र है कि न तो उसने कभी कोई बुरा काम किया है और न कभी अपने माता–पिता की आज्ञा का उल्लंघन ही किया है। किन्तु बनजारे को धन पर जरा ज्यादा ही मोह था और एकसाथ पांच लाख मुद्राएं उससे निकलती हुई नहीं बन रही थी। इसलिए झूठा बहाना बनाते हुए उसने कह दिया–

''तुम हठ करते हो तो कुसुम तुम्हें मैं पांच लाख मुद्राएं तो दे दूंगा किन्तु तुम्हें कारण तो बताना ही पड़ेगा और फिर अभी तुम्हारी मां भी कहीं बाहर गई है जिसके आये बिना तुम्हें यह राशि मैं दे पाने में असमर्थ हूं क्योंकि तिजोरी की चाबियां उसी के पास है।''

कुसुमकुमार को पिताजी की इस इंकारी पर रोष भी आ रहा था तो वेश्या के कोठे पर समय पर न पहुंच पाने के कारण उसे भारी चिन्ता भी सता रही थी अतः निराशा में उसका मन विक्षुब्ध हो उठा। वह उदासीन स्वर में बोला–

''पिताजी, मैं समझता हूं कि आपको अपने इकलौते बेटे पर भी प्यार नहीं है और इसलिए विश्वास नहीं है, तभी तो आप राशि देने में इतनी आनाकानी कर रहे हैं। इसका यह भी मतलब हो सकता है कि आपको पुत्र प्यारा नहीं, पैसा ज्यादा प्यारा है। आप कैसे पिता हो ? या शायद आप मेरे पिता ही नहीं हो.....'' कहता हुआ कुसुमकुमार नाराजी में वहां से उठकर चला गया और अपने कमरे को भीतर से बन्द करके अपने पलंग पर पड़कर निढ़ाल हो गया। उसकी छाती भर आई और वह धार–धार रोने लगा। उसके दिल में रह–रह कर हूक उठने लगी कि जीवन में पहली बार उसे अपनी ममतामयी मां के दर्शन हुए और उसकी पहली बार वेश्या के कोठे से मां के उद्धाररूपी पुण्य कार्य का बीड़ा उठाया और पहले ग्रास में ही मक्खी गिर रही है। अपने बनजारा पिता के व्यवसाय में मैंने भी कम योगदान नहीं दिया है बल्कि अपने बुद्धि कौशल और श्रम से पर्याप्त धन अर्जित भी किया है। और आज मेरी कठिन आवश्यकता पर राशि देने से ये मुकर रहे हैं। वास्तव में जाइन्दे बेटे और पाले–पोषे बेटे पर होने वाले पिता के स्नेह में बड़ा अन्तर होता है। काश, ये मेरे असली पिता होते तो क्या मेरी मांग को यों ठुकरा देते ? मैंने अपनी जननी को पहला वचन दिया और उसी में मैं झूठा सिद्ध हो रहा हूं। मेरे वहां न पहुंच पाने के कारण मेरी मां मेरे लिए न जाने क्या क्या सोच रही होगी और वह वैश्या भी मेरी मां के साथ न जाने क्या दुर्व्यवहार करने पर उतारू हो रही होगी ?

हठात् वह आहें भरने लगा और अन्तर्मन की पीड़ा को न झेल पाने के कारण आधी संज्ञाहीनता और आधी निद्रा में डूब गया।

X X X

''तुम रात में कहां चली गई थी भद्रे ? मुझे तो कुसुमकुमार ने तंग करके ही रख दिया।'' प्रातःकाल बनजारिन के बाहर से लौट आने पर बनजारे ने उलाहना देते हुए कहा।

''बूढ़े हो गये हो लेकिन कैसी हंसी की बात करते हो ? क्या अब कुसुमकुमार दूध पीता बच्चा है सो रात को उसने मेरा दूध पीने के लिए तुम्हें तंग किया होगा।''

''तुम्हें तो हर समय मजाक ही सूझती रहती है। हुआ यह कि कल शाम को कुसुम कहीं बाहर से जल्दी–जल्दी आया और मुझे जल्दी से पांच लाख मुद्राएं देने को कहने लगा।''

''तो इसमें क्या बात थी ? दे देते उसको पांच लाख मुद्राएं अपना इकलौता बेटा है और उसमें कोई बुराई भी तो नहीं है फिर तुम उसे राशि देने से हिचकिचाएं क्यों ?''

''पांच लाख मुद्राओं के जैसे हाथ पांव ही नहीं होते जो बिना सोचे ही उसे दे देता ?''

''तो सोचकर दे देते।''

''मैं सोच नहीं पाया इसलिये मैंने राशि नहीं दी।''

''कितने अजीब आदमी हो तुम ? मेरे बेटे को न जाने कितनी सख्त जरूरत होगी उस राशि की ? बड़े कंजूस जो हो न ? खैर मेरा बेटा कहां है इस समय ?''

''वह तो उसी समय मुझसे नाराज होकर अपने कमरे में घुसा सो अभी तक कमरे में ही बन्द पड़ा है लेकिन जाते–जाते वह जो एक शब्द मुझे कह गया, उसका मुझे रात भर से दुःख हो रहा है।''

''ऐसा क्या शब्द वह तुझको कह गया कि तुम भी रात भर दुःखी होते रहे और तुमने रात भर से दुःखी हो रहे अपन बेटे को नहीं सम्भला ?''

''भद्रे, जाते–जाते आखिर में वह कह गया–''आप कैसे हो या शायद आप मेरे पिता ही नहीं हो, यह उसने कैसे कहा, मैं समझ नहीं पाया।''

''इस बात का तो मुझे भी ताज्जुब हो रहा है। क्या उसको कहीं से असलियत का पता चल गया है ? क्या जिस बेटे को इतने वर्षों से छाती से लगा कर मैंने बड़ा किया है, वह पराया बन जायगा.....''कहते–कहते

बनजारिन का गला भर आया और वह दौड़ते हुए अपने बेटे को सम्भालने के लिए चली गई। अब तो बनजारे का भी दिल भर आया और वह भी उसके पीछे–पीछे कुसुम के कमरे की ओर भागा।

बहुत देर तक किंवाड़ खटखटाने के बाद जब कुसुमकुमार के चेहरे पर उसके उन माता–पिता की नजर पड़ी तो वे सन्न रह गये। एक रात में उन्हें ऐसा लगा कि कुसुम जैसा खिला हुआ मुंह मुरझा कर एकदम म्लान हो गया। चेहरे के पीलेपन से उन्हें ऐसा लगा कि उनका बेटा रात भर अतीव दुःख करता रहा है और रोता रहा है। बनजारे को महसूस हुआ कि निश्चित ही उसको पांच लाख मुद्राओं की कठोर आवश्यकता थी। शायद उस राशि के न मिलने के कारण ही उसके बेटे का एक रात में ही जैसे सारा खून निचुड़ गया है।

बनजारिन ने तुरन्त अपने बेटे को अपनी छाती से लगा लिया और उसकी पीठ सहलाते हुए पूछने लगी–

''क्यों बेटे, क्या तुझे पांच लाख मुद्राओं की तत्काल आवश्यकता है ?

''हां मां, तत्काल आवश्यकता थी। कल शाम को ही यदि पिताजी यह राशि दे देते तो मेरे हाथ से एक बहुत बड़ा पुण्य कार्य सम्पन्न हो जाता। रात भर में क्या घटना गुजरी होगी, मैं कह नहीं सकता। फिर भी यदि पिताजी दे दें तो मैं वह राशि लेकर शीघ्र पता लगाने जाना चाहता हूं लेकिन मां कल मुझे पता चल गया कि जन्म देने वाले माता–पिता और पालने पोषने वाले माता–पिता के प्यार में कितना अन्तर होता है ? अगर मैं आपका जाइन्दा बेटा होता तो क्या पिताजी मेरी घबराई हुई सूरत देखकर पांच लाख मुद्राएं देने में एक क्षण के लिए भी हिचकिचाहट दिखाते ?''

''यह सब तुमको किसने बता दिया बेटा कि तुम हमारे जाइन्दे बेटे नहीं हो। हमने तो तुम्हें जन्म देने वाले माता–पिता से भी अधिक प्यार देकर पाला पोषा है। यह सही है कि तुम तुम्हारे पिता को जंगल में एकाकी पड़े मिले थे और तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें वहां से लाकर जबसे मुझे सौंपा था, मेरे तुम दिल के टुकड़े जैसे ही रहे हो।'' फिर वह अपने पति की ओर मुड़ कर बोली–''आप मेरे बेटे को पांच लाख या जितनी मुद्राएं वह मांगे इसी समय दे दो। हमारी सारी सम्पत्ति इसी के तो पुण्य का फल है।''

बनजारा उसी समय पांच लाख मुद्राओं की थैली ले आया और उसे कुसुमकुमार को सौंपते हुए कहने लगा–''जब तुम किसी पुण्य कार्य के लिए

यह राशि ले जा रहे हो तो मुझे कारण पूछने की जरूरत नहीं है।''

कुसुमकुमार ने थैली हाथ में ली और अतीव नम्रतापूर्वक निवेदन किया–''आप दोनों ने मुझे पाल पोष कर इतना बड़ा किया है उसका मेरे पर अनन्त उपकार है। मुझे कल ही पहली बार अपना जन्म देने वाली मां के दर्शन हुए थे और उसी से वास्तविकता का मुझे ज्ञात हुआ था। इस राशि की भी उस मां को बचाने के लिए ही तुरन्त जरूरत थी। रात भर में न जाने क्या हुआ होगा किन्तु अब भी मैं जा रहा हूं और अपना सब प्रयत्न करता हूं। आवेश में आकर मेरे मुंह से जो शब्द निकले उनसे आप दोनों के ह्रदय को क्लेश पहुंचा हो तो उसके लिए मैं नम्रतापूर्वक क्षमा चाहता हूं।'' यह कह कर कुसुमकुमार ने भक्तिपूर्वक अपने पालक माता–पिता के चरण छुए और धीरे–धीरे मकान से बाहर निकल गया।

X X X

जब कुसुमकुमार पांच लाख मुद्राओं की थैली थामे वेश्या के कोठे पर पहुंचा तो वहां पर जैसे मुर्दानगी छायी हुई थी। तत्काल वह अनुमान नहीं लगा सका कि ऐसी क्या घटना घटित हो गई है कि वहां किसी तरह की कोई हलचल ही नहीं है। उसके दिल में एक खटका सा हुआ लेकिन वह सीधा भीतर चला गया और करीब–करीब चिल्ला कर ही बोला–

''लो काकी, यह तुम्हारी अमानत। लाने में कुछ देर जरूर हो गयी है लेकिन मुद्राएं पूरी पांच लाख हैं।''

काकी अपने आसन पर पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी थी सो वैसी ही बैठी रही, कुछ भी नहीं बोली।

''आज तुमको क्या हो गया है काकी, कि तुम कुछ भी बोल नहीं रही हो ? तुम इजाजत दो तो मैं यह थैली यहां पटक कर सीधा ऊपर चला जाऊं।''

काकी की बोली फूटी तो रोनी सूरत के साथ–

''तरुण अब ऊपर जाओ या नीचे– पंछी तो फुर्र हो चुका है।''

''क्या कह रही हो काकी, मैं कुछ समझ नहीं पाया हूं ?''

''यही कि तुम्हारा दिल थामने वाली अब इस कोठे पर नहीं है।''

''क्या मतलब ? क्या तुमने उसे मार डाली है कहीं भगवा दी है ?''

''मैंने तो उसका मूल्य दिया था, मैं उसे भला अपने कोठे से बाहर क्यों जाने देती ? रात मैंने पक्का प्रबन्ध कर लिया था कि वह चाहे तब भी इस कोठे से बाहर न निकल सके। इस कारण मैं निश्चिंत थी लेकिन सुबह देर तक भी जब उसके कक्ष में किंवाड़ नहीं खुले तब नन्दू दासी ने देखा कि किंवाड़ भीतर से नहीं, बाहर से ही बन्द थे। मैं चौंक उठी कि तब वह कहां चली गई ? तब से मैं सोच ही रही हूं और मुझे कोई सूत्र समझ में नहीं आया है कि वह किस मार्ग से कहां गई होगी ?''

इतना सुनते ही कुसुमकुमार धाड़ मार कर रो पड़ा–'ओ मेरी ममतामयी मां, तुम यों अचानक मिली और यों अचानक खो गई। जीवन में मैंने तुम्हारा पहला दर्शन पाया, मैंने सोचा कि तुम्हारा यहां से उद्धार करके तुम्हारी चरण सेवा करूंगा किन्तु वह सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मैं अब कहां जाऊ ? कहां ढूंढूं मेरी मां ?''

कुसुमकुमार के उस करुण क्रन्दन को सुनकर उस दुष्ट औरत का दिल भी पसीज आया, क्योंकि सही तथ्यों की जानकारी उसे इसी क्रन्दन से हुई थी। इस रोशनी में उसे यह भी समझ में आ गया कि रात को उसने इस सती को धमकाने की जो धृष्टता की थी उसके फलस्वरूप ही वह यहां से गायब हो गयी है। तब उसके मन में इस बात का भी विश्वास होने लगा कि मंजुला को इस कोठे से बाहर निकल जाने के लिए कोई मार्ग नहीं था और चूंकि वह अपने शीलधर्म को अखण्डित रखने हेतु कृत संकल्प थी, उसने ऊपर से बहती नदी में कूद कर ही अपनी जान दे दी होगी। इस विचार के साथ तो उसके नीचतापूर्ण हृदय में भी खेद और शर्म की लहर उठी कि उसकी दुष्ट धमकी के कारण ही यह अत्याचार हुआ है। वह एक बार थरथरा कर कांप उठी कि यह एक कुकृत्य ही उसे सीधा नरक में ले जायगा। फिर उसने कुसुमकुमार की ओर रुख करके दुःख भरे दिल के साथ कहा–

''तरुण, मैं वेश्या होकर भी तुम्हारे सामने शर्म से गड़ी जा रही हूं। कल शाम तुम्हारे यहां से चले जाने के बाद मेरे मन में कई पांच लाख कमाने का लोभ पैदा हुआ और मैंने समझा कि जब वह एक पर–पुरुष के साथ रमण कर चुकी है फिर उससे अपना धन्धा ही क्यों न कराऊं ? इस दुष्ट विचार के साथ मैंने उसको कठोर धमकी भी पिलाई थी और तुम भी रात को नहीं आ पाये जिस कारण लगता है कि उसने नदी में कूद कर अपनी जान दे दी है।''

''क्या यह सच हो सकता है काकी ? क्या मेरी मां अब मुझे कभी नहीं मिलेगी ?.....नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरी मां मुझे अपना पूरा प्यारा दिये बिना नहीं मर सकती.....मैं जाऊंगा, धरती के कण–कण में अपनी मां को खोजूंगा और जब तक नहीं मिलेगी, खोजता ही रहूंगा।'' और कुसुमकुमार वहां से पागलों की तरह भाग चला।

❑❑❑

# ३१
# मां की खोज में एक से दो हो गये

क्या मां की ममता धरती से भी ज्यादा गहरी और आकाश से भी ज्यादा फैली हुई होती है कि मैं अपनी मां के एकमात्र दर्शन से ही इतना विगलित हो रहा हूं ? वे कितने सद्भाग्यशाली होते होंगे जो जन्म से लेकर बड़े होने तक अपनी मां की गोदी में खेलते हैं, अपनी मां का दूध पीकर अपने तन–मन की रचना करते हैं और अपनी मां के प्यार की थपकियों में मीठी नींद सोते हैं ? मां के दर्शन करके मुझे आशा बन्धी थी कि अब मेरा आगे का जीवन तो मां की छत्र छाया में ही चलेगा लेकिन प्रकृति को मेरा इतना सा सुख भी न जाने क्यों स्वीकार नहीं हुआ ?

.....फिर मेरी मां तो कितनी धर्मपरायणा है जो अपने धर्म की रक्षा के लिए वर्षों से कठिन कष्ट भुगतती हुई आ रही है। शायद मेरा जन्म ही उनके कठिन कष्टों का अध्याय बन कर रह गया है। और अब भी मेरा मिलना उसके लिए सार्थक नहीं हो सका।

मेरी मां ने मुझे बताया कि मेरे पिता भी एक भव्य पुरुष हैं किन्तु उनके भी दर्शन मुझे कब हो सकेंगे– भविष्य के गर्भ में है। फिर मेरा निवास स्थान श्रीपुर, मेरी दादीजी और मेरी बुआजी सभी मुझे कब देखने को मिलेंगे ?

इस समय तो मेरा मन तड़प रहा है कि मुझे मेरी मां मिल जाय..... .....मैं उसे खोजने के लिए निकला हूं तो खोजकर ही दम लूंगा।

कुसुमकुमार चारों तरफ दृष्टि फैलाए नदी के किनारे–किनारे पागलों की तरई भागता हुआ चला जा रहा था। जहां कहीं नदी में उसे ऐसा कोई चिन्ह दिखाई देता कि वह मानव मस्तक हो सकता है, वह नदी में कूद पड़ता, गहरे गोते लगाता और निराश होकर फिर बाहर निकल जाता। फिर वह किनारे–किनारे चल पड़ता। उसकी दृष्टि तो सिर्फ माता की खोज में लगी हुई थी। उसे न अपने मन की सुधबुध थी और न शरीर की परवाह। मार्ग के कंकड़, पत्थर और कांटे उसके पैरों को छील रहे थे। पास की झाड़ियां उसके तन–बदन को छेद रही थी। वह तो अविराम चला जा रहा था। उसका

सम्पूर्ण ध्यान एक ही उद्देश्य पर केन्द्रित था और वह था मां की खोज।

हकीकत में कुसुमकुमार धरती के कण–कण में अपनी मां को खोज रहा था। ग्राम, नगर जंगल–सभी जगह वह दौड़ा–दौड़ा फिर रहा था कि कहीं तो उसकी मां दिखाई दे। कहीं जरा सी भी आहट पाता तो वह पता लगाने के लिए दौड़ पड़ता किन्तु निराशा ही हाथ लगती। कभी वह सूनी आंखों से आसमान को ताकता रहता और घंटों तक उसके नेत्र फटे के फटे रह जाते। उसको न दिन को चैन था और न रात को आराम। चल रहा है तो रात के गहरे अंधेरे में भी चलता ही रहता है। बियाबान जंगल भी उसकी चाल को नहीं रोक पाते।

मानव जीवन यदि दुर्लभ है तो इस जीवन का केन्द्र भाग यौवन अतीव दुर्लभ होता है क्योंकि यौवन केवल अवस्था का ही नाम नहीं होता बल्कि अमित शक्तिपुंज का प्रतीक होता है। इसी आधार पर माना यह जाता है कि यौवन चलता नहीं है, पंख लगाकर उड़ता है। एक सच्चा यौवन किसी भी बिन्दु पर अपनी हार नहीं मानता, वह अपने प्राप्य को लेकर शांत होता है। कुसुम का यौवन तो दो अध्ववसायी एवं साहसिक आत्माओं का मिलन स्थल था। श्रीकांत और मंजुला के आदर्श जीवनों का सार तत्त्व कुसुम के यौवन में प्रकट हुआ था। फिर भला उसका वह उद्दाम यौवन अपनी ममतामयी मां की खोज के पुण्य कार्य में कैसे विश्राम लेता ?

श्रीकान्त के परिवार के भाग्य में ऐसा लगता था कि विधि की विचित्रताएं भरी पड़ी है। कुसुमकुमार बियाबान जंगल में और वह भी रात के अंधेरे से आंखों में बसी मां की मूरत को देखते–देखते चला जा रहा था अपना भान भूले हुए। अचानक उसका पांव उधर से निकल रहे एक काले सांप की ठोड़ी पर जा गिरा और तभी उस सांप ने उसके पैर को डस लिया। सर्पदंश के आघात से कुसुमकुमार पीड़ित होकर उसी तरह गिर पड़ा था। जैसे कि उसका पिता श्रीकांत भी सर्पदंश के कारण अपने घोड़े पर से गिर पड़ा था। एक तेज चीख के बाद ही कुसम अचेत हो गया, मगर उस जंगल में कौन था जो उसकी चीख को सुनता ? जहर से नीला पड़ता जा रहा उसका शरीर झाड़ियों की ओट में वहां पड़ा रहा।

X X X

सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख मनुष्य के जीवन में आते ही रहते हैं। उधर कुसुमकुमार को सर्प ने काटा और इधर एक धुमक्कड़

सन्यासी आ निकला जो गारूड़ी विद्या सिद्धहस्त जानकार था। वह जमीन पर पड़े उस मानव शरीर को देखते ही पहचान गया कि इस युवक को सर्प ने काटा है। उसने युवक के शरीर की जांच की और नाड़ी भी देखी। बेहोशी के बावजूद उसमें जीवन के सभी लक्षण मौजूद थे। जहरीले सांप का जहर उतार देना उसके बायें हाथ का खेल था। झट वह सन्यासी आसन जमा कर वहीं बैठ गया और जहर उतारने के विधि–विधान में लग गया। वह जैसे–जैसे मंत्रोच्चार करता रहा, वैसे–वैसे कुसुमकुमार के बेहोश शरीर में हलचल बढ़ती गई।

गहरी नींद से जैसे जागकर उठा हो, उस तरह कुसुमकुमार ने आंखें खोली तो देखा कि उसके सामने एक सन्यासी बैठा हुआ है। इस समय भी अपनी याद नहीं आयी कि उसके साथ क्या बीती थी। उसकी आंखों में तो फिर से उभर आयी अपनी मां की ममता भरी मूरत। उसने सोचा कि यह सामने जो सन्यासी बैठे हैं–शायद ये विशिष्ट ज्ञानी हों, तो इन्हें ही क्यों न अपनी मां के बारे में पूछूं ? किन्तु तभी उसके मन ने कहा–बिना जाने हर किसी को अपने दुःख की बात कहते फिरना नीति की बात नहीं है। न जाने ये सन्यासी कौन हैं और क्या विद्याएं जानते हैं–उनका जब मुझे कुछ परिचय हो जायगा तभी उनसे बात करूंगा।

सन्यासी ने जब देखा कि सर्पदंश से पीड़ित तरुण पूरी तरह से सचेत हो गया है तो उसने अपने हाथ का सहारा देकर उसे अपने पास बिठाया और प्रेम से पूछा–

''तरुण, तुम कौन हो और इधर से कहां जा रहे थे ?''

कुसुमकुमार ने उत्तर देने से पहले यह योग्य समझा कि वह जीवन रक्षक के प्रति अपना नम्र आभार प्रकट करे। वह उठा और उस सन्यासी के चरणों में गिर पड़ा और बोला–''योगीराज, आपने मुझे नया जीवन दिया है। आपके इस उपकार को मैं जीवन भर नहीं भूल सकूंगा। आप मुझे क्षमा करें कि मैं आपकी सेवा में रुक नहीं पाऊंगा। मुझे इतना आवश्यक कार्य है कि पल भर भी बरबाद करना मेरे लिए अपराध होगा।'' कहता हुआ कुसुमकुमार सन्यासी को एक बार पुनः प्रणाम करके वहां से चल पड़ा।

सन्यासी भी उस तरुण को देखता ही रह गया कि उसे इस जंगल में ऐसा क्या आवश्यक कार्य हो सकता है कि उसे दो पल ठहरना भी भारी लग रहा है। उसे तरुण के व्यवहार से थोड़ा सा विक्षोभ हुआ किन्तु जब उसने

तरुण के चेहरे को ध्यान से देखा तो उसे वहां अवज्ञा का कोई भाव दिखाई नहीं दिया बल्कि उसके रुख में एक गहरी लगन फूट रही थी। तरुण के चेहरे से कुछ ऐसा आकर्षण झलक रहा था कि सन्यासी भी उसे देखकर अभिभूत सा हो गया। अतः हठात् उसने पुकारा –

''तरुण, दो पल तो रुको भाई, मैं तुमसे कुछ बात करना चाहता हूं।'' नम्रतापूर्वक कुसुमकुमार वापिस लौट आया और कहने लगा–''आज्ञा कीजिये योगीराज ?''

''आज्ञा की कोई बात नहीं तरुण, मैं तुम्हारा परिचय पाना चाहता था। तुम कौन हो और तुम्हारे माता–पिता कौन हैं ?''

''मैं कौन हूं–वह तो आपके सामने सशरीर खड़ा हूं और मेरे पिता आप हैं जिन्होंने मुझे नया जीवन दिया है। मेरी मां यह धरती है जिस पर मैं भ्रमण कर रहा हूं।''

''बेटे, तुम्हारी आयु तो कम है लेकिन लगता है कि तुम्हारे पास बुद्धि बहुत है। शायद तुम अपना परिचय मुझसे छिपा रहे हो।''

''छिपाने लायक मेरा और अधिक परिचय नहीं है गुरु परन्तु आप भी तो अपना परिचय बताकर मुझे कृतार्थ कीजिये।''

''हम सन्यासियों का परिचय होता है बेटा ? मैं घुमक्कड़ सन्यासी हूं और शायद तुम्हारा पुण्य ही मुझे यहां खींच कर ले आया है कि मैं तुम्हारे कुछ काम आ सका। लेकिन इतना तो बतला दो कि तुम इधर से इतनी जल्दी जा कहां रहे हो ?''

''योगीराज, मैं ऐसी स्थिति में नहीं हूं कि मैं आपको कुछ अधिक बतला सकूं। इतना मात्र निवेदन कर दूं कि मैं किसी की खोज में भटक रहा हूं और जब तक मेरी खोज सफल नहीं हो जायगी मैं एक पल के लिए भी चैन नहीं लूंगा।''

''तुम एक जोशीले नौजवान हो और तुम्हारे जोश की तारीफ करता हूं मगर सोचो कि इस तरह होश खोकर भटकते रहोगे और फिर कहीं किसी सर्प ने डस लिया तो !''

''यह तो योग की बात है, जो होना होगा, होता रहेगा।''

''काश, मैं भी तुम्हारी खोज में अपना सहयोग देना चाहूं तो क्या तुम पसंद करोगे ?''

अब कुसुमकुमार के मन में यह अनुभाव जागा कि इस कठिन खोज के कार्य मे एक से दो हो जायं तो उसे अधिक सुविधा ही रहेगी। फिर ये सन्यासी तो उसके अभिभावक की तरह उसका समुचित संरक्षण भी करते रहेंगे। उसके मन में यह विचार भी आया कि कहीं यह सन्यासी मंत्र–तंत्र से उसे अपना चेला बनाने के लोभ में उसे अपने उद्देश्य से भटका न दे इसलिए कुछ विश्वास और कुछ शंका के साथ उसने उत्तर दिया–

''आपका साथ मिले– यह मेरा सौभाग्य होगा, किन्तु गुरुदेव आपका मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग।''

''तुम नहीं जानते तरुण कि मैं भी किसी की खोज में ही घुमक्कड़ी कर रहा हूं, इस कारण खोज के रूप में हम दोनों का मार्ग एक ही है।'

तब कुसुमकुमार ने सन्यासी के सामने हाथ जोड़ लिये और सन्यासी ने भी उसके सिर पर अपना हाथ रख कर भरपूर आशीर्वाद दिया।

X X X

सन्यासी और कुसुमकुमार उस जंगल में साथ–साथ चलने लगे। जंगल भी बहुत लम्बा और विकट था। वे धीरे धीरे अपनी यात्रा पूरी कर रहे थे। कुछ दिन तक जब लगातार दोनों साथ–साथ चलते रहे तो दोनों के बीच में विश्वास की मात्रा बढ़ने लगी। सन्यासी उसे अनुभवहीन युवक समझकर अनुभवों की तरह–तरह की बातें बताता तो कुसुमकुमार भी अपने मन की कल्पनाएं उसे समझाता। सन्यासी बहुत ही दयावान था और उसके करुणापूर्वक व्यवहार का कुसुम के कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था।

एक दिन शाम ढल रही थी और वे दोनों आगे बढ़ रहे थे। वहां उन्हें सामने एक छत्री दिखाई दी तो सन्यासी ने रात वहीं बिताने का विचार करते हुए कुसुमकुमार ने कहा–

''यह स्थान ठीक दिखाई दे रहा है, आज का रात्रि विश्राम यहीं कर लें।''

फिर दोनों निवृत होकर छत्री में बैठ गये और धर्म चर्चा करने लगे।

ज्ञानी और अज्ञानी में यही अंतर होता है कि ज्ञानी अपने ज्ञान में आयी हुई बातों की दूसरों के सामने चर्चा करता है और उन्हें सत्प्रेरणा देता है वहां अज्ञानी सुधार की बातों को भूलकर संसार की निरर्थक बातें करता है एवं राग द्वेष तथा मनोमालिन्य को बढ़ाता है। यहां दोनों में एक सन्यासी था जो

सुसंस्कारित व्यक्तित्व वाला था तो दूसरा कुसुमकुमार भी अपने जनक माता–पिता के सुलक्षणों का एवं पालक माता–पिता के सुसंस्कारों का धारक था। समान प्रकृति वालों का तालमेल जल्दी बैठ जाता है इस कारण अब दोनों एक दूसरे के विश्वासपात्र बन गये थे।

परन्तु सन्यासी के मन में एक गांठ थी और उस गांठ को खोलने के लिए उसका मन बहुत अधीर हो रहा था। उस समय जब वे छतरी में बैठे तो अच्छा प्रसंग देखकर सन्यासी ने अपने हृदय का तरल स्नेह उंडेलते हुए कुसुमकुमार से पूछा –

''अरे कुसुम, तुम्हारा हृदय तो मक्खन के समान कोमल है फिर भी तुम मेरे साथ खुलकर बात नहीं कर रहे हो–इसका क्या कारण है ? मैंने तुमसे तुम्हारा परिचय पूछा था उसे तुमने यह कहकर टाल दिया कि धरती माता है और मैं तुम्हारा पिता हूं। मैं तुम्हें पूछना चाहता हूं कि तुम्हारा यह शरीर किस मानवी माता के गर्भ से जन्मा है ?''

सन्यासी का इतने अर्से बाद फिर वही प्रश्न सुनकर कुसुमकुमार तब विचार में पड़ गया। पहले तो उसे सन्यासी पर विश्वास नहीं था किन्तु अब वह उसके सद्‌गुणों से पूर्णतया परिचित हो गया था। दोनों के सम्बन्ध उस समय घनिष्ठ हो गये थे अतः कुसुम ने निश्चय किया कि वह भी उसे अपनी बात बतावे और उससे भी अपनी बात पूछे। तब उसने वेश्या के कोठे पर अपनी मां के मिलन से लेकर उसका उद्धार न कर पाने के कारण मां के नदी में कूद जाने तक की सारी बात सन्यासी को बता दी। उसने यह भी बता दिया कि माता के प्रथम दर्शन से ही उसका हृदय इतना प्रभावित हो गया कि वह विह्वल होकर उसी की खोज में भटक रहा है। उसने कहा कि चूंकि वह जन्म से ही अपने पालक बनजारा माता–पिता के यहां बड़ा हुआ है इसलिए जन्म देने वाले माता–पिता के प्यार से वंचित रहा है।

सन्यासी उसकी एवं उसकी माता के कष्टों की करुण कथा सुनकर भाव विभोर हो उठा और उसकी आंखें भर आई। सन्यासी को मन ही मन बहुत कुछ अनुमान भी लगा लेकिन प्रकट रूप में उसने कहा–

''धन्य है तुम्हारी माता जिसने इतने कष्ट उठाये। तुम ऐसी माता के पुत्र हो यह गर्व की बात है। क्या तुम्हारी माता ने तुम्हें यह वृत्तान्त भी सुनाया था कि तुम्हारी माता तुम्हारे पिता को मिली थी और दोनों जब एक घोड़े पर बैठकर जंगल में जा रहे थे तो तुम्हारे पिता के पैर को एक सर्प ने डस लिया था ?''

''यह वृत्तान्त मेरी माता ने मुझे बताया था आप तो योगी और ज्ञानी हैं अतः आगे का वृत्तान्त आपको ज्ञात हो तो आप बता दीजिये।''

''हां हम तो घुमक्कड़ सन्यासी हैं सो ऐसा सुना था कि जब तुम्हारे पिता बेहोश पड़े थे तब उधर से सन्यासियों का एक टोला आया था और उसके मुखिया ने तुम्हारे पिता का विष उसी तरह उतार दिया था जिस तरह मैंने तुम्हारा विष उतारा है। वह मुखिया गारूड़ी मंत्र का ज्ञाता था। फिर तुम्हारे पिता भी सन्यासियों की उसी टोले में शामिल हो गये थे। उन्होंने अपनी सेवा से सभी सन्यासियों का मन जीत लिया इस कारण उन्हें भी गारूड़ी मंत्र एवं दूसरी विद्याएं सिखा दी। यद्यपि तुम्हारे पिता सन्यासियों के वेश में रहने लगे फिर भी वे तुम्हारी मां को खोजने के एक ही लक्ष्य के पीछे घूम रहे थे। इस बीच टोले के मुखिया का देहांत हो गया और सब सन्यासी बिखर गये। तब तुम्हारे पिता भी कंचनपुर के जंगल में आ निकले।''

तब कुसुमकुमार चौकन्ना हो गया और बड़े गौर से सन्यासी का चेहरा देखने लगा। देखते–देखते उसके हृदय में भावनाओं का ऐसा तूफान उठा और पितृ प्रेम की ऐसी वर्षा हुई कि वह भावुक होकर सन्यासी के चरणों में यह कहता हुआ गिर पड़ा–''मेरे पूज्य पिता आप ही हैं और इसी कारण मेरी अन्तर्चेतना ने सबसे पहले आपको सही सम्बोधन ही करवाया था।''

सन्यासी ने कुसुमकुमार को नीचे से उठाकर अपनी बाहुओं में भरा और छाती से चिपका लिया। दोनों बहुत देर तक एक दूसरे को अपने अपार हर्ष और प्रेम के आंसुओं से भिगोते रहे। श्रीकांत अतिशय प्रसन्न था कि उसे अब तक अनदेखा अपना लाड़का लाल मिल गया था।

❑❑❑

# ३२
# काशीनगर में कुसुमकुमार का भाग्योदय

''मेरे बेटे कुसुम, मेरे मन का पक्का विश्वास है कि अब तुम्हारी मां भी अवश्य ही मिल जायेगी। फिर हम तीनों अपने नगर श्रीपुर की ओर चलेंगे जहां तुम्हें तुम्हारी दादीजी और बुआजी से मिलवायेंगे।''

''हां पिताजी, जब हम सारे परिवार वाले एक साथ होंगे तो कितना आनन्द रहेगा ?''

श्रीकान्त और कुसुमकुमार अपनी खोज के मार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे थे। दोनों के मन के उल्लास था कि जब पिता और पुत्र का सुखद मिलन हो गया है तो मंजुला भी मिलकर ही रहेगी। किन्तु श्रीकान्त बहुत अधिक सतर्क था तथा कुसुमकुमार को कहीं भी अपनी दृष्टि से बाहर नहीं होने देता था क्योंकि दूध का जला छाछ को भी फूंक–फूंक कर पीता है। कितने कष्टपूर्ण प्रयासों के बाद मंजुला मिली थी और वह उसे फिर से हाथ से खो बैठा। कुसुमकुमार के ह्रदय में भी पश्चात्ताप था कि वह समय पर अपनी मां को मुक्त नहीं कर सका, इसी कारण मां को नदी में कूद पड़ने जैसा घातक निर्णय लेना पड़ा और इसी कारण वह अब न जाने कहां कैसे–कैसे कष्टों का सामना कर रही होगी ?

चलते–चलते दोनों एक ऐसे स्थल पर पहुंचे जहां से दो मार्ग जाते थे। एक श्रीपुर नगर को तो दूसरा काशीनगर को। उस समय शाम हो चली थी और तिराहे पर एक छोटी सी धर्मशाला भी बनी हुई थी। उस ओर संकेत करते हुए श्रीकान्त ने अपने बेटे को कहा–

''कुसुम, अब रात भर विश्राम यहीं कर लें तो ठीक रहेगा। कल सुबह निवृत्त होकर श्रीपुर की ओर प्रस्थान कर देंगे। अब तक चूंकि तुम्हारी माता की खोज में हम लोग सफल नहीं हो सके हैं और तुम इस तरह घूमते–घूमते परेशान हो गये होंगे, मैं तुम्हें श्रीपुर छोड़कर फिर पुनः खोज में निकल पड़ूंगा।''

''आज रात यहां ठहर जाते हैं पिताजी, किन्तु मां की खोज के लिए मैं आपको अकेले नहीं भटकने दूंगा। यह कैसे हो सकता है कि मैं श्रीपुर में मौज से रहूं और आप जंगलों में कष्ट पाते रहें। एक बार श्रीपुर पहुंच कर वहां सिल लेंगे और फिर दोनों ही साथ–साथ पड़ेंगे।''

''अच्छा, जैसा ठीक लगेगा वैसा कर लेंगे''–कहता हुआ श्रीकान्त अपने बेटे का हाथ पकड़ कर धर्मशाला में घुस गया।

जब वे धर्मशाला के दालान में विश्राम कर रहे थे वहां कई नगरों के अन्य कई यात्री भी विश्राम कर रहे थे। उन्हीं यात्रियों में से दो यात्री जो वार्तालाप कर रहे थे उसकी ओर श्रीकान्त का अनायास ही ध्यान खिंच गया।

पहला यात्री कह रहा था–''क्यों बन्धु, क्या तुम कभी काशी नगर गये हो ?''

दूसरे यात्री ने कहा–''हां मुझे अपने काम से काशी नगर बराबर जाते रहना पड़ता है और मैं तो जानता हूं कि काशी नरेश बहुत ही सज्जन और दयालु राजा हैं तथा वहां की प्रजा भी उनके राजकाज से बहुत प्रसन्न है।''

''हां, मैं तो काशी नगर का ही निवासी हूं और मैंने जब से वहां का एक समाचार सुना है मेरा मन बड़ा उदास हो गया है।''

''ऐसा क्या बुरा समाचार है मेरे भाई ?''

''शायद तुम नहीं जानते होंगे कि काशी नरेश के कोई राजकुमार नहीं है। उनके एक मात्र राजकुमारी है, जिसे किसी विषैले सर्प ने डस लिया है राजा सभी तरह के उपचार करा रहे हैं, किन्तु अभी तक उसकी बेहोशी नहीं टूटी है। कल ही मेरा एक सम्बन्धी मुझे मिला था जो मुझे कह रहा था कि काशी नरेश अपनी राजकुमारी के कष्ट से इतने शोक ग्रस्त हैं कि अगर राजकुमारी को कहीं कुछ हो गया तो समझ में नहीं आता कि काशी नरेश का क्या होगा ? वह कह रहा था कि काशी के सभी नागरिकों के दिल में भारी व्यथा है कि ऐसे जन हितैषी शासक को वृद्धावस्था में अपनी परम दुलारी पुत्री का वियोग न देखना पड़े, क्योंकि यह पुत्री ही उनका एकमात्र सहारा है।''

''वास्तव में बहुत बुरा समाचार है भाई, काशी नरेश के प्रति तो मेरी भी बहुत श्रद्धा है। क्या कहीं पर गारूड़ी विद्या का सिद्धहस्त जानकार नहीं मिल सकेगा ?''

इतना वार्तालाप सुनकर श्रीकान्त शांत नहीं रह सका। उसके अन्तःकरण में तो वैसे भी मानवीय दृष्टिकोण सर्वोपरि रहता था, फिर ऐसे जन हितैषी शासन की सेवा करना तो उसने अपना पहला कर्त्तव्य माना। वह उठकर उस काशी निवासी नागरिक के पास जा पहुंचा और पूछने लगा–

''तुम अभी काशी की राजकुमारी के सर्पदंश की जो बात कह रहे थे, क्या वह सच है ?''

''हां भाई साहब, एकदम सच है। इस विपदा से काशी नरेश अतीव खेद ग्रस्त हैं तो उनके खेद से उनकी सारी प्रजा भी संतापग्रस्त है। इस समय तो सर्प का विष उतारने वाला कोई सिद्धहस्त काशी नरेश की सहायता को पहुंच जाय तो वह बहुत ही पुण्य उपार्जित करेगा।'

''भाई, तुम यहां से कहां जाओगे ?''

''मैं यहां से सीधा काशी ही चलूंगा। यह बुरा समाचार सुनकर मेरा मन नहीं मानता कि मैं काशी से बाहर रहूं। मैं भी समस्त काशी वासियों के साथ प्रार्थना करूंगा कि राजकुमारी इस मरणासन्न कष्ट से छुटकारा पाकर शीघ्र स्वस्थ हो जाय।''

''अच्छा भाई, अभी तो विश्राम करो। प्रातःकाल मैं भी तुम्हारे साथ काशी ही चलूंगा और जैसा हो सकेगा, राजकुमारी को स्वस्थ करने का प्रयत्न करूंगा।'

इतना सुनते ही वे दोनों यात्री हर्ष और आश्चर्य के भाव से उछल पड़े और पूछने लगे–

''तो क्या आप गारूड़ी विद्या के ज्ञाता है ?''

'' हां कुछ–कुछ सीखी है और उसके बल से यदि राजकुमारी स्वस्थ हो सकी तो मैं उसे अपना भाग्य ही मानूंगा।''

''भाई साहब आपके प्रयत्न से अगर यह पुण्यकार्य सफल हो गया तो काशी नरेश सहित सारे काशीवासी आपकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करेंगे और मैं तो अभी आपके सामने श्रद्धावनत हूं।''

फिर सभी यात्री निद्राधीन होने लगे।

किन्तु श्रीकान्त को नींद नहीं आयी और हकीकत में उसे उतने वर्षों से नींद आ ही कहां रही थी ? उसकी भावनाओं में वैसे ही व्यथा पूरी तरह

घुली मिली थी फिर भी उसमें एक व्यथा और समा गई। उसने निश्चय किया था कि वह पहले अपने बेटे को उसका अनदेखा घर दिखायेगा और उसे श्रीपुर ही छोड़ देगा ताकि वह अपनी दादी का प्यार पा सके। उसे अपनी मंजुला को तो खोज निकाल लेना है ही–चाहे उसे अब भी कितना ही भटकना पड़े और कितनी ही कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़े। किन्तु अब उसे सबसे पहले काशी नरेश की सहायता करनी होगी। उसका हृदय करुणा से ओतप्रोत हो गया। सम्यक दृष्टि वाली आत्मा में शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था की सरल भावनाएं लहरें लेती है। उस समय श्रीकान्त के हृदय में वैसी ही अनुकम्पा की भावना प्रबल हो उठी और मन ही मन उसने काशी नगर की ओर चलने का पक्का निश्चय कर लिया।

जब प्रातः प्रस्थान करने के बाद पिता पुत्र उस यात्री के साथ मार्ग पर चलने लगे तो कुसुमकुमार ने टोका–''पिताजी, शायद आप भूल रहे हैं, आप काशीनगर के मार्ग पर चल पड़े हैं, जबकि हमें श्रीपुर के मार्ग पर चलना है।''

''मैं भूला नहीं हूं बेटा, मैंने निश्चय बदल दिया है। रात को तुम्हारे सो जाने के बाद मुझे पता चला था कि काशी नरेश की राजकुमारी को सांप ने डस लिया है और इसलिए गारूड़ी विद्या के ज्ञाता के नाते मैंने निश्चय किया कि पहले मुझे काशी जाना चाहिये।''

''पिताजी, आप मनुष्य नहीं देवता है। मुझे अतीव गर्व है कि मैं आपका पुत्र हूं। अपना दर्द भूल कर दूसरे के दर्द को मिटाने के लिए दौड़ना–यही तो देवत्व है।''

''ऐसा कुछ नहीं बेटा, आदमी को हमेशा अपना फर्ज जरूर याद रखना चाहिये।''

''आप मुझे आशीर्वाद दें कि मैं भी अपने जीवन में हमेशा फर्ज को बराबर निभा सकूं।''

''बेटे, तुम्हें मेरा सम्पूर्ण आशीर्वाद है कि तुम मेरे से भी बढ़कर बनो। मैंने काशी पहुंचने में अपने फर्ज की बात इसलिए भी बतायी कि मुझे जब मेरे योगी गुरु ने गारूड़ी विद्या सिखाना शुरू किया तो मुझे निर्देश दिया था कि जब भी किसी के सर्प दंश की बात सुनो तो तुरन्त अपने सब काम छोड़कर पहले उसका विष उतारने के लिए भाग कर जाना। उन्होंने यह भी सीख दी थी कि इस शुभ काम में जाति, धर्म, क्षेत्र किसी का भी भेद मत

करना और समान भाव से धनी, निर्धन, या छोटे–बड़े सभी के इस दुःख को दूर करना। उन्होंने कहा था कि जब तुम इस भावना से जहर उतारने का काम करोगे तभी मैं तुम्हें कर्त्तव्यपरायण शिष्य समझूंगा। कुसुम, जब उन्होंने मेरा जहर उतारकर मुझे जीवन दान दिया था। तभी मैंने उन्हें महान् समझा था लेकिन जब उन्होंने ऐसी परोपकारी सीख दी तो मेरे मन में उनके प्रति अपार श्रद्धा भर उठी। जब मैंने तुम्हारा विष उतारा था तब मैंने तत्काल थोड़े ही पहचान लिया था कि तुम मेरे पुत्र हो और अब काशीनगर जा रहा हूं तो गुरु की सीख को ही हृदय में रखकर जा रहा हूं। तुम्हें श्रीपुर ले जाने में देर जरूर होगी मगर इस शुभ काम को करना भी आवश्यक ही है।''

''श्रीपुर तो चलेंगे ही पिताजी, लेकिन इस शुभ काम को करते हुए चलेंगे तो वास्तव में प्रसन्नता ही रहेगी और कौन जाने इस शुभ काम के शुभ फल से कहीं माताजी की ही खोज सफल हो जाय ?'' उस समय कुसुम का चेहरा आशा से चमक उठा।

काशीनगर में प्रवेश करके श्रीकान्त और कुसुमकुमार उस काशीवासी यात्री के साथ–साथ राजमहल की ओर बढ़ चले। पूरे मार्ग में श्रीकान्त देखता जा रहा था नागरिकों के उदास चेहरे और उसका हृदय करुणा से भरता जा रहा था। राजद्वार पर पहुंचे तो उस यात्री ने द्वारपाल से बात की, द्वारपाल भीतर जाकर तुरन्त लौट आया तथा आदरपूर्वक श्रीकान्त आदि को उस कक्ष में ले गया जहां सर्पदंश से पीड़ित राजकुमारी को लिटा रखी थी। काशी नरेश और महारानी के चेहरे उतरे हुए थे। उन्होंने श्रीकान्त का भावपूर्ण स्वागत किया किन्तु वे बोल इतना ही सके–''आइये, आप हमारी लाड़ली राजकुमारी को स्वस्थ बना देंगे तो हम आपका यह उपकार कभी नहीं भूलेंगे।''

श्रीकान्त ने भी इतना ही कहा–

''महाराज और महारानीजी, आप शांति रखें। आपकी पुण्यवानी से आपकी राजकुमारी अवश्य स्वास्थ्य लाभ करेगी।''

श्रीकान्त फिर तुरन्त मंत्रोपचार करने के लिए यथाविधि बैठ गया। वह मंत्र पढ़ता जाता था और सर्पदंश के स्थान को झाड़ता जाता था। धीरे–धीरे राजकन्या के शरीर में हरकत होने लगी जिसे देखते ही वहां उपस्थित सभी लोगों के मन में खुशी की लहर दौड़ गई। उनकी आशा भी बलवती बन उठी कि इस लक्षण को देखते हुए राजकुमारी जरूर तंदुरुस्त हो जायेगी। हुआ

भी यही कि राजकुमारी की चेतना लौट आयी और धीरे–धीरे आंखें खोलकर उसने अपने पिता की ओर देखा तथा आश्चर्य के साथ पूछा–

''पिताजी मुझे क्या हो गया था ? आप सब लोग चिंतित क्यों दिखाई पड़ रहे हैं ?''

''हम तो सब बहुत प्रसन्न हो गये बेटी, लेकिन तुम्हारा जी अब तो अच्छा है न ?''

''मेरी तबियत अब बिल्कुल ठीक है लेकिन आपने बताया नहीं कि मुझे हो क्या गया था ?''

''तुम्हें एक सांप ने डस लिया था और उसका जहर इन महाशय ने उतार कर तुम्हें नया जीवन दिया है''–यह कहते हुए काशी नरेश ने श्रीकान्त की ओर संकेत किया, फिर श्रीकान्त को सम्बोधित करके वे बोले–

''महाशय, मैं आपके प्रति बहुत ही आभारी हूं कि आपने मेरी पुत्री को ही नहीं, हम सभी लोगों को भी जीवनदान दिया है। आपको इसकी जानकारी है या नहीं मैं नहीं कह सकता, किन्तु मैंने यह घोषणा करवा रखी थी कि जो भी मेरी पुत्री को स्वस्थ बना देगा उसके साथ राजकुमारी का विवाह भी करूंगा तथा मेरा राज्य भी उत्तराधिकार में दूंगा। उस घोषणा के अनुसार आप इन दोनों प्रकार के लाभ के अधिकारी है। लेकिन हां ये आपके साथ युवक कौन है ?''

श्रीकान्त ने शांत एवं सम्मानपूर्ण भाषा में काशी नरेश को उत्तर दिया–

''यह तो मेरा सुपुत्र कुसुमकुमार है। आपकी घोषणा के सम्बन्ध में मेरा नम्र निवेदन है कि मैं अपनी गारुड़ी विद्या का प्रयोग केवल मानवीय दृष्टि से ही करता हूं, किसी लाभ की आकांक्षा से नहीं। वैसे मुझे घोषणा की भी जानकारी नहीं थी। मैं तो अपने नगर श्रीपुर जा रहा था तो वहां तिराहे पर जब यह समाचार मुझे मिला तो मैं कर्त्तव्य से प्रेरित होकर करुणावश काशी नगर की ओर चल पड़ा।''

''आपने अपना नाम नहीं बताया और परिचय भी ?''

''महाराज मेरा नाम श्रीकान्त है और मैं घुमक्कड़ी कर रहा हूं। यों समझिये कि घुमक्कड़ी मैं किसी की खोज में कर रहा हूं।'

''मेरा एक सुझाव है श्रीकान्तजी कि मेरी घोषणा के अनुसार मेरी पुत्री का विवाह आपके सुपुत्र से कर दिया जाय और फिर वही मेरे राज्य का भी

उत्तराधिकारी बने। आप जानते हैं कि राजकीय घोषणा कभी व्यर्थ नहीं होती। आपका त्याग प्रशंसनीय है और फिर मेरी पुत्री और आपके सुपुत्र की जोड़ी भी अतीव श्रेष्ठ रहेगी।''

''अब मैं क्या निवेदन करूं महाराज ? आप जब मेरे पुत्र के मस्तक पर अपने वरद हस्त का आशीर्वाद दे रहे हैं तो अपने भाग्य को ही सराहूंगा। लेकिन इन दोनों युवा युवती को तो परस्पर पसन्दगी का हमें अवसर देना चाहिये।''

तब काशी नरेश ने प्रसन्न होते हुए अपनी दुलारी राजकुमारी की ओर देखा और पूछा–

''बेटी तुम अपने सामने कुसुमकुमार को देख रही हो। कैसा लग रहा है यह युवक तुम्हें अपना जीवन–साथी बनाने के लिए ? वैसे मैंने तुम्हें बता ही दिया है कि इस युवक के पिता ने ही तुम्हें नया जीवन दिया है ?''

राजकुमारी ने कुछ तिरछी निगाह से कुसुमकुमार को देखा– इतना भव्य व्यक्तित्व, इतना उद्दाम यौवन और ऐसी अनुपम संस्कारित की छवि–वह तो विमुग्ध सी हो गयी और कुसुमकुमार की मनःस्थिति भी आकर्षण के भंवर में घूमती सी नजर आयी। चारों नेत्रों ने एक दूसरी जोड़ी की भाषा पढ़ ली और एक दूसरे को अपना उत्तर भी दे दिया। राजकुमारी अपने पिता को उनके प्रश्न का क्या उत्तर देती ? उसका मुख आरक्त हो उठा और वह इतना ही बोली–''आपकी आज्ञा मैंने सदा शिरोधार्य की है और इसे भी करूंगी। जिस महान् पुरुष ने मुझे नया जीवन दिया है तो मैं उस जीवन को उसी के चरणों में समर्पित क्यों न कर दूं ?''

काशी नरेश ने अपनी राजकुमारी का आशय समझ लिया और वहीं घोषणा कर दी–

''मेरे परिवार जन, सभासद एवं मंत्रीगण, मैं राजकीय घोषणा को कार्यरूप देने के विचार से आप लोगों के समक्ष यह आज्ञा प्रसारित करता हूं कि शीघ्रातिशीघ्र शुभ मुहूर्त में मेरी राजकन्या सुगन्धा एवं श्रीकान्तजी के सुपुत्र कुसुमकुमार का पाणिग्रहण सम्पन्न कर दिया जाय और कुसुमकुमार को युवराज के पद से प्रतिष्ठित किया जाकर काशी का उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाय।''

कुसुमकुमार और कुमारी सुगन्धा के शुभ विवाह का महोत्सव इतनी धूमधाम से सम्पन्न हुआ–सब ओर इतना अधिक हर्षोल्लास देखने में आया कि उसे सारी जनता अभूतपूर्व कहने लगी। विवाह के ठीक बाद काशी नरेश ने उत्तराधिकारी समारोह भी आयोजित करवाया।

राज्य के विशाल सभागार में सभी आसन व्यवस्थित रूप से लगे हुए थे जिन पर अपने–अपने पद के अनुसार अतिथि बैठ चुके थे। काशी नरेश के सिंहासन के एक ओर राजकीय नवदम्पति बैठे हुए थे तो दूसरी ओर उनके अपने सिंहासन के समान ही एक और सिंहासन रखा हुआ था जो अभी खाली था। यह सिंहासन श्रीकान्त के लिए था।

सामने के मुख्य द्वार से जब मंत्रीगण श्रीकान्त को सम्मानपूर्वक सभागार में लाए तो काशीनरेश ने भी उसका समुचित स्वागत किया और अपने पास रखे सिंहासन पर आसन ग्रहण करने का निवेदन किया तब श्रीकान्त ने विनयपूर्वक कहा–

''नहीं राजन् यह सिंहासन मेरे लिए उपयुक्त नहीं है। मैं ठहरा अकिंचन और मैं ऐसे सिंहासन पर बैठूं– यह शोभा नहीं देगा।''

''आप स्वयं अपने को भले अकिंचन कह लें किन्तु मैं तो आपको अपने से भी अधिक धनी मानता हूं। आपके पास त्याग, परोपकार एवं मानवीय बुद्धि का जो अमूल्य खजाना है उसके सामने मेरे सारे राजकोष का भी क्या महत्त्व है ? वैसे तो आपका स्थान मेरे खुद के सिंहासन पर होना चाहिये था लेकिन चूंकि अभी मैं अपना सिंहासन त्याग नहीं पा रहा हूं इसलिए मैं आपको अपने पास के सिंहासन पर ही आसन ग्रहण करने का निवेदन कर रहा हूं। आइये, और बैठिये।' फिर काशी नरेश ने श्रीकान्त का हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बिठा लिया। तब उन्होंने खड़े होकर समारोह में सभासदों को सम्बोधित करते हुए कहा–

''श्रीमन्तो ! श्रीकान्तजी के कारण ही आज राजकुमारी सुगन्धा जीवित है। इन्होंने ही निस्वार्थ भाव से मेरी पुत्री का उपचार किया। घोषणा के अनुसार इन्होंने राजकन्या और सिंहासन का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। अतः मैंने इनके सुपुत्र कुसुमकुमार के साथ राजकन्या का विवाह करने का निश्चय किया, जो सम्पन्न हो चुका है और अब घोषणा के अनुसार कुसुमकुमार को इस राज्य का भावी शासक मनोनीत करना है। मैं इस बारे आपकी सम्मति चाहता हूं।''

सभी सभासदों ने एक स्वर से महाराज को अपनी सम्मति दी। तब महाराजा ने नवदम्पति को अपना आशीर्वाद दिया एवं उनके दीर्घजीवन की कामना की। तब वे कुसुमकुमार की तरफ मुड़े और बोले–'' मैं अब तुमसे अपने दूसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में तुम्हारी स्वीकृति चाहता हूं कि तुम भावी शासक बनो और काशी राज्य की जनता की दीर्घकाल तक सेवा करो।''

कुसुमकुमार अपने आसन से खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगा–

''राजन् जब कभी मेरे जन्म और जीवन की कहानी आपको सुनाऊंगा तो पता चलेगा कि मैंने इस दुनिया में ठंडी और गर्म हवाओं के तरह–तरह से झौंके खाये हैं इस कारण मेरी भोगोपभोग की वस्तुओं में कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं तो एक कर्त्तव्यपूर्ण जीवन का भलीभांति निर्वाह करना चाहता हूं इसलिए जब आप मुझ पर काशी की जनता की सेवा करने का भार डालना चाहते हैं तो इसे मैं आपके निर्देश एवं पूज्य पिताजी की आज्ञा से ग्रहण कर सकूंगा। आप दोनों मुझे आशीर्वाद दें कि मैं यह उत्तरदायित्व पूरी कुशलता, योग्यता और निष्ठा से निभाऊं।''

, कुसुमकुमार ने यह कहकर काशी नरेश और श्रीकांत के पैर छुए। साथ ही सुगंधा भी अपने पूजनीय के चरणों में झुकी। दोनों ने दोनों को हृदय से आशीर्वाद दिया। तब काशी नरेश ने अपने वक्तव्य का उपसंहार कर दिया–

''श्रीकान्त ! आपकी सम्मति एवं श्रीकान्तजी की अनुमति से मैं कुसुमकुमार को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करता हूं और जब तक इनका राजतिलक नहीं हो जाता तब तक ये ''युवराज'' के पद से सम्बोधित किये जायेंगे। मेरी विनती है कि श्रीकान्तजी राज्य के माननीय मेहमान के रूप में यही विराजेंगे और राज्य संचालन में मार्ग दर्शन करेंगे।''

ज्योंही काशी नरेश नीचे बैठे, जनसमूह ने जय–जयकार किया–काशी नरेश की जय, श्रीकान्तजी की जय, राजकुमार कुसुमकुमार और राजकुमारी सुगन्धा की जय.....।

❑❑❑

# ३३
# मंजुला के मन का मोद पूर्ण

मंजुला के मन का मोद उसी दिन पूर्ण हो गया जिस दिन उसने समग्र काशीवासियों के साथ अपने बेटे कुसुमकुमार का राजकुमारी सुगंधा के साथ बहुत ही धूमधाम से हुए विवाह समारोह को तथा उसके बाद ही युवराज पद समारोह को अपनी निज की आंखों से सम्पन्न होते देखा और देखा अपने पति श्रीकांत का काशी नरेश के समकक्ष होता हुआ राजकीय सम्मान। यद्यपि अपने पति और पुत्र से अभी तक उसका प्रत्यक्ष मिलन नहीं हो पाया था, फिर भी उसका हृदय, उनके उस गौरव की उपलब्धि से तृप्त हो गया था।

मंजुला ने जब कंचनपुर में वेश्या के कोठे की तीसरी मंजिल से नीचे बहती हुई नदी की जलधारा में छलांग लगायी थी, तब उसका मन मस्तिष्क शीलधर्म को सुरक्षित कर लेने के कारण आन्तरिक उत्साह से परिपूर्ण था। किन्तु उसका सुकोमल शरीर उस आघात को सह नहीं सका। पानी में गिर जाने के बाद कुछ देर तक तो वह संचेतन रही और उसने किनारे की ओर बढ़ने की चेष्टा की किन्तु धीरे–धीरे वह अचेतन होती हुई नदी की धारा में वेग के अनुसार बहने लगी।

वही नदी काशी नगर के पास में होकर बहती थी। काशी नगर के घाट पर अहीर जाति के कई स्त्री–पुरुष जब स्नान आदि में लगे हुए थे तो दूर से एक मानव शरीर बहुता हुआ उनकी दृष्टि में आया। उसे देखते ही दो–तीन तैराक आगे बढ़े और वे उस शरीर को किनारे पर ले आये। उन्होंने देखा कि वह शरीर किसी एक स्त्री का है और वह अभी तक जीवित है। उन्होंने पेट से पानी आदि निकालने की क्रिया की तथा दूसरे उपचार भी किये जिनकी सहायता से उसकी चेतना लौट लाई। उस स्त्री के प्रति वहां उपस्थित अहीर जाति की स्त्रियों का बहुत ही आकर्षण हुआ अतः उन्होंने उस स्त्री से पूछताछ शुरू कर दी। एक अहीरन जिसकी इच्छा उसे अपने साथ रखने की प्रबल थी, उसे दुलारते हुए बोली–

'बहिन, तुम चिन्ता न करो, तुम्हारी जान बच गयी है। हमने अभी तक तुमको सिर्फ देखा भर है फिर भी हम काशी नगर की अहीरन बहुत ही प्रभावित हुई है। क्या तुम अपना परिचय दोगी कि तुम कौन हो और इस नदी में गिरकर क्यों कर बह गई थी ?''

मंजुला ने तब स्थस्थचित्त होकर अपने चारों ओर देखा। उसे याद आया कि वह कंचनपुर से नदी में कूदी थी और वह यहां काशी में बचा ली गई। उसके विचार में अपना परिचय देने की समस्या उठ खड़ी हुई। उसने सोचा कि इन लोगों को अपना सही परिचय देने का कोई प्रयोजन नहीं है इसलिए उसने कहा–

''मैं आप सब बहनों की आभारी हूं कि आपकी वजह से मुझे नया जीवन मिला है। मैं भी आपकी तरह एक श्रम करने वाली महिला हूं और असावधानी के कारण नदी में बह गई थी।''

''तो बहिन अपने गांव–घर का पता बताओ ताकि हम तुमको वहां पर पहुंचवा देवें।

''मेरा गांव घर इतनी दूर है और वहां भी मेरे कोई निकट आत्मीय नहीं हैं अतः यदि आप बहनों में से कोई मुझे अपने साथ रख सके तो मुझे वापिस लौटने से कोई दिलचस्पी नहीं है। जो भी बहन मुझे अपने यहां प्रेम सहित रखेगी उसके अन्न–जल का ऋण मैं अपने श्रम और स्नेह से बाकी नहीं रखूंगी।''

वह अहीरन मन ही मन एकदम प्रसन्न हो गई। उसने इच्छा की और वह इच्छा अनायास ही सफल हो गयी थी इसलिए बहुत ही उत्साह से उसने मंजुला को अपने हृदय से लगा लिया और गद्‌गद् होते हुए बोली–

''बहन, तुमने बिना मांगे ही मेरे मन की साध पूरी कर दी। मैं अपने घर में अकेली हूं इसलिए नदी के जल में तुम्हें निकाल कर लाते ही मैंने इच्छा की थी कि तुम्हें अपने साथ रखूं। आओ, अब घर चलो, हम दोनों बहनों की तरह सहज स्नेह के साथ रहेंगी। और हां तुम्हारा नाम तो मैंने पूछा ही नहीं बहिन ?''

''मुझे मंजुला कहते हैं बहिन''

''बहुत ही सुन्दर नाम है और वैसा ही तुम्हारा सुन्दर जीवन भी दिखाई देता है।''

मंजुला को लेकर वहां से सभी अहिरनें अपने मोहल्ले की ओर चल पड़ीं।

X X X

मंजुला को सरल एवं सादी वृत्ति के कारण वह अहीर परिवार बहुत ही भा गया। वही परिवार क्या, उसे सारे अहीर परिवार बहुत अच्छे लगे। उनकी सादगी में वह भी ऐसी रमी कि अपना पहिनावा पूरी तरह से अहीरनों की तरह ही बना लिया। वह वे सभी काम भी उन्हें जैसी विधि से रुचिपूर्वक करने लगी। धीरे–धीरे मंजुला उनके रंग–ढ़ंग में इस तरह घुलमिल गई कि उसके पति या पुत्र भी देखें तो उसे पहली नजर में नहीं पहचान सकें। वह उन अहीरनों में पक्की अहीरन ही दिखाई देने लगी।

वहां का अहीर समुदाय मंजुला जैसे नारी रत्न को अपने बीच पाकर सोचता था कि यह तो गंगा के सदृश्य निर्मल, स्वच्छ और पवित्र है। इसका कारण भी था। मंजुला ने अहीरन के घर में आश्रय लेने के बाद सभी परिवारों में आना–जाना, उन्हें धर्म का स्वरूप बताना तथा जीवन सुधार के सिद्धान्त समझाना शुरू कर दिया था। उसने उन्हें समभाव पूर्वक धार्मिक क्रियाएं भी सिखाईं। वह उन्हें कथा वार्ताएं भी सुनाती और अपने हृदय को निर्मल बनाने की व्यावहारिक बातें भी समझाती। मंजुला के इस सम्पर्क से वहां का वह अहीर समुदाय अपने भीतर और बाहर शान्ति का अनुभव करने लगा। इससे मंजुला न सिर्फ उस समुदाय के बीच में ही लोकप्रिय बनी अपितु उसकी सदाशयता की प्रसिद्धि धीरे–धीरे सारे नगर में होने लगी। उसकी सद्‌गुणों की सुगन्ध की तरफ गणमान्य नागरिक भी आकर्षित होने लगे।

किन्तु मंजुला जब भी एकाकी होती, उसके मन में अपने पति और पुत्र का चिन्तन चल जाता। उसे यह विचार आता रहता कि उसके साथ भाग्य कितना छलावा कर रहा है ? उसे लम्बे अरसे बाद पतिदेव मिले लेकिन वह अपने मन की पूरी बात भी न कर पायी कि फिर उनसे बिछुड़ना पड़ गया। जन्म देने के बाद अपने दिल का टुकड़ा जो उससे अलग हुआ तो वह उसके लिए वर्षों तक संताप ही करती रही किन्तु वह अचानक बेतुकी जगह पर मिला और इस आशा से वह खुलकर भी उससे बात नहीं कर सकी कि उस जगह से जब वह उसका उद्धार करा लेगा तब वे साथ–साथ रहेंगे और दिल खोलकर बातें करेंगे। बिछुड़ने के बाद दोनों मिले और दोनों फिर खो गये। एक नारी हृदय के लिए अपने पति और पुत्र के वियोग से बढ़ कर अन्य कौन

सी व्यथा हो सकती है ?

परन्तु वहीं भीषण व्यथा तब गल–गल कर बह गई और उसके स्थान पर रोम–रोम में गहरी खुशी समा गई जब उसने काशी नगर में अपने पति और पुत्र का बहु–मान समारोह देखा। उसका हृदय खुशी से पागल हो उठा कि श्रीकान्त और कुसुमकुमार काशी नगर के महाराज तुल्य पुरुष बन गये हैं, जबकि वहीं एक सीधी सादी अहीरन के रूप में रह रही है।

कई बार उसने सोचा कि वह उन दोनों से भेंट कर ले किन्तु वह झिझक उसके आड़े आती रही। फिर उसके मन में आया कि कुदरती ढंग से ही कोई ऐसा मौका आवे और उन सबका मिलना हो, वही शोभाजनक और श्रेष्ठ रहेगा। इसलिए वह उस दिन का इन्तजार करने लगी।

X X X

एक दिन मंजुला अन्य अहीरनों के साथ में हमेशा की तरह छाछ और दही की मटकियां माथे पर धर पर बेचने के लिए निकली। वे सब हमेशा की तरह मस्ती से चली जा रही थी, तभी अचानक राजमहल के गवाक्ष की तरफ से एक तीर सनसनाता हुआ आया और मंजुला के सिर पर रखी हुई मटकी पर लगा जिससे मटकी फूट गई और सारी छाछ मंजुला की देह पर छितर गयी। दूसरी अहरीनें इधर–उधर देखकर रोष जताने लगी किन्तु मंजुला ने कतई क्रोध नहीं किया। सोचा जो नुकसान होना था वह तो हो गया, अब वह क्रोध जैसी कषाय में पड़कर अपनी अन्तरात्मा का नुकसान क्यों करे ?

जिधर से तीर आया था उस दिशा में मंजुला ने अपनी दृष्टि घुमाई तो देखा कि राजमहल के गवाक्ष में तरुण धनुष बाण लिए खड़ा है। वह तरुण अब उसके लिए अचीन्हा नहीं था। दूर से भी उसने उसे पहिचान लिया और उसे यह समझ कर प्रसन्नता ही हुई कि जब उसका लाड़ला बेटा युवराज बन गया है तो उसके लिए शस्त्र विद्या का अभ्यास आवश्यक ही हो गया है।

उधर युवराज कुसुमकुमार ने जब देखा कि उसका तीर गलती से किसी अहीरन की मटकी से जा लगा है और उससे उसको नुकसान भी हो गया है तो वह सीधा ऊपर से नीचे उतर कर राजपथ की ओर दौड़ा आया। उस अहीरन के समीप जाकर युवराज ने क्षमा प्रार्थना के स्वर में कहा–

''क्षमा करें, मैं अपने धनुष का निशाना चूक गया था इसी से तीर आपके घड़े को आ लगा और घड़ा फूट गया। मुझे इसका बहुत अफसोस

है और मैं इस नुकसान का मुआवजा भी राजकोष से चुकाने को तैयार हूं।''

मंजुला तो अपने लाल को पहचान गई थी और इस कारण उसके सरल व्यवहार पर वह बलि–बलि जाने लगी किन्तु वह युवराज भला उस अहीरन को कैसे पहचान लेता ? मंजुला उसकी बात का जवाब देती उससे पहले ही दूसरी अहीरनें बोल पड़ी–

''युवराज, आप इस नुकसान का क्या मुआवजा चुका सकेंगे ? आप तो सुख के झूलों वाले राजकुमार हो। आपको गरीबों के दर्द का क्या एहसास ? हम गरीब लोग किस तरह अपना निर्वाह चलाते हैं, यह हमीं जानती हैं। जिसके पैरों में कभी कांटा न चुभा हो वह कांटा चुभने का दर्द क्या जाने ? छाछ और घड़े का मूल्य चुका देने से गरीब के दर्द का मूल्य नहीं चुकता है राजकुमार !''

युवराज कुसुमकुमार उन अहीरनों के बीच में गम्भीर होकर स्तब्ध–सा खड़ा रहा। उसके मन में विचार उठा कि ये महिलाएं उसके जीवन की कहानी को जानती नही है इसी कारण इस तरह से व्यंग्य कर रही है। वह मन ही मन हंसा कि यह तो मात्र एक संयोग की बात है कि वह युवराज बन गया है वरना उसने कष्टों का क्या कम भुगतान किया है। कुसुमकुमार वंश परम्परा से राजा नहीं बन रहा था अपितु उसे यह पद उसके और उसके पिता के पुरुषार्थ से मिला था। अतः उसके मन में लेशमात्र भी अभिमान नहीं था। उसने आत्मिक भावना से ही फिर कहा–

''मुझे घड़े के फूट जाने का बहुत ही खेद है किन्तु आप लोगों का इस तरह से व्यंग्यपूर्वक बोलना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है.....।''

वे ही अहीरनें बीच में ही बोल पड़ी–

''युवराज, जो दुःख की नदी में बहती रही हो और तीखे–तीखे शूलों पर चलती रही हो उसे भला घड़ा फूटने का क्या विशेष दुःख होगा ?''

उस बात को अनसुनी करके युवराज ने उस अहीरन से जिसकी मटकी फूटी थी सीधा सवाल किया–''क्या आप मुझे क्षमा कर रही हैं ?

मंजुला ने प्रेम से भीगे शब्दों में कहा–''युवराज, तुम अभी तरुण हो। तुम अभी दुःख को पहिचानोगे ? मैं तो दुखों के सागर को पार कर रही हूं इसलिए घड़ा फूटने से न मुझे कोई दुःख हुआ है, और न तुम्हें क्षमा चाहने की जरूरत है।''

उस अहीरन के मुंह से भी वैसी ही बात सुनकर कुसुमकुमार चुप नहीं रह सका। आवेगपूर्ण स्वर में बोलने लगा–

''आपने मेरे दिल की दुखती रग को छेड़ दी है, इसलिए अब मैं अपनी कुछ कहानी कहे बिना रह नहीं सकूंगा। मुझे हंसीआती है कि सभी को अपना–अपना दुःख ही बहुत बड़ा नजर आता है और दूसरों का बड़ा दुःख भी छोटा। मैंने जो जन्म ही दुखों के बीच बियावान जंगल में पाया था और तबसे अपने जन्मदाता मां–बाप के प्यार से वंचित रहा। दूसरों ने मुझे पाला पोसा और उसके बाद जब एक दिन अपनी जन्मदायिनी मां के दर्शन मुझे हुए तो मैं तुरन्त ही उसे खो बैठा। फिर उसको खोजने में जो–जो दुःख मैंने सहे वैसे दुःख न तुमने सहे होंगे और न तुमने सुने होंगे।''

मंजुला मन ही मन मुस्करायी किन्तु उसे अपना सारा रहस्य प्रकट कर देने का यह उचित अवसर लगा, इसलिए उसने उत्तर देना शुरू किया–

''मेरी दुःख भरी कहानी के सामने किसी को भी यह निर्णय देना कठिन होगा कि क्या दुःखों की अति उससे बढ़कर भी होती है ? यह दुःखों का क्रम, समझो कि मेरा गृहस्थ जीवन शुरू होने के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। पुत्र का जन्म भी जंगल में हुआ और भाग्य की विडम्बना थी कि मैं उसे अपने दूध की बूंद तक न पिला सकी। पुत्र के वियोग के साथ ही घटना ऐसी बनी कि मुझे एक कामान्ध राजा के राजभवन में कैद हो जाना पड़ा। वह यातनाएं देता रहा और मैं अपने सतीत्व रक्षा के प्रयत्न चलाती रही। मेरी इस सारी दुःख गाथा की जब मेरे पतिदेव को जानकारी हुई, वे भी मुझे खोजने निकले। पतिदेव ने उस राजा की कैद से मुझे छुटकारा दिलाया तो मैं समझी कि अब मेरे दुःखों का अन्त हो गया है लेकिन तब दुःखों का नया दौर शुरू हुआ। पतिदेव से मैं बिछुड़ गई, एक शंकालु सेठानी के षड़यंत्र से कंचनपुर की एक वेश्या के कोठे में फंस गई। वहां मुझे अपना सुपुत्र जिसे मैं जन्म के बाद की देख नहीं पायी थी, तरुण के रूप में मुझे मिला। उसने मुझे वहां से उद्धार कराने का आश्वासन भी दिया किन्तु मैं नहीं जानती कि वह किस मुसीबत में फंसकर समय पर मेरे पास वापिस नहीं आ सका.....।''

कुसुमकुमार ज्यों–ज्यों उस अहीरन का वृत्तांत सुनता जा रहा था, त्यों–त्यों उसके स्मृति पटल पर पिछली यादें एक–एक करके उभरने लगी। उसने बड़े ध्यान से उस अहीरन की मुखाकृति को निरखा और परखा। फिर तो चाहे एक बार दर्शन क्यों न किये थे वह अपनी ममतामयी को पहिचान

गया। श्रद्धा और स्नेह से उसका मन भर उठा और वह यह कहते हुए–''बस करो मां। बस करो। मैं इतना निरीह निकला कि जिस मां की खोज में दर–दर भटकता रहा हूं उसी मां को सामने पाकर भी मैं तत्क्षण पहिचान नहीं पाया। मुझे क्षमा कर दो मां ! मंजुला के चरणों में गिर पड़ा और उन चरणों को अपने हर्षाश्रुओं से धोने लगा।

''बेटा कुसुम, मैंने तुम्हें अपनी पहिचान दुःखों से ही कराना उचित समझा। मुझे विश्वास था कि तुम किसी न किसी कारण से ही मेरे उद्धार के लिए वापिस नहीं आ सके होओगे और मेरे नदी में कूदकर वहां से बह निकलने के बाद मेरी खोज में भी अवश्य ही निकले होओगे।'

''मां, मैं तुम्हारी खोज में पागलों की तरह भटकता रहा। तुम तो नहीं मिली लेकिन पिताजी मिल गये और श्रीपुर जाने के बजाय पिताजी राजकुमारी का सर्पदंश ठीक करने की करुणा से मुझे लेकर इधर आ गये और बाद में.....।''

मंजुला ने खुशी में भरकर कहा–''बाद में कुछ हुआ वह सब मैं जानती हूं और उस वृत्तांत ने मेरे हृदय के तपते हुए रेगिस्तान में मूसलाधार वर्षा कर दी। मुझे परम मोद का अनुभव दे दिया है।''

पास में खड़ी हुई दूसरी अहीरनें आश्चर्यचकित सी खड़ी ही रह गयी कि अरे यह तो युवराज की माता है हमें तो इसने अपना कोई इस तरह का परिचय ही नहीं दिया।

मंजुला ने कुसुमकुमार को उठाया और अपने गले से लगा लिया। उसके नेत्रों से भी आंसुओं की धारा बहने लगी। एक पुरुषार्थी माता का अपने पुरुषार्थी पुत्र के साथ यह हार्दिक मिलन था। कुसुमकुमार हर्ष विभोर था कि मेरे जैसे पुत्र के होते हुए भी मेरी मां ने अकेले ही अपने पुरुषार्थ के बल पर समस्त दुःखों से सफल संघर्ष करके विजय प्राप्त की है। युवराज पद पा जाने के बाद भी अपने पुत्र के अति मानवीय व्यवहार पर मां का हृदय भी संतुष्ट हुआ जो एक साधारण सी अहीरन से भी अपनी छोटी सी भूल के लिए खुद क्षमा मांगने दौड़ा आया अपने पुत्र की सुयोग्यता पर मां की छाती भर आयी।

अहीरनों से दूसरे नागरिकों को जानकारी हुई और देखते–देखते खबर राजमहल तक चली गई। श्रीकांत को जब यह ज्ञात हुआ कि उसके पुत्र को उसकी माता मिल गई है तो वह नंगे पैरों ही भागा तथा उस स्थान पर पहुंचा जहां मंजुला और कुसुमकुमार नागरिकों से घिरे हुए खड़े थे। मंजुला ने भी

जब पतिदेव को देखा तो वह उनके चरणों में झुक आई। श्रीकांत, मंजुला और कुसुमकुमार के इस भावपूर्ण मिलन को देखकर काशी नगर के नागरिक आनन्द मग्न हो गये। वे तीनों प्राणी तो इतने अधिक हर्ष का अनुभव कर रहे थे कि जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। जब काशी नरेश के पास भी इस महामिलन के समाचार पहुंचे तो उन्होंने राजकीय सज्जा सामग्री के साथ तीनों को एक विराट जुलूस के रूप में राजभवन लाने का निर्देश दिया। तीनों के उस जुलूस का जगह–जगह पर भव्य स्वागत किया गया और राजभवन पहुंच जाने बाद वह जुलूस एक सभा के रूप में बदल गया जिसमें सबके आग्रह पर श्रीकांत ने अपने व आत्मीयजनों के जीवन प्रसंग सबको सुनाए। कष्टों की उस गाथा को सुनकर सबके दिल पसीज उठे और सबने एक स्वर से उन तीनों भव्य आत्माओं का जय जयकार किया।

X X X

''मंजुले, पहले हम कुछ बोलें या एक दूसरे को देखते ही रहें ? कर्मों ने हमारे जीवन में क्या–क्या खेल खेले हैं– अब उनका लेखा–जोखा लेने से क्या लाभ ?''

''हां स्वामी, अब तो बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहि। अब तो कर्मों का खेल खत्म है और पुण्योदय से अपना लाड़ला काशीनगर का भावी शासक भी मनोनीत हो गया है। आप मिल गये– यह मेरा सबसे बड़ा भाग्योदय है। मेरे मन का मोद पूर्ण हो गया है, नाथ।''

श्रीकांत और मंजुला ने चन्द्रनगर के बाहर से बिछुड़ जाने के बाद की अपनी–अपनी घटनाओं पर रोशनी डाली और दोनों ने एक तृप्ति की सांस ली कि अपरिमित कष्ट सह कर भी वे अपने जीवन की पवित्रताओं को बनाये रख सके। तब मंजुला ने ही फिर से बात छेड़ी–''अब तक चाहे जो कुछ घटित हुआ हो, हम इस समय सांसारिक सुख के उच्चतम शिखर पर पहुंच गये हैं। कुछ दिन बहू–बेटे के साथ रह लें–माताजी और पद्मा से मिल लें, लेकिन अब यह सोचना शुरू कर दें कि इस संसार से भी ऊपर एक और कर्त्तव्य है–आत्मा के उत्थान का कर्त्तव्य एवं उस ओर जल्दी ही कदम बढ़ाने की तैयारी करने लगे।''

तभी कुसुमकुमार भी भीतर आ गया था और उसने मां का यह सन्देश सुन लिया था। तब श्रीकांत और कुसुमकुमार दोनों ने कहा–''अन्तिम लक्ष्य तो यही है।'' ❑❑❑

# ३४
# कई पगलिये चले मुक्ति की ओर

आत्मा सांसारिक बंधनों से मुक्त हो– इसके लिए वर्तमान के क्षण को सही तरीके से समझना आवश्यक है। आत्मा वर्तमान को नहीं समझती तभी वह भूतकाल के वृत्तांतों में उलझती है अथवा भविष्य की सुनहली कल्पनाओं में उड़ती है। उसमें यह विचारणा नही जागती कि भूतकालीन स्थितियों को स्मृति पर लाकर क्या किया जा सकता है। जो व्यतीत हो गया, वह तो बीत गया, चुक गया। उससे तो सिर्फ शिक्षा ली जा सकती है या प्रेरणा ली जा सकती है। भविष्य का लक्ष्य भी सामने रखा जा सकता है किन्तु उस लक्ष्य के अनुसार कदम तो वर्तमान में ही बढ़ाने पड़ेंगे। अतः वर्तमान के समय की अवस्था को सही तरीके से–सही दृष्टिकोण से जीवन के अन्तस्थल में समझ लें तो वह समझ जीवन को सर्वांगतः भव्य तरीके से निखार सकती है।

जिन आत्माओं ने वर्तमान को समझने की चेष्टा की, उनके सामने चाहे जैसी परिस्थितियां आयी उन्होंने वर्तमान के समभाव अभ्यास को नहीं छोड़ा। उन पर चाहे कष्टों के पहाड़ टूट पड़े लेकिन वे प्रत्येक पग पर विवेक को स्थिर किये रहीं। उन भव्य आत्माओं के समान ही नारी जाति का प्रतिनिधित्व करते हुए भी मंजुला ने वर्तमान विवेक का आदर्श उदाहरण उपस्थित किया था।

जहां पाप का उदय चलता है उसके पीछे पुण्य का उदय भी आता है। कर्मोदय की दशा एक ही दिशा में नहीं चलती है। यदि आत्मा पुण्य का फल भोगने में ही मस्त बन जाय और उस मस्ती में पापपूर्ण कृत्य करने लग जाय तो पूर्व के पुण्य भी पाप रूप में परिणित हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि पाप कर्मों को भोगते हुए वह समभाव की मात्रा से चलें तो पूर्व के पापों का बन्ध भी पुण्य में परिवर्तित होकर आत्मा को सुख और शान्ति पहुंचाने वाला बन जाता है। श्रीकांत और मंजुला की आत्माओं के साथ तब जो सुख और शान्ति का भाव उत्पन्न हुआ था उसके मूल में यही तथ्य था कि उन्होंने

वर्तमान समय को सही तरीके से समझा तथा अपने पापकर्मों को भोगते समय समभाव को बराबर बनाये रखा। इस प्रकार के धैर्य एवं विवेक को ही 'स्व–समय, का बोध कहते हैं।

समय मंथरगति से बीत रहा था। श्रीकांत और मंजुला अपना अधिकांश समय धर्म भावनाओं तथा क्रियाओं में व्यतीत करते थे तो कुसुमकुमार का अधिकांश समय राज्य व्यवस्थाओं में गुजरता था ताकि वृद्ध काशी नरेश को अधिक विश्राम मिल सके। यों वे सभी प्राणी सुख के हिंडोले झूल रहे थे। एक दिन श्रीकांत और मंजुला अपने कक्ष में बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। बात–चीत के बीच में मंजुला ने कहा–''पतिदेव, हमने जीवन के दोनों पक्ष देख लिए हैं। संसार के कष्टकारी दुःख भी देखे हैं तो राजसुख भी भोग रहे हैं किन्तु अब हमें स्वसमय का बोध लेना चाहिये और वर्तमान के सही तरीके समझ कर आत्मा को कर्मबन्धन से मुक्त करने की दिशा में आगे बढ़ने का विशेष प्रयास करना चाहिये।''

श्रीकांत यह सुनकर कुछ देर विचारमग्न रहा तब धीरे–धीरे बोलने लगा–''मंजुला, तुम सही कह रही हो। यह जीवन क्षणभंगुर है। जैसे अपना दुःख का समय बीता वैसे यह सुख का समय भी बीत जायेगा। फिर भी हम कोई विशिष्ट आत्मलाभ नहीं कर पायेंगे। इसलिए अब अवसर आवे तो सांसारिकता का मोह छोड़कर पूर्ण भाव से मुक्ति की ओर कदम बढ़ाने की तैयारी करें।''

तभी एक सेवक भीतर आया और उसने दोनों का अभिवादन करके निवेदन किया–

''महोदय बहुत ही प्रसन्नता का समाचार है कि युवराज को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।'' समाचार सुनकर श्रीकांत और मंजुला बहुत ही हर्षित हुए तथा उन्होंने सेवक को पुरस्कृत किया। उन्होंने उसी सेवक के माध्यम से काशी नरेश को बधाई भिजवायी।

थोड़ी देर बाद एक दूसरे सेवक ने निवेदन किया–''महोदय, नगर के बाहर उद्यान में महासतियां जी महाराज सा. के समुदाय का पदार्पण हुआ है।''

श्रीकांत ने मंजुला को पूछा–

''पहले अपने पौत्र के जन्मोत्सव में चलें अथवा महासतियांजी के दर्शन करने व उपदेश सुनने ?''

मंजुला ने तटस्थ भाव से कहा–''स्वामी, इन पुत्र–पौत्र जन्मोत्सवों में तो हम जन्म–जन्मान्तरों से सम्मिलित होते हुए आ रहे हैं किन्तु धर्म की ओर वांछित अभिरुचि का विकास नहीं कर पाये हैं इसलिए हमें पहले स्व–समय का उत्सव मनाना है। पर–समय का उत्सव तो बाद में भी मनाया जा सकता है।''

श्रीकांत ने मंजुला की बात का समर्थन किया और पहले धर्म स्थान पहुंचने का निश्चय किया।

X X X

महासतियांजी महाराज का धर्मोपदेश चल रहा था–

''समभाव के पुरुषार्थ की बड़ी महिमा है। संसार में रहते हुए आत्मा मोह कर्म के वशीभूत रहती है और मोह से राग तथा द्वेष की परिणति होती है। जिसे हम चाहते हैं उसके प्रति राग भाव होता है जिसे हम नहीं चाहते हैं अथवा जो हमारे चाहने में बाधा पैदा करता है उसके प्रति द्वेष भाव आ जाता है। राग और द्वेष का यह क्रम आत्मा को संसार की चौरासी लाख यौनियों में घुमाता रहता है इसलिए संसार के पार उतरना है तो राग और द्वेष को घटाते हुए समभाव बढ़ाना होगा.....

.....समभाव का अभ्यास करने के लिए गृहस्थों को सामायिक व्रत करने का निर्देश दिया गया है। यह सामायिक एक मुहूर्त समय की होती है किन्तु यदि अभ्यास पुष्ट बन जाय और जीवन पर्यन्त की सामायिक ग्रहण करली जाय तो उसे साधु धर्म कहते हैं। सामायिक की स्थिति को समय की स्थिति भी मान सकते हैं और सामायिक की साधना से स्व समय की साधना की जा सकती है। समभाव की समदृष्टि भाव होता है और इसी भाव की पुष्टि सामायिक में होती है.....

.....स्व–समय और पर–समय का भेद समझ कर जो आत्माएं सामायिक तथा संयम की साधना में तल्लीन होती है वे मोह के बन्धनों को समाप्त करती है तथा मुक्ति की ओर बढ़ चलती है.....।

ज्योंही प्रवचन समाप्त हुआ श्रीकांत और मंजुला ने उठकर सभी महासतियों को वन्दन किया। वन्दन करते–करते उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि समुदाय में श्रीकांत की माता और बहन पद्मा भी साध्वियों के रूप में वहां विराजमान थी।

मंजुला ने देखा कि यह उनकी ननद वही पद्मा है जिसके कारण उसे वर्षों तक जंगल–जंगल भटकना पड़ा और अगणित दुःख सहने पड़े किन्तु मंजुला को लेशमात्र भी क्रोध नहीं आया बल्कि उसने पद्मा के सम्मुख निवेदन किया–''धन्य हो, आपने तरुणाई में प्रवेश ही किया था फिर भी उस छोटी–सी उम्र में आपने सर्वस्व त्याग कर साधना पथ को अंगीकार किया। एक मैं हूं कि अभी तक संसार में भटक रही हूं।'' इसी तरह मंजुला अपनी सासु साध्वीजी के चरणों में भी गिरी और अपने वैराग्य भावों को प्रकट करने लगी। दोनों साध्वियों ने भी मंजुला के सामने इस तरह के भाव प्रकट किये कि उनकी ही गलत समझ के कारण मंजुला को इतने कष्ट झेलने पड़े जिसके प्रायश्चित स्वरूप ही उन्हें संसार से ग्लानि हो गयी।

श्रीकांत और मंजुला ने दोनों साध्वियों से अपने पूर्व व्यवहार के लिए क्षमा प्रार्थना की एवं कहा कि ये सारे कष्ट तो उन्हें अपने कर्मों के उदय में आने से सहने पड़े हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि अब उन्हें भी संसार से वैराग्य हो रहा है तथा वे भी साधना–पथ पर चलने की तैयारी कर रहे हैं।

उस समय तो वे धर्म स्थान से राजमहल में लौट आये और कुछ दिनों तक दोनों ने परस्पर विचार–विमर्श करके स्व–समय का बोध प्राप्त करने के लिए जीवन पर्यन्त की सामायिक अंगीकार करने का निश्चय किया। मंजुला का आग्रह अत्यधिक था। श्रीकांत ने तो पौत्र के कुछ बड़े हो जाने तक रुकने का अनुरोध किया था किन्तु वह मंजुला को स्वीकार नहीं हुआ। तब श्रीकांत ने भी मंजुला के साथ ही दीक्षित हो जाने का विचार किया।

तब कुसुमकुमार को उन्होंने सन्देश भेज कर अपने पास बुलाया और उसे सूचना दी–

''कुसुम, हम दोनों ने अब संयम ग्रहण करने का निश्चय किया है। अब तो स्व–समय का बोध करना ही चाहिये। अब तो स्व–समय का बोध करना ही चाहिये। अब तक का सारा समय पर समय के रूप में बीता है और यह नहीं कहा जा सकता कि अब जीवन का कितना भाग अवशेष है अतः हम दोनों ने परस्पर तो इस हेतु आज्ञा दे दी और ले ली है किन्तु इस हेतु तुम्हारी आज्ञा की भी अपेक्षा है।''

कुसुमकुमार यह सुनकर सन्न रह गया। अभी तो सुख की सांस आये कुछ ही समय बीता है कि माता और पिता इस तरह तलवार की दुधारी

धार पर चलने की तैयारी कर बैठे हैं। उसने व्यग्र होकर कहा–''पूज्य माताजी और पिताजी, आप मुझे सुखी देखना चाहते हैं या कि दुःखी ?''

श्रीकांत ने स्नेह पूर्वक कहा–''यह कैसी बात तुमने कही मेरे बेटे। अब तो तुम काशी नगर के महाराज की तरह ही कार्य कर रहे हो। अब तुम्हें किस बात का दुःख है ? तुम्हारे चारों ओर सुख ही सुख है और तुम सुख पूर्वक ही रहो– यह हमारी इच्छा है।''

कुछ क्षणों तक कुसुमकुमार जैसे गहरे पैठ कर सोचता रहा और फिर विरक्ति के से स्वर में बोला–''पिताश्री, आप जिसे मेरे लिए सुख मान रहे हैं वह वास्तविक सुख नहीं है–एक मृग मरीचिका है, एक भ्रम और छलावा है। आप दोनों के निश्चय ने मेरी आंखें खोल दी है। अब मैं इस सुख के पीछे भागते रह कर अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहता हूं।''

उसकी यह बात सुनकर श्रीकांत और मंजुला दोनों चौंके। श्रीकांत ने कहा–''अभी तो तुम्हारे गृहस्थ जीवन का श्री गणेश ही हुआ है। अभी तुम संसार में हो और सांसारिक सुखों का अनुभव करो।''

''पिताजी, काशी राज्य का उत्तराधिकारी जन्म ले चुका है इसलिए आप मेरे लिए चिंता न करे और काशी नरेश तथा काशीवासियों को भी मेरे लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं रह गई है इसलिए मैं तो अनन्त सुखों के पथ पर आपके साथ ही अग्रसर होना चाहता हूं।''

''जब तुम्हारी दृढ़ भावना हो गयी है तो हम भी बाधक नहीं बनाना चाहेंगे। लेकिन तुम अपनी भावना से अपनी धर्मपत्नी को अवगत कराओ तथा उससे आज्ञा प्राप्त करो–यह आवश्यक है।''

तब कुसुमकुमार वहां से अपनी पत्नी के पास पहुंचा और उसने सारी स्थिति बता कर दीक्षित होने की भावना व्यक्त की। उसे सुनकर सुगन्धा एक बार तो हक्की–बक्की रह गई। वह बोली ''पतिदेव, अभी तो आपका लाल बहुत छोटा है इसे बड़ा कीजिये, शिक्षित बनाइये, इसका विवाह कीजिये और फिर इसे राजकाज सौंपकर हम दोनों साथ–साथ दीक्षा लें तो अच्छा रहेगा।''

कुसुमकुमार ने समझाया, ''स्व–समय का बोध करने के लिए जितनी जल्दी से निकल जावें उतना ही अच्छा है। फिर काल का भी क्या भरोसा है कि उस समय तक हम दोनों जीवित ही रहेंगे ?

''यह तो आप ठीक कहते हैं कि काल की नियति को कौन जानता है ? लेकिन जब आप उस प्रशस्त मार्ग के राही बनना चाहते हैं तो मैं भी पीछे

नहीं रहूंगी। मैं भी साथ–साथ साध्वी व्रत अंगीकार करूंगी।''

''नहीं सुगन्धा, तुम अभी ऐसा नहीं कर सकोगी। मेरे दीक्षित हो जाने से अपने पुत्र के प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य भाव बहुत बढ़ जायगा। तुम्हें उसके लिए माता और पिता दोनों का काम करना होगा, इसलिए तुम अभी संसार में ही रह कर अपने इस कर्त्तव्य का पालन करो।''

बहुत समझाने–बुझाने पर वह सुगन्धा को संसार में ही रहने तथा उसे दीक्षित हो जाने की आज्ञा देने के लिए राजी कर सका।

तब कुसुमकुमार अपने माता–पिता श्रीकांत और मंजुला को साथ लेकर काशी नरेश के पास पहुंचा और हाथ जोड़कर निवेदन किया–

''महाराज, मैंने अपने इन माता–पिता के साथ साधु धर्म अंगीकार करने का निर्णय किया है। मुझे दुःख है कि मैं आपकी अधिक सेवा नहीं कर पाऊंगा।'

''यह क्या कह रहे हो युवराज ? क्या तुमने यह नहीं सोचा कि मेरा क्या होगा ?

''महाराज, यदि आप अपने में साधु बनने की सामर्थ्य समझते हैं तो आप भी हमारे साथ आ जाइये अन्यथा अपने नये उत्तराधिकारी का लालन पालन कीजिये और उसको राजगद्दी पर बिठा कर फिर साधु बन जाइयेगा।

काशी नरेश कुसुमकुमार के साहसिक निर्णय से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने कुसुमकुमार को दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी।

काशी वासी झुण्ड के झुण्ड उद्यान की ओर चले जा रहे थे, जहां महासतियांजी के पास मंजुला की और सन्तों के पास श्रीकांत और कुसुमकुमार की दीक्षाएं होनी थी। नागरिकों में प्रशंसा भरी चर्चाएं चल रही थी कि तीनों कैसी भव्य आत्माएं हैं जिन्होंने भीषण कष्टों को तो सहते हुए धैर्य और विवेक बनाये रखा किन्तु सुखों के रसास्वादन का अवसर आते ही जो संसार से विमुख होकर संयम मार्ग पर चलने को आतुर हो गई हैं ?

श्रीकांत, मंजुला और कुसुमकुमार को राजकीय सज्जा के साथ जुलूस में उद्यान पहुंचाया गया जहां विधि पूर्वक तीनों को साधु धर्म की दीक्षा दी गई।

कुमकुम भरे दो पगलिये एक दिन जिस परिवार में प्रविष्ट हुए थे उन्हीं पगलियों के पुरुषार्थ का प्रभाव मानिये कि उस परिवार के पांच जोड़ी पगलिये तब चल पड़े मुक्ति की ओर। ❑❑❑